बी.ए. प्रथम वर्ष

संस्कृत, द्वितीय प्रश्नपत्र

आर्षकाव्य एवं लौकिककाव्य

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr Hariram Raidas
   Professor
   Govt Hamidia College, Bhopal
2. Dr H.P. Dikxit
   Professor
   Govt Ramanand Sanskrit College Lalghati, Bhopal
3. Dr S. Jamra
   Professor
   Govt Ramanand Sanskrit College Lalghati, Bhopal

Advisory Committee

1. Dr Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal
2. Dr L.S. Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal
3. Dr Anjali Singh
   Director
   Department of Student Support
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal
4. Dr Hariram Raidas
   Professor
   Govt Hamidia College, Bhopal
5. Dr H.P. Dikxit
   Professor
   Govt Ramanand Sanskrit College Lalghati, Bhopal
6. Dr S. Jamra
   Professor
   Govt Ramanand Sanskrit College Lalghati, Bhopal

COURSE WRITERS

Dr. Mamta Ghatol Siddiqui, Member, Hindi Salaahkar Samiti, Gramin Vikas Mantralaya, Bharat Sarkar
Units (1-5)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

आर्षकाव्य एवं लौकिककाव्य

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 वाल्मीकिरामायणम् (बालकाण्ड प्रथम सर्ग व्याख्या) बालकाण्ड प्रथम सर्ग पर आधारित आलोचनात्मक प्रश्न	**इकाई 1** : वाल्मीकिरामायणम् (बालकाण्डे प्रथमः सर्गः) **(पृष्ठ 3–30)**
इकाई–2 महाभारत – शान्ति पर्व (अध्याय 192) अध्याय – 192 – व्याख्या अध्याय – 192 – पर आधारित आलोचनात्मक प्रश्न	**इकाई 2** : महाभारते शान्तिपर्वणि द्विनवत्यधिकैकशततमोऽध्यायः **(पृष्ठ 31–81)**
इकाई–3 रघुवंशम् – प्रथम सर्ग व्याख्या एवं पाठ्यांश पर आलोचनात्मक प्रश्न	**इकाई 3** : रघुवंशम् (प्रथम सर्ग) **(पृष्ठ 83–130)**
इकाई–4 स्वप्नवासवदत्तम् प्रथम से तृतीय अंक तक व्याख्या सम्पूर्ण नाटक से आलोचनात्मक प्रश्न	**इकाई 4** : स्वप्नवासवदत्तम् **(पृष्ठ 131–186)**
इकाई–5 लघुत्रयी एवं वृहत्त्रयी का सामान्य परिचय	**इकाई 5** : बृहत्त्रयी एवं लघुत्रयी का सामान्य परिचय **(पृष्ठ 187–238)**

विषय–सूची

परिचय **1**

इकाई 1 वाल्मीकिरामायणम् (बालकाण्डे प्रथमः सर्गः) **3–30**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 वाल्मीकि रामायण – बाल कांड – प्रथम सर्ग
1.3 वाल्मीकि रामायण
1.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.5 सारांश
1.6 मुख्य शब्दावली
1.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.8 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 महाभारते शान्तिपर्वणि द्विनवत्यधिकैकशततमोऽध्यायः **31–81**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 महाभारतम् – द्विनवत्यधिकैशततमः (192) अध्यायः – शान्तिपर्व (मोक्षधर्म पर्व)
2.3 शान्तिपर्व तथा महाभारत विमर्श
2.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.5 सारांश
2.6 मुख्य शब्दावली
2.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.8 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 रघुवंशम् (प्रथम सर्ग) **83–130**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.3 रघुवंशम् (प्रथम सर्ग)
3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.5 सारांश
3.6 मुख्य शब्दावली
3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 स्वप्नवासवदत्तम् **131–186**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 स्वप्नवासवदत्ता –(प्रथमोऽङ्कः)
4.3 स्वप्नवासवदत्ता –(द्वितीयोऽङ्कः)

4.4 स्वप्नवासवदत्ता (तृतीयोऽङ्कः)
4.5 महाकवि भास और वासवदत्तम् विवेचनम्
4.5.1 महाकवि भास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व
4.5.2 वासवदत्तम् विवेचनम्
4.5.3 'स्वप्नवासवदत्तम्' के प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण
4.5.4 नाटकीय तत्वों के आधार पर 'स्वप्नवासवदत्तम्' की समीक्षा
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 बृहत्त्रयी एवं लघुत्रयी का सामान्य परिचय **187–238**

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 बृहत्त्रयी एवं लघुत्रयी का सामान्य परिचय
5.3 बृहत्त्रयी विमर्श
5.4 लघुत्रयी विमर्श
5.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.6 सारांश
5.5 मुख्य शब्दावली
5.6 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.7 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'आर्षकाव्य एवं लौकिक काव्य' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित बी.ए. संस्कृत 'प्रथम वर्ष' के पाठ्यक्रम के अनुरूप लिखी गई है।

इस पाठ्यपुस्तक के अंतर्गत पांच इकाइयों में से प्रथम दो इकाइयां जहां आर्षकाव्य को समर्पित हैं वहीं बाद की तीन इकाइयों में लौकिक काव्य ही विवेच्य है।

पुस्तक की प्रथम इकाई में आदिकवि महर्षि वाल्मीकि विरचित 'रामायणम्' के प्रथम काण्ड के प्रथम अध्याय के श्लोक अर्थ व व्याख्या आदि सहित उपनिबद्ध हुए हैं। साथ ही 'रामायणम्' का अनुलोचनात्मक विवेचन भी प्रस्तुत किया गया है।

पुस्तक की द्वितीय इकाई में दूसरे आर्षकाव्य 'महाभारतम्' के शांतिपर्व के अंतर्गत एक सौ ब्यानववें अध्याय का गद्य–पद्य में पाठ साथ दिया गया है। साथ ही महाभारत के सम्बद्ध बिंदुओं पर विस्तृत विवेचन भी किया गया है।

पुस्तक की तृतीय इकाई में महाकवि कालिदास की विख्यात कृति 'रघुवंशम्' के द्वितीय सर्ग के समग्र श्लोक सान्वय तथा सार्थ उपनिबद्ध हुए हैं। 'रघुवंशम्' से संबद्ध अपेक्षित विवेचन भी अनुस्यूत है।

पुस्तक की चतुर्थ इकाई में भास रचित नाटक 'स्वप्नवासवदत्तम्' के प्रथम अंक के संवाद व श्लोक न केवल अर्थ अपितु आवश्यक टिप्पणियों के साथ भी लिखित हैं।

पुस्तक की अंतिम इकाई के अंतर्गत संस्कृत साहित्य की बृहत्त्रयी तथा लघुत्रयी के छह काव्यों का सारगर्भित परिचय सोदाहरण दिया गया है।

प्रत्येक इकाई के आरंभ में विषय का विश्लेषण करने से पूर्व उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' स्तंभ के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता को परखने के लिए प्रश्न दिए गए हैं।

सविश्वास कहा जा सकता है कि पाठ्यक्रम के अनुसार इस पुस्तक की प्रत्येक इकाई छात्रों के ज्ञानवर्धन में सुतरां सहायक सिद्ध होगी।

इकाई 1 वाल्मीकिरामायणम् (बालकाण्डे प्रथमः सर्गः)

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 वाल्मीकि रामायण – बाल कांड – प्रथम सर्ग
1.3 वाल्मीकि रामायण
1.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.5 सारांश
1.6 मुख्य शब्दावली
1.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

पुस्तक की इस प्रथम इकाई में आदि कवि वाल्मीकि रचित 'रामायण' के प्रथम सर्ग अर्थात् 'बालकाण्डम्' के प्रथम अध्याय के समस्त श्लोक अर्थ तथा यथावश्यक व्याख्यांश सहित दिए गए हैं। इस अध्याय का महत्व दो विशेष कारणों से है। प्रथम कारण तो यही है कि इसमें श्रीराम के जन्म से लेकर राज्यारोहण तक की संपूर्ण कथा संक्षिप्त रूप से समाहित है। इसीलिए इस अध्याय को 'मूलरामायणम्' नाम से भी समादृत किया जाता है। इस अध्याय का दूसरा महत्वाधायि कारण है कि संपूर्ण रामायण के पारायण से जिस फल प्राप्ति का वर्णन यत्र–तत्र किया जाता है उस फल की प्राप्ति इस एकमात्र अध्याय के अध्ययन से भी संभव है। यही कारण है कि अध्यायान्त में फलश्रुति अंतिम श्लोकत्रय में वर्णित है।

प्रथम अध्याय के श्लोकों के साथ–साथ रामायण के रचनाकार, रचनाकाल आदि अन्य विषयों पर भी इकाई में सविस्तार चर्चा हुई है।

1.1 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- वाल्मीकि रामायण के बाल कांड (प्रथम सर्ग) के सारगर्भित वर्णन को जानेंगे;
- इसके अध्ययन से संक्षिप्त रूप से रामायण की सम्पूर्ण कथा की जानकारी प्राप्त करेंगे;
- इस सर्ग में नारद मुनि द्वारा ऋषि वाल्मीकि को जिस सम्पूर्ण रामकथा को अत्यंत रोचक रूप से संक्षिप्त में उपदेश किया गया है, उसे भी जान लेंगे।

1.2 वाल्मीकि रामायण – बाल कांड – प्रथम सर्ग

टिप्पणी

ऊँ तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम्।

नारदं परिप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुंगवः।।1।।

तपस्वी वाल्मीकि जी ने तपस्या और स्वाध्याय में लगे हुए विद्वानों में श्रेष्ठ मुनिवर नारद जी से पूछा।।1।।

कोन्वस्मिन्साम्प्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान्।

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः।।2।।

''हे मुनियों में श्रेष्ठ नारद जी! आप सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और देश–देशान्तरों में भ्रमण करते हैं, नाना प्रकार के प्राणियों के बीच विचरण करते हैं। इसलिये कृपा करके यह बताइये कि इस समय सारे भूमण्डल और नव द्वीपों में ऐसा कौन सा अपूर्व मेधावी, विद्वान, परोपकारी एवं ज्ञान विज्ञान में पारंगत, धर्मात्मा तथा समस्त सद्गुणों से परिपूर्ण व्यक्ति है जो मनुष्य मात्र का ही नहीं, चर–अचर और प्राणिमात्र का कल्याण करने के लिये सदैव तत्पर रहता हो?

चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।

विद्वान्कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः।।3।।

सदाचार से युक्त, समस्त प्राणियों का हितरक्षक, विद्वान सामर्थ्यशाली और एकमात्र प्रियदर्शन पुरुष कौन है।

आत्मवान्को जितक्रोधो मतिमान्कोऽनसूयकः।

कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे।।4।।

जिसने अपने पराक्रम और त्याग से सम्पूर्ण इन्द्रियों, विषय–वासनाओं एवं मन को वश में कर लिया हो, जो कभी क्रोध, अहंकार जैसी दुष्प्रवृत्तियों के वशीभूत न होता हो तथा संग्राम में कुपित होने पर जिससे देवता भी डरते हों।

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे।

महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवंविधं नरम्।।5।।

यदि ऐसा कोई महापुरुष आपकी दृष्टि में आया हो तो कृपया सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझे सांगोपांग सुनाइये। उसकी पुण्य कथा सुन कर मैं कृतार्थ होना चाहता हूँ।

श्रुत्वा चैतत्त्रिलोकज्ञो वाल्मीकेर्नारदो वचः।

श्रूयतामिति चामन्त्र्य प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत्।।6।।

महर्षि वाल्मीकि का प्रश्न सुनकर तीनों लोकों का भ्रमण करने वाले नारद जी ने ऋषि वाल्मीकि को सम्बोधित करते हुए कहा, अच्छा सुनिए और फिर प्रसन्नता पूर्वक बोले।

बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः।

मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः।।7।।

''हे मुनिराज! आपने जिन गुणों का वर्णन किया है ऐसे गुणों का इस पृथ्वी तल पर (एकत्र) मिलना अत्यंत दुर्लभ है। फिर भी एक अद्‌भुत गरिमामय व्यक्ति के चरित्र का आपके सामने करता हूँ।

टिप्पणी

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।

नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान्वशी।।8।।

ऐसी महान विभूति का नाम रामचन्द्र है। उन्होंने वैवस्वतमनु के वंश में महाराजा इक्ष्वाकु के कुल में जन्म लिया है। वे अत्यंत वीर्यवान्, तेजस्वी, विद्वान्, धैर्यशील व जितेन्द्रिय हैं।

बुद्धिमान्नीतिमान्वाग्मी श्रीमान् शत्रुनिबर्हणः।

विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः।।9।।

बुद्धिमान, सुंदर, पराक्रमी, दुष्टों का दमन करने वाले, युद्ध एवं नीतिकुशल, धर्मात्मा, मर्यादा पुरुषोत्तम, प्रजावत्सल, शरणागत को शरण देने वाले, सर्वशास्त्रों के ज्ञाता एवं प्रतिभा सम्पन्न हैं। उनके कंधे विशाल और भुजाएं बड़ी–बड़ी हैं, गर्दन शंख के समान और ठोडी पुष्ट है।

महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिन्दमः।

आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः।।10।।

उनकी छाती चौड़ी तथा धनुष बृहदाकार है, गले के नीचे हंसली मांस में छिपी हुई है। वे शत्रुओं का दमन करने वाले है। भुजाएं घुटनों तक लम्बी हैं मस्तक सुन्दर है, ललाट भव्य और चाल सुन्दर है।

समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।

पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः।।11।।

उनका शरीर मध्यम और सुडौल है, देह सुकोमल एवं स्निग्ध है। वे बड़े प्रतापी है, उनका वक्षस्थल विस्तृत है, आँखें बड़ी–बड़ी हैं। वे शोभायमान और शुभलक्षणों से संपन्न है।

धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः।

यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्।।12।।

वे धर्म के ज्ञाता हैं, सत्यपालक और प्रजाओं के हित में रत रहते हैं, यशस्वी हैं, ज्ञानसम्पन्न हैं पवित्र आचरणवान हैं, जितेंद्रिय और ध्यानयोग में निपुण हैं।

प्रजापतिसमश्श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः।

रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता।।13।।

वे प्रजापति ब्रह्मा के सममन श्रीमान और जगत् के आधार हैं, वे समस्त जीवों और धर्म के परिपालक हैं।

रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता।

वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः।।14।।

वे अपने धर्म और स्वजनों के रक्षक हैं, वेद – वेदांगों के तत्त्ववेत्ता तथा धनुर्वेद में प्रवीण हैं।

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो स्मृतिमान्प्रतिभानवान्।

सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः।।15।।

टिप्पणी

वे अखिल शास्त्रों के तत्त्वज्ञ, स्मरण शक्ति से युक्त और प्रतिभासम्पन हैं। अच्छे विचार और उदार हृदय वाले वे श्रीरामचन्द्रजी बातचीत करने में चतुर तथा समस्त लोकों के प्रिय है।

सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः।

आर्यः सर्वसमश्चैव सदैवप्रियदर्शनः।।16।।

जैसे नदियाँ समुद्र में मिलती है, उसी प्रकार सदा राम के साथ साधु पुरुष मिलते रहते हैं। वे आर्य एवं सब में समान भाव रखने वाले हैं, उनका दर्शन सदा ही प्रिय होता है।

स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः।

समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव।।17।।

सम्पूर्ण गुणों से युक्त वे (श्रीरामचन्द्र जी) अपनी माता कौशल्या के आनंद को बढ़ाने वाले हैं, गंभीरता में समुद्र और धैर्य में हिमालय के समान है।

विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः।

कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः।।18।।

वे विष्णु के समान बलवान हैं। उनका दर्शन चन्द्रमा के समान मनोहर प्रतीत होता है अर्थात् चन्द्रमा के समान प्रियदर्शी हैं। वे क्रोध में कालाग्नि के समान और क्षमा में पृथ्वी के सदृश हैं।

धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः।

तमेवगुणसम्पन्नं रामं सत्यपराक्रमम्।।19।।

ज्येष्ठं श्रेष्ठगुणैर्युक्तं प्रियं दशरथः सुतम्।

प्रकृतीनां हितैर्युक्तं प्रकृतिप्रियकाम्यया।।20।।

त्याग में कुबेर और सत्य में द्वितीय धर्मराज के समान है, इस प्रकार उत्तम गुणों से युक्त सत्य पराक्रम वाले सद्गुणशाली अपने प्रियतम ज्येष्ठ पुत्र को, जो प्रजा के हित में सलंग्न रहने वाले थे, प्रजावर्ग का हित करने की इच्छा से राजा दशरथ ने प्रेमवश युवराज पद पर अभिषिक्त करना चाहा।

यौवराज्येन संयोक्तुमैच्छत्प्रीत्या महीपतिः।

तस्याभिषेकसम्भारान्दृष्ट्वा भार्याऽथ कैकयी।।21।।

पूर्वं दत्तवरा देवी वरमेनमयाचत।

विवासनं च रामस्य भरतस्याभिषेचनम्।।22।।

तदनन्तर राम के राज्याभिषेक की तैयारी देखकर रानी कैकयी ने, जिसे पहले ही वर दिया जा चुका था,राजा से यह वर माँगा की राम का निर्वासन (वनवास) और भरत का राज्याभिषेक हो।

टिप्पणी

स सत्यवचनाद्राजा धर्मपाशेन संयतः।
विवासयामास सुतं रामं दशरथः प्रियम्।।23।।

राजा दशरथ ने सत्य वचन के कारण धर्म–बंधन में बंध कर अपने प्रिय पुत्र को वनवास दे दिया।

स जगाम वनं वीरः प्रतिज्ञामनुपालयन्।
पितुर्वचननिर्देशात्कैकेय्याः प्रियकारणात्।।24।।

कैकेयी का प्रिय करने के लिए पिता के वचनों के अनुसार उनकी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए वीर रामचंद्र वन को चले गए।

तं व्रजन्तं प्रियो भ्राता लक्ष्मणोऽनुजगाम ह।
स्नेहाद्विनयसम्पन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः।।25।।
भ्रातरं दयितो भ्रातुः सौभ्रात्रमनुदर्शयन्।
रामस्य दयिता भार्या नित्यं प्राणसमाहिता।।26।।
जनकस्य कुले जाता देवमायेव निर्मिता।
सर्वलक्षणसम्पन्ना नारीणामुत्तमा वधूः।।27।।
सीताप्यनुगता रामं शशिनं रोहिणी यथा।
पौरैरनुगतो दूरं पित्रा दशरथेन च।।28।।

रामचंद्र को वन में जाते देख उनके प्रिय छोटे भाई लक्ष्मण भी स्नेह के कारण उनके साथ चले। वे विनयी थे और सुमित्रा के पुत्र थे। लक्ष्मण रामचंद्र के प्रिय थे, इस कारण उन्होंने भी इस समय अपने भ्रातृ–कर्तव्य का पालन किया। राम की प्रिय स्त्री सीता, जो उन्हें प्राणों के समान प्यारी थीं और जनक के कुल से उत्पन्न, जो अवतीर्ण हुई देवमाया की भाँति सुंदरी, समस्त शुभ लक्षणों से विभूषित, स्त्रियों में उत्तम राम के प्राणों के समान प्रियतमा पत्नी तथा सदा ही पति का हित चाहने वाली थी, रामचंद्र जी के पीछे चली, जैसे चन्द्रमा के पीछे रोहिणी चलती है। उस समय पिता दशरथ (ने अपना सारथी भेजकर) और पुरवासी मनुष्यों ने (स्वयं साथ जाकर) दूर तक उनका अनुसरण किया।

शृङ्गवेरपुरे सूतं गङ्गाकूले व्यसर्जयत्।
गुहमासाद्य धर्मात्मा निषादाधिपतिं प्रियम्।।29।।

फिर शृंगवेरपुर में गंगा तट पर अपने प्रिय मित्र निषादराज गुह के पास पहुँचकर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी ने सारथि को अयोध्या के लिए विदा कर दिया।

गुहेन सहितो रामो लक्ष्मणेन च सीतया।
ते वनेन वनं गत्वा नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः।।30।।
चित्रकूटमनुप्राप्य भरद्वाजस्य शासनात्।
रम्यमावसथं कृत्वा रममाणा वने त्रयः।।31।।

निषादराज गुह, लक्ष्मण और सीता के साथ राम– एक वन से दूसरे वन में गए। मार्ग में बहुत जल वाली अनेक नदियों को पार करके (भरद्वाज के आश्रम पहुंचे और

गुह को वहीं छोड़कर) भरद्वाज मुनि की आज्ञा से चित्रकूट पर्वत पर गए। वहाँ वे तीनों एक रमणीक पर्णकुटी बनाकर उसमे सानंद रहने लगे।

देवगन्धर्वसङ्काशास्तत्र ते न्यवसन्सुखम्।
चित्रकूटं गते रामे पुत्रशोकातुरस्तदा।।32।।

टिप्पणी

देवता और गंधर्वों के समान वे वहाँ तीनों रहने लगे।

राम के चित्रकूट चले जाने पर पुत्र शोक से पीड़ित राजा दशरथ उस समय पुत्र के लिए (उसका नाम ले – ले कर) विलाप करते हुए स्वर्गवासी हुए।

राजा दशरथः स्वर्गं जगाम विलपन्सुतम्।
गते तु तस्मिन्भरतो वसिष्ठप्रमुखैर्द्विजैः।।33।।
नियुज्यमानो राज्याय नैच्छद्राज्यं महाबलः।
स जगाम वनं वीरो रामपादप्रसादकः।।34।।
गत्वा तु सुमहात्मानं रामं सत्यपराक्रमम्।
अयाचद्भ्रातरं राममार्यभावपुरस्कृतः।।35।।
त्वमेव राजा धर्मज्ञ इति रामं वचोऽब्रवीत्।
रामोऽपि परमोदारस्सुमुखस्सुमहायशाः।।36।।
न चैच्छत्पितुरादेशाद्राज्यं रामो महाबलः।
पादुके चास्य राज्याय न्यासं दत्त्वा पुनः पुनः।।37।।
निवर्तयामास ततो भरतं भरताग्रजः।।
स काममनवाप्यैव रामपादावुपस्पृशन्।।38।।

उनके स्वर्गगमन के पश्चात वसिष्ठ आदि प्रमुख ब्राह्मणों के द्वारा राज्य सञ्चालन के लिए नियुक्त किये जाने पर भी महाबलशाली वीर भरत ने राज्य की कामना न करके पूज्य राम को प्रसन्न करने के लिए वन को ही प्रस्थान किया।

वहाँ पहुँचकर सद्भावना युक्त भरत जी ने अपने बड़े भाई सत्य पराक्रमी महात्मा राम से याचना की और कहा– धर्मज्ञ! आप ही राजा हो। परन्तु महान यशस्वी, परम उदार प्रसन्न मुख राम ने भी पिता के आदेश का पालन करते हुए राज्य की अभिलाषा न की और उन भरताग्रज ने राज्य के लिए न्यास (चिह्न) रूप में अपनी खड़ाऊँ भरत को देकर लौटा दिया।

नन्दिग्रामेऽकरोद्राज्यं रामागमनकाङ्क्षया।
गते तु भरते श्रीमान् सत्यसन्धो जितेन्द्रियः।।39
रामस्तु पुनरालक्ष्य नागरस्य जनस्य च।
तत्रागमनमेकाग्रे दण्डकान्प्रविवेश ह।।40।।
प्रविश्य तु महारण्यं रामो राजीवलोचनः।
विराधं राक्षसं हत्वा शरभङ्गं ददर्श ह।।41।।

अपनी अपूर्ण इच्छा को लेकर ही भरत ने राम के चरणों का स्पर्श और राम के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए नंदीग्राम में (तपस्या करते हुए) राज करने लगे।

टिप्पणी

भरत के लौट जाने पर सत्यप्रतिज्ञ जितेन्द्रिय श्रीराम ने वहाँ पर पुनः नागरिक जनों का आना जाना देखकर (उनसे बचने के लिए) एकाग्रभाव से दंडकारण्य में प्रवेश किया।

उस महान वन में पहुँचने पर कमललोचन राम ने विराध नामक राक्षस को मार कर शरभंग, सुतीक्ष्ण, अगत्स्य मुनि तथा अगस्त्य के भ्राता का दर्शन किया।

सुतीक्ष्णं चाप्यगस्त्यं च अगस्त्यभ्रातरं तथा।
अगस्त्यवचनाच्चौव जग्राहैन्द्रं शरासनम्।।42।।
खड्गं च परमप्रीतस्तूणी चाक्षयसायकौ।
वसतस्तस्य रामस्य वने वनचरैः सह।।43।।
ऋषयोऽभ्यागमन्सर्वे वधायासुररक्षसाम्।
स तेषां प्रतिशुश्राव राक्षसानां तदा वने।।44।।
प्रतिज्ञातश्च रामेण वधः संयति रक्षसाम्।
ऋषीणामग्निकल्पानां दण्डकारण्यवासिनाम्।।45।।

फिर अगस्त्य मुनि के कहने पर उन्होंने ऐन्द्र धनुष, एक खड्ग और दो ऐसे तूणीर जिनमें बाण कभी नहीं घटते थे, प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किये।

एक दिन वन में वनचरों के साथ रहने वाले श्रीराम के पास असुर तथा राक्षसों के वध के लिए निवेदन करने को वहां के सभी ऋषि आएं।

उस समय वन में श्रीराम ने दण्डकारण्यवासी अग्नि के सामान तेजस्वी उन ऋषियों को राक्षसों को मारने का वचन दिया और संग्राम में उन राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा की।

तेन तत्रैव वसता जनस्थाननिवासिनी।
विरूपिता शूर्पणखा राक्षसी कामरूपिणी।।46।।

वहाँ ही रहते हुए श्रीराम ने इच्छा के अनुसार रूप बनाने वाली जनस्थाननिवासिनी शूर्पणखा नाम की राक्षसी को (लक्ष्मण के द्वारा उसकी नाक कटवाकर) कुरूप कर दिया।

ततः शूर्पणखावाक्यादुद्युक्तान्सर्वराक्षसान्।
खरं त्रिशिरसं चैव दूषणं चैव राक्षसम्।।47।।
निजघान रणे रामस्तेषां चैव पदानुगान्।
वने तस्मिन्निवसता जनस्थाननिवासिनाम्।।48।।

तब शूर्पणखा के कहने से चढ़ाई करने वाले सभी राक्षसों को और खर, दूषण, त्रिशिरा तथा उनके पृष्ठ पोषक समस्त असुरों को राम ने युद्ध में मार डाला।

उस वन में निवास करते हुए उन्होंने जनस्थानवासी चौदह हज़ार राक्षसों का वध किया।

रक्षसां निहतान्यासन्सहस्राणि चतुर्दश।
ततो ज्ञातिवधं श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्च्छितः।।49।।

तदनन्तर अपने कुटुंब का वध सुनकर रावण नाम का राक्षस क्रोध में अपना आपा खो बैठा।

टिप्पणी

सहायं वरयामास मारीचं नाम राक्षसम्।

वार्यमाणः सुबहुशो मारीचेन स रावणः।।50।।

न विरोधो बलवता क्षमो रावण तेन ते।

अनादृत्य तु तद्वाक्यं रावणः कालचोदितः।।51।।

उसने मारीच नामक राक्षस से सहायता मांगी तथा मारीच को सहायक बनाकर रामचंद्र से बदला लेने का विचार किया। यद्यपि मारीच ने यह कहकर कि रावण! उस बलवान राम के साथ तुम्हारा विरोध ठीक नहीं है, रावण को अनेक बार मना किया,परन्तु काल की प्रेरणा से रावण ने मारीच के वाक्यों को टाल दिया।

जगाम सह मारीचस्तस्याश्रमपदं तदा।

तेन मायाविना दूरमपवाह्य नृपात्मजौ।।52।।

वह मारीच के साथ रामचंद्र के आश्रम पर गया। मायावी मारीच के द्वारा उस रावण ने दोनों राजकुमारों को आश्रम से दूर हटा दिया।

जहार भार्यां रामस्य गृध्रं हत्वा जटायुषम्।

गृध्रं च निहतं दृष्ट्वा हृतां श्रुत्वा च मैथिलीम्।।53।।

स्वयं राम की पत्नी सीता का अपहरण कर लिया, (जाते समय मार्ग में विघ्न डालने के कारण) उसने जटायु नामक गृध्र का वध किया। तत्पश्चात जटायु को आहत देखकर और (उसी के मुख से) सीता का हरण सुनकर

राघवः शोकसन्तप्तो विललापाकुलेन्द्रियः।

ततस्तेनैव शोकेन गृध्रं दग्ध्वा जटायुपम्।।54।।

मार्गमाणो वने सीतां राक्षसं सन्ददर्श ह।

कबन्धं नाम रूपेण विकृतं घोरदर्शनम्।।55।।

रामचंद्र जी शोक से पीड़ित होकर विलाप करने लगे, उस समय उनकी सभी इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठी थीं। फिर उसी शोक में पड़े हुए उन्होंने जटायु गृध्र का अग्निसंस्कार किया और वन में सीता को ढूंढते हुए कबंध नामक राक्षस को देखा, जो शरीर से विकृत तथा भयंकर दिखने वाला था।

तं निहत्य महाबाहुर्ददाह स्वर्गतश्च सः।

ततोऽस्य कथयामास शबरीं धर्मचारिणीम्।।56।।

महाबली राम ने उसे मारकर उसका भी दाह–संस्कार किया, अतः वह स्वर्ग को चला गया। जाते समय उसने राम को धर्मचारिणी शबरी का पता बतलाया और कहा–

श्रवणां धर्मनिपुणामभिगच्छेति राघव।

सोऽभ्यगच्छन्महातेजाश्शबरीं शत्रुसूदनः।।57।।

हे रघुनन्दन! आप धर्मपरायणा शबरी के आश्रम जाइए। शत्रुहंता महा तेजस्वी दशरथ कुमार राम शबरी के आश्रम गए।

शबर्या पूजितः सम्यग्रामो दशरथात्मजः।

पम्पातीरे हनुमता सङ्गतो वानरेण ह।।58।।

हनुमद्वचनाच्चैव सुग्रीवेण समागतः।

सुग्रीवाय च तत्सर्वं शंसद्रामो महाबलः।।59।।

आदितस्तद्यथावृत्तं सीतायाश्च विशेषतः।

सुग्रीवश्चापि तत्सर्वं श्रुत्वा रामस्य वानरः।।60।।

शबरी ने उनका भली–भाँति पूजन किया। फिर पम्पा सरोवर के तट पर हनुमान नामक वानर से मिले और उन्होंने हनुमान के कहने से सुग्रीव से भी मेल किया। तदनन्तर महाबलवान राम ने आदि से ही लेकर जो कुछ भी हुआ था वह और विशेषतः सीता का वृत्तांत सुग्रीव को कह सुनाया। वानर सुग्रीव ने राम की सारी बातें सुनी।

चकार सख्यं रामेण प्रीतश्चैवाग्निसाक्षिकम्।

ततो वानरराजेन वैरानुकथनं प्रति।।61।।

उनके साथ प्रेमपूर्वक अग्नि को साक्षी बनाकर मित्रता की। उसके बाद वानरराज सुग्रीव ने स्नेहवश बाली के साथ बैर कैसे हुआ।

रामायावेदितं सर्वं प्रणयाद्दुःखितेन च।

प्रतिज्ञातं च रामेण तदा वालिवधं प्रति।।62।।

वालिनश्च बलं तत्र कथयामास वानरः।

सुग्रीवः शङ्कितश्चासीन्नित्यं वीर्येण राघवे।।63।।

यह होने की सारी बातें राम से दुखी होकर बताई। उस समय राम ने बाली को मारने की प्रतिज्ञा की, तब वानर सुग्रीव ने वहाँ बाली के बल का वर्णन किया, क्योंकि सुग्रीव को राम के बल के विषय में बराबर शंका बनी रहती थी।

राघवः प्रत्ययार्थं तु दुन्दुभेः कायमुत्तमम्।

दर्शयामास सुग्रीवो महापर्वतसन्निभम्।।64।।

उत्स्मयित्वा महाबाहुः प्रेक्ष्य चास्थि महाबलः।

पादाङ्गुष्ठेन चिक्षेप सम्पूर्णं दशयोजनम्।।65।।

सुग्रीव ने दुंदुभि दैत्य का पर्वत के समान विशाल शरीर दिखलाया। महाबली राम ने तनिक मुस्कुराकर उस अस्थि समूह को देखा और सुग्रीव के विश्वास को दृढ़ करने के लिए पैरों के अंगूठे से उसे दस योजन दूर फेंक दिया।

बिभेद च पुनः सालान्सप्तैकेन सहेषुणा।

गिरिं रसातलं चैव जनयन्प्रत्ययं तदा।।66।।

फिर एक ही महान बाण से उन्होंने अपना विश्वास दिलाते हुए सात ताल वृक्षों को और साथ ही पर्वत तथा रसातल को बींध डाला।

टिप्पणी

ततः प्रीतमनास्तेन विश्वस्तः स महाकपिः।

किष्किन्धां रामसहितो जगाम च गुहां तदा।।67।।

टिप्पणी

तदनन्तर राम के इस कार्य से महाकपि सुग्रीव मन–ही–मन प्रसन्न हुए और उन्हें राम पर विश्वास हो गया। फिर वे उनके साथ किष्किंधा में गए तदनन्तर गुफा में गए।

ततोऽगर्जद्धरिवरः सुग्रीवो हेमपिङ्गलः।

तेन नादेन महता निर्जगाम हरीश्वरः।।68।।

अनुमान्य तदा तारां सुग्रीवेण समागतः।

निजघान च तत्रैनं शरेणैकेन राघवः।।69।।

वहाँ पर सुवर्ण के समान पिंगलवर्णवाले वीरवर सुग्रीव ने गर्जना की, उस महानाद को सुनकर वानरराज बालि अपनी पत्नी तारा को आश्वासन देकर तत्काल घर से बाहर निकला और सुग्रीव से भिड़ गया। वहाँ राम ने बालि को एक ही बाण में मार गिराया।

ततः सुग्रीववचनाद्धत्वा बालिनमाहवे।

सुग्रीवमेव तद्राज्ये राघवः प्रत्यपादयत्।।70।।

सुग्रीव को दिए वचन के अनुसार उस संग्राम में बालि को मारकर उसके राज्य पर राम ने सुग्रीव को बैठा दिया।

स च सर्वान्समानीय वानरान्वानरर्षभः।

दिशः प्रस्थापयामास दिदृक्षुर्जनकात्मजाम्।।71।।

तब उन वानरराज ने भी सभी वानरों को बुलाकर जानकी का पता लगाने के लिए उन्हें चारों दिशाओं में भेजा।

ततो गृध्रस्य वचनात्सम्पातेर्हनुमान्बली।

शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवे लवणार्णवम्।।72।

तत्पश्चात् सम्पातिनामक गृध्र के कहने पर बलवान हनुमान जी ने सौ योजन विस्तार वाले क्षार समुद्र को लाँघ कर पार किया।

तत्र लङ्कां समासाद्य पुरीं रावणपालिताम्।

ददर्श सीतां ध्यायन्तीमशोकवनिकां गताम्।।73।।

वहाँ रावणपालित लंकापुरी में पहुँचकर अशोकवाटिका में सीता को दुखी और चिंतामग्न देखा।

निवेदयित्वाभिज्ञानं प्रवृत्तिं च निवेद्य च।

समाश्वास्य च वैदेहीं मर्दयामास तोरणम्।।74।।

तब उन विदेहनन्दिनी को अपनी पहचान बता कर राम का सन्देश सुनाया और उन्हें सांत्वना देकर उन्होंने वाटिका का प्रवेश द्वार तोड़ डाला।

पञ्च सेनाग्रगान्हत्वा सप्त मन्त्रिसुतानपि।

शूरमक्षं च निष्पिष्य ग्रहणं समुपागमत्।।75।।

फिर पाँच सेनापतियों और सात मन्त्रिकुमारों की हत्या कर वीर अक्षकुमार को भी धरती पर पटक कर और रगड़ कर मार डाला। इसके बाद उन्होंने स्वयं को जानबूझ कर बंदी बनवाया।

टिप्पणी

अस्त्रेणोन्मुक्तमात्मानं ज्ञात्वा पैतामहाद्वरात्।

मर्षयन्राक्षसान्वीरो यन्त्रिणस्तान्यदृच्छया।।76।।

ब्रह्माजी के वरदान से अपने को ब्रह्मपाश से छूटा हुआ जानकर भी वीर हनुमान जी ने अपने को बाँधने वाले उन राक्षसों का अपराध स्वेच्छानुसार सह लिया।

ततो दग्ध्वा पुरीं लङ्कामृते सीतां च मैथिलीम्।

रामाय प्रियमाख्यातुं पुनरायान्महाकपिः।।77।।

तत्पश्चात् मिथिलेशकुमारी सीता के स्थान के अतिरिक्त समस्त लंका को जलाकर वे महाकपि हनुमानजी राम को प्रिय सन्देश सुनाने के लिए लंका से लौट आये।

सोऽभिगम्य महात्मानं कृत्वा रामं प्रदक्षिणम्।

न्यवेदयदमेयात्मा दृष्टा सीतेति तत्त्वतः।।78।।

अपरिमित बुद्धिशाली हनुमान जी ने वहाँ पहुँचकर महात्मा राम को प्रदक्षिणा करके इस प्रकार से सत्य निवेदन किया– 'मैंने सीताजी का दर्शन किया है'।

ततः सुग्रीवसहितो गत्वा तीरं महोदधेः।

समुद्रं क्षोभयामास शरैरादित्यसंनिभैः।।79।।

इसके अनन्तर सुग्रीव के साथ भगवन् राम ने महासागर के तट पर जाकर सूर्य के समान तेजस्वी बाणों से समुद्र को क्षुब्ध कर दिया।

दर्शयामास चात्मानं समुद्रः सरितां पतिः।

समुद्रवचनाच्चैव नलं सेतुमकारयत्।।80।।

तब नदीपति समुद्र ने अपने को प्रकट कर दिया, फिर समुद्र के ही कहने पर राम ने नल से सेतु (पुल) का निर्माण करवाया।

तेन गत्वा पुरीं लङ्कां हत्वा रावणमाहवे।

रामः सीतामनुप्राप्य परां व्रीडामुपागमत्।।81।।

उसी पुल से लंकापुरी जाकर रावण को मारा, फिर सीता से मिलने पर राम को बड़ी लज्जा हुई।

तामुवाच ततो रामः पुरुषं जनसंसदि।

अमृष्यमाणा सा सीता विवेश ज्वलनं सती।।82।।

तब भरी सभा में सीता के प्रति वे मर्मभेदी वचन कहने लगे। उनकी इस बात को न सह सकने के कारण सीता अग्नि में प्रवेश कर गयी।

ततोऽग्निवचनात् सीतां ज्ञात्वा विगतकल्मषाम्।

कर्मणा तेन महता त्रैलोक्यं सचराचरम्।।83।।

सदेवर्षिगणं तुष्टं राघवस्य महात्मनः।

बभौ रामस्सम्प्रहृष्टः पूजितस्सर्वदैवतैः।।84।।

टिप्पणी

इसके बाद अग्नि के कहने से उन्होंने सीता को निष्कलंक माना। राम जी के इस महान कर्म से देवता और ऋषियों सहित चराचर त्रिभुवन संतुष्ट हो गए।

अभिषिच्य च लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम्।

कृतकृत्यस्तदा रामो विज्वरः प्रमुमोद ह।।85।।

फिर सभी देवताओं से पूजित होकर राम बहुत ही प्रसन्न हुए और राक्षसराज विभीषण को लंका के राज्य पर अभिषिक्त करके कृतार्थ हो गए। उस समय निश्चिंत होने के कारण उनके आनंद का ठिकाना न रहा।

देवताभ्यो वरंप्राप्य समुत्थाप्य च वानरान्।

अयोध्यां प्रस्थितो रामः पुष्पकेण सुहृद्वृतः।।86।।

यह सब हो जाने पर राम ने देवताओं से वर पाकर और मरे हुए वानरों को जीवन दिलाकर अपने सभी साथियों के साथ पुष्पक विमान पर चढ़कर अयोध्या के लिए प्रस्थान किया।

भरद्वाजाश्रमं गत्वा रामः सत्यपराक्रमः।

भरतस्यान्तिके रामो हनुमन्तं व्यसर्जयत्।।87।।

पुनराख्यायिकां जल्पन् सुग्रीवसहितस्तदा।

पुष्पकं तत्समारुह्य नन्दिग्रामं ययौ तदा।।88।।

भरद्वाज मुनि के आश्रम पर पहुँचकर सबको आराम देने वाले सत्यपराक्रमी राम ने भरत के पास हनुमान को भेजा। फिर सुग्रीव के साथ कथा वार्ता करते हुए पुष्पकारूढ़ हो वह नंदीग्राम को गए।

नन्दिग्रामे जटां हित्वा भ्रातृभिः सहितोऽनघः।

रामः सीतामनुप्राप्य राज्यं पुनरवाप्तवान्।।89।।

निष्पाप रामचन्द्रजी ने नंदीग्राम में अपनी जटा कटवाकर भाइयों के साथ,सीता को पाने के अनन्तर, पुनः अपना राज्य प्राप्त किया।

प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः।

निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः।।90।।

न पुत्रमरणं केचिद्द्रक्ष्यन्ति पुरुषाः क्वचित्।

नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः।।91।।

अब राम के राज्य में लोग प्रसन्न, सुखी, संतुष्ट, पुष्ट, धार्मिक तथा रोग –व्याधि से मुक्त रहेंगें, उन्हें दुर्भिक्ष का भय न होगा। कोई कहीं भी अपने पुत्र की मृत्यु नहीं देखेंगें, स्त्रियाँ विधवा न होंगी, सदा ही पतिव्रता होंगी।

न चाग्निजं भयं किञ्चिन्नाप्सुमज्जन्ति जन्तवः।

न वातजं भयं किञ्चिन्नापि ज्वरकृतं तथा।।92।।

आग लगने का किंचित भय न होगा, कोई प्राणी जल में नहीं डूबेंगे, वात और ज्वर का भय थोड़ा भी न होगा।

न चापि क्षुद्भयं तत्र न तस्करभयं तथा।

नगराणि च राष्ट्राणि धनधान्ययुतानि च।।93।।

नित्यं प्रमुदितास्सर्वे यथा कृतयुगे तथा।

अश्वमेधशतैरिष्ट्वा तथा बहुसुवर्णकैः।।94।।

क्षुधा तथा चोरी का डर भी जाता रहेगा, सभी नगर और राष्ट्र धन –धान्य सम्पन्न होंगे। सतयुग की भाँति सभी लोग सदा प्रसन्न रहेंगे जिसमें बहुत सुवर्ण खर्च हुआ है वैसे सौ अश्वमेध यज्ञ करके।

गवां कोट्ययुतं दत्त्वा विद्वद्भ्यो विधिपूर्वकम्।

असंख्येयं धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो महायशाः।।95।।

राजवंशाञ्छतगुणान्स्थापयिष्यति राघवः।

चातुर्वर्ण्यं च लोकेऽस्मिन्स्वे–स्वे धर्मे नियोक्ष्यति।।96।।

महायशस्वी राम बहुत से सुवर्णो की दक्षिणा वाले सौ अश्वमेघ यज्ञ करेंगे, उनमें विधिपूर्वक विद्वानों को दस हज़ार करोड़ (एक खरब) गौ और ब्राह्मणों को अपरिमित धन देंगे तथा सौ गुने राजवंशो की स्थापना करेंगे। संसार में चारो वर्णो को वे अपने–अपने धर्म में नियुक्त रखेंगे।

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।

रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति।।97।।

फिर ग्यारह हज़ार वर्षों तक राज्य करने के अनन्तर श्रीरामचन्द्रजी अपने परमधाम को पधारेंगे।

इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम्।

यः पठेद्रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते।।98।।

वेदों के समान पवित्र, पापनाशक और पुण्यमय इस रामचरित को जो पढ़ेगा, वह सब पापों से मुक्त हो जाएगा।

एतदाख्यानमायुष्यं पठन्रामायणं नरः।

सपुत्रपौत्रः सगणः प्रेत्य स्वर्गे महीयते।।99।।

आयु बढ़ाने वाली इस रामायण कथा को पढ़ने वाला मनुष्य मृत्यु के अनन्तर पुत्र,पौत्र तथा अन्य परिजन वर्ग के साथ ही स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होगा।

पठन्द्विजो वागृषभत्वमीयात् स्यात्क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात्।

वणिग्जनः पण्यफलत्वमीया– ज्जनश्च शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात्।।100।।

इसे ब्राह्मण पढ़े तो विद्वान् हो, क्षत्रिय पढ़े तो पृथिवी का राज्य प्राप्त करे, वैश्य को व्यापार में लाभ हो और शूद्र भी प्रतिष्ठा प्राप्त करे।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बाल्काण्डे प्रथमः सर्गः।।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्षरामायण आदि काव्य के बालकाण्ड में पहला सर्ग पूर्ण हुआ।

टिप्पणी

1.3 वाल्मीकि रामायण

टिप्पणी

रामायण लगभग चौबीस हज़ार श्लोकों का एक अनुपम महाकाव्य है, जिसके माध्यम से रघुवंश के राजा राम की गाथा कही गयी है। रामायण वाल्मीकि द्वारा लिखा गया संस्कृत का एक अनुपम महाकाव्य है। इसके 24,000 श्लोक हिन्दू स्मृति का वे अंग हैं, जिनके माध्यम से रघुवंश के राजा राम की गाथा कही गयी है। इसे ही वाल्मीकीयरामायणम् कहा जाता है। रामायण के सात अध्याय हैं, जो काण्ड के नाम से जाने जाते हैं।

हिन्दू कालगणना के अनुसार रचनाकाल

रामायण का समय त्रेतायुग का माना जाता है। भारतीय कालगणना के अनुसार समय को चार युगों में बाँटा गया है–

- सतयुग
- त्रेतायुग
- द्वापर युग
- कलियुग।

एक कलियुग 4,32,000 वर्ष का, द्वापर 8,64,000 वर्ष का, त्रेता युग 12,96,000 वर्ष का तथा सतयुग 17,28,000 वर्ष का होता है। इस गणना के अनुसार रामायण का समय न्यूनतम 8,70,000 वर्ष (वर्तमान कलियुग के 5,250 वर्ष + बीते द्वापर युग के 8,64,000 वर्ष सिद्ध होता है)। बहुत से विद्वान इसका तात्पर्य ई.पू. 8,000 से लगाते हैं जो आधारहीन है। अन्य विद्वान इसे इससे भी पुराना मानते हैं।

काण्ड

रामायण के सात अध्याय हैं जो काण्ड के नाम से जाने जाते हैं–

- बालकाण्ड।
- अयोध्याकाण्ड।
- अरण्यकाण्ड।
- किष्किन्धाकाण्ड।
- सुन्दरकाण्ड।
- युद्धकाण्ड (लंकाकाण्ड)।
- उत्तरकाण्ड।

सर्ग तथा श्लोक

संस्कृत साहित्य में वाल्मीकि आदि कवि और उनकी कृति रामायण आदिमहाकाव्य के रूप में प्रसिद्ध है। तमसा के तट पर जाते हुए व्याध द्वारा मारे गये क्रौंच पक्षी के वियोग में विलाप करने वाली क्रौंची के करुण क्रन्दन से वाल्मीकि का शोक शापात्मक श्लोक के रूप में फूट पड़ा–

मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

टिप्पणी

वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में प्रथम सर्ग 'मूलरामायण' के नाम से प्रख्यात है। इसमें नारद वाल्मीकि के प्रति संक्षेप में सम्पूर्ण रामकथा का कथन करते हैं। इसके पश्चात् रामायण की मुख्य विषयवस्तु का प्रारम्भ अयोध्या के वर्णन से होता है। दशरथ का यज्ञ, तीन रानियों से चार पुत्रों का जन्म, विश्वामित्र द्वारा राम–लक्ष्मण को ले जाते हुए बला तथा अतिबला विद्याएँ प्रदान करना, राक्षसों का वध, जनक के धनुष यज्ञ में जाकर सीता का विवाह आदि वृत्तान्त वर्णित हैं। बालकाण्ड में 77 सर्ग तथा 2280 श्लोक प्राप्त होते हैं।

बालकाण्डे तु सर्गाणां कथिता सप्तसप्ततिः।
श्लोकानां द्वे सहस्रे च साशीतिशतकद्वयम्।।1।।

रामायण के बालकाण्ड का महत्त्व धार्मिक दृष्टि से भी है। 'बृहद्धर्मपुराण' में लिखा है कि अनावृष्टि, महापीड़ा और ग्रहपीड़ा से दुःखित व्यक्ति इस काण्ड के पाठ से मुक्त हो सकते हैं। अतः उक्त कार्यों हेतु इस काण्ड का पारायण भी प्रचलित है।

रामायण की रचना की भूमिका

एक दिन महर्षि वाल्मीकि अपने आश्रम में बैठे हुए परमपिता परमात्मा का चिन्तन कर रहे थे, तभी परम प्रभु भक्त महर्षि नारद भगवान के नाम का संकीर्तन करते हुए और वीणा की स्वर लहरी गुँजाते हुए वाल्मीकि जी के आश्रम में पहुँचे। अपने यहाँ नारद जी का पदार्पण होते देख ऋषिश्रेष्ठ वाल्मीकि अत्यंत प्रसन्न हुए और उनका सब प्रकार से आदर–सत्कार करके उन्हें बैठने के लिये उचित आसन प्रदान किया। फिर नारद जी से कुशल–मंगल पूछकर मुनिराज भगवन चर्चा करने लगे। सहसा उन्होंने प्रश्न किया, ''हे मुनियों में श्रेष्ठ नारद जी! आप सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और देश–देशान्तरों में भ्रमण करते हैं, नाना प्रकार के प्राणियों के बीच विचरण करते हैं। इसलिये कृपा करके यह बताइये कि इस समय सारे भूमण्डल और नव द्वीपों में ऐसा कौन सा अपूर्व मेधावी, विद्वान, परोपकारी एवं ज्ञान विज्ञान में पारंगत, धर्मात्मा तथा समस्त सद्गुणों से परिपूर्ण व्यक्ति है जो मनुष्य मात्र का ही नहीं, चर–अचर और प्राणिमात्र का कल्याण करने के लिये सदैव तत्पर रहता हो। जिसने अपने पराक्रम और त्याग से सम्पूर्ण इन्द्रियों, विषय–वासनाओं एवं मन को वश में कर लिया हो, जो कभी क्रोध, अहंकार जैसी दुष्प्रवृत्तियों के वशीभूत न होता हो। यदि ऐसा कोई महापुरुष आपकी दृष्टि में आया हो तो कृपया उसका सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझे सांगोपांग सुनाइये। उसकी पुण्य कथा सुन कर मैं कृतार्थ होना चाहता हूँ।''

महर्षि वाल्मीकि का प्रश्न सुनकर तीनों लोकों का भ्रमण करने वाले नारद जी ने कहा, ''हे मुनिराज! आपने जिन गुणों का वर्णन किया है ऐसे गुणों से युक्त व्यक्ति का इस पृथ्वी तल पर मिलना अत्यंत दुर्लभ है। फिर भी एक अद्भुत गरिमामय व्यक्ति के चरित्र का आपके सामने वर्णन करता हूँ। उसमें आपके बताये हुए सभी गुण ही नहीं हैं, बल्कि वे गुण भी हैं जिनकी आपने चर्चा नहीं की है और जो जन–साधारण की कल्पना से परे हैं। ऐसी महान विभूति का नाम रामचन्द्र है।

टिप्पणी

नारद जी द्वारा श्री रामचन्द्र जी का यह विशद वर्णन सुनकर वाल्मीकि जी बहुत अधिक प्रभावित हुए। उन्होंने नारद जी से प्रार्थना की, ''मुनिराज! कृपा करके मुझे ऐसे महान पुरुष का सम्पूर्ण चरित्र एवं क्रिया–कलाप विस्तारपूर्वक सुनाइये, जिसे सुनकर मैं अपना जीवन धन्य करना चाहता हूँ।'' इस प्रकार रामायण की रचना की पृष्ठभूमि की रचना हुई।

शिवपुराण में कहा गया है कि दयालु मनुष्य, अभिमानशून्य व्यक्ति, परोपकारी और जितेंद्रिय ये चार पवित्र स्तंभ हैं, जो इस पृथ्वी को धारण किए हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये चारों गुण एक साथ मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र में समाहित होकर पृथ्वी की धारण शक्ति बन गए हैं। राम के इन्हीं वैयक्तिक सद्‌गुणों का उच्चतम आदर्श समाज के सम्मुख प्रस्तुत करना वाल्मीकि रामायण का प्रमुख उद्देश्य है। एक आदर्श पुत्र, आदर्श पति, भ्राता एवं आदर्श राजा– एक वचन, एक पत्नी, एक बाण जैसे व्रतों का निष्ठापूर्वक पालन करने वाले राम का चरित्र उकेरकर अहिंसा, दया, अध्ययन, सुस्वभाव, इंद्रिय दमन, मनोनिग्रह जैसे षड्‌गुणों से युक्त आदर्श चरित्र की स्थापना रामकथा का मुख्य प्रयोजन है। रामायण में वर्णित राम–लक्ष्मण–सीता ईश्वर स्वरूप होकर सारे भरतखंड में पूजा–आराधना के केंद्र हो गए हैं। राम परिवार के वैचारिक, भाषिक एवं क्रियात्मक पराक्रम का वर्णन करना ही वाल्मीकि रामायण का प्रधान हेतु रहा है।

रामचरित्र के महासागर में डूबे, राम भक्ति जल से आकंठ भीगे, करुणा–प्रेम, भक्ति जैसे सकारात्मक रसों से आप्लावित वाल्मीकि तमसा नदी के तट पर स्नान की इच्छा से आए। उनके हृदय में रामभक्ति का समुद्र लहरा रहा था। सारी सृष्टि ही मानो राममय हो गई थी। राम के दैविक गुण, मानवीय वृत्तियाँ, दया, उदारता, अहिंसा, अक्रोध, परदुःख, कातरता अभी भी उनके मन–मस्तिष्क पर छाई हुई थी कि शांत रस का सामना वीभत्स एवं हिंसा वृत्ति से हुआ। शीतल भूमि पर तब एकाएक दग्धता का अनुभव हुआ, जब सामने ही एक बहेलिए ने हिंसक भावों को प्रकट करते हुए निरपराध, मूक, मैथुनरत क्रौंच पक्षी युगल में से एक को स्वार्थवश बाण से आहत कर दिया। अभी–अभी तो नारद से राम बाण, राम के शर संधान की कथा सुनी थी कि राम ने शौर्य, पराक्रम, दयालुता, उदारता आदि भावों का संरक्षण करते हुए दुष्टों के नाश एवं सज्जनों के परित्राण हेतु शस्त्र उठाए थे ...और कहाँ यह चरित्र कि अपने स्वार्थ हेतु मूक पक्षी को उस समय मार डाला जब कि वह सृष्टि की सृजन प्रक्रिया में मग्न था। दो धनुषधारी परंतु दोनों ही विपरीत दिशा में! राम के लोकहित में उठाए गए शस्त्रों के विपरीत यह शर संधान वीभत्स एवं शोक पैदा करने वाला था, जिसने वाल्मीकि को अंदर तक द्रवित कर दिया। क्रौंच पक्षी की पीड़ा से एकाकार हुए वाल्मीकि के मुँह से – **'मा निषाद...'** वाला श्लोक बह निकला। सारी घनीभूत पीड़ा श्लोक में उतर आई।

क्रौंच वध से आहत वाल्मीकि निषाद को शाप देने के बाद विरोधी भावनाओं के समुद्र में डूबते–उतरते रहे। वे कर्तव्याकर्तव्य–करणीयाकरणीय के बीच द्वंद्वात्मक स्थिति में थे कि स्वर्ग से ब्रह्मा का आरोहण हुआ। वाल्मीकि सृष्टि के निर्माता एवं जगत के पितामह को स्वयं के द्वारा निषाद को शाप देने की कथा सुनाकर पश्चात्ताप

टिप्पणी

करने लगे। इसी बीच अपने मुँह से निकले आदि श्लोक का भी वर्णन उन्होंने ब्रह्मा के समक्ष किया। वाल्मीकि के पश्चात्ताप युक्त वचन एवं आदि श्लोक की चर्चा सुनकर ब्रह्मा ने उन्हें धीरज बँधाकर दुःखी न होने को कहा। साथ ही आदेश दिया कि वे रामचरित्र का वैसा ही वर्णन करें जैसा उन्होंने ब्रह्मापुत्र नारद के मुँह से सुना था। ब्रह्मा ने इस कार्य की सफलता एवं सुसंचालन के लिए वाल्मीकि को वर दिया कि रामकथा का वर्णन करते हुए तुम्हें गुप्त एवं अज्ञात चरित्र भी ज्ञात और उजागर हो जाएँगे तथा तुम अपने योग धर्म से चरित्रों का अनुसंधान भी कर पाओगे। साथ ही जब तक सृष्टि में पर्वत–नदियाँ रहेंगे, तब तक लोग रामकथा का गान करते रहेंगे।

इतिहास पर आधारित एवं सदाचारसंपन्न आदर्शों का प्रतिपादन करने वाले काव्य को 'आर्ष महाकाव्य' कहा जाता है। वह सद्गुणों एवं सदाचारों का पोषक, धीरोदात्त, गहन आशय से परिपूर्ण, श्रवणीय छंदों से युक्त होता है। यह सर्वविदित है कि संस्कृत समस्त भारतीय भाषाओं की जननी है। अतः यह महाकाव्य समस्त भारतीय भाषाओं का पहला महाकाव्य है।

वाल्मीकि के पूर्व रामकथा मौखिक रूप से विद्यमान थी। वाल्मीकि रामायण भी दीर्घकाल तक मौखिक रूप में रही। इस मौखिक काव्य रचना को रामपुत्र लव–कुश ने कंठस्थ किया एवं वर्षों तक उसे सुनाते रहे। राम की सभा में लव–कुश द्वारा कथा सुनाने के प्रसंग पर राम अपने भाइयों से कहते हैं– ये जिस चरित्र का, काव्य का गान कर रहे हैं वह शब्दालंकार, उत्तम गुण एवं सुंदर रीति आदि से युक्त होने के कारण अत्यंत प्रभावशाली एवं अभ्युदयकारी है, ऐसा वृद्ध पुरुषों का कथन है। अतः तुम सब लोग इसे ध्यान देकर सुनो।

अंत में इस मौखिक काव्य को लिपिबद्ध करने का काम भी वाल्मीकि द्वारा ही किया गया, जिसमें 24,000 श्लोक, 500 सर्ग एवं 7 काण्ड हैं। इन 7 काण्डों पर विद्वान एकमत नहीं हैं। नास्तिक मतावलंबियों का मानना है कि 2 से 6 तक के काण्ड अयोध्या, अरण्य, किष्किंधा, सुन्दर एवं युद्ध काण्ड वाल्मीकि रचित हैं। प्रथम एवं सातवां (बाल एवं उत्तर काण्ड) वाल्मीकि रचित नहीं हैं। इस रामकथा को पौलत्स्य वध तथा दशानन वध भी कहा गया है। सारतः कहा जा सकता है कि रामायण रूपी भगीरथी को पृथ्वी पर उतारने का काम ऋषि वाल्मीकि ने किया।

रामायण और उसका महत्त्व

संस्कृत साहित्य की परिधि में किसी अन्य ग्रन्थ ने भारत के जनसाधरण को इतना अधिक प्रभावित नहीं किया है जितना कि रामायण ने। प्रोफेसर विन्टरनिट्ज की यह मान्यता है कि संसार के सम्पूर्ण साहित्य में रामायण के अतिरिक्त अन्य किसी ग्रन्थ ने शताब्दियों तक किसी राष्ट्र की विचारधारा एवं काव्य को इतना अधिक प्रभावित नहीं किया है। भारत के महान् संस्कृत कवियों यथा भास, कालिदास, भवभूति एवं अनेक कवियों ने वाल्मीकि की कृतियों से कथानक ग्रहण किये एवं उनका अपने काव्यों और नाटकों में नियोजन किया। न केवल संस्कृत के ही कवियों को इस अद्भुत काव्य से प्रेरणा मिली अपितु भारत की परवर्ती भाषाओं की कविता को भी इसी काव्य से प्रेरणा मिली। मध्ययुगीन कवियों के कर्णधार तुलसीदास का रामचरितमानस वाल्मीकि रामायण

टिप्पणी

के प्रभाव एवं प्रसिद्धि में तो लगभग प्रतिस्पर्धी ही सिद्ध हुआ। रामायण का यह प्रभाव केवल उत्तर भारत तक ही सीमित नहीं है। तमिल भाषा में लिखी गई कम्बन रामायण का दक्षिण में भी वही प्रभाव रहा जो कि उत्तर भारत में तुलसीदास की रामायण का। रामायण के इस कथानक ने भारत की सीमाओं के परे भी प्रभाव डाला और आज भी दक्षिण एशिया के बाली द्वीप में राम के इस कथानक का प्रचार मिलता है। राम के इस कथानक का प्रभाव बौद्ध साहित्य पर भी हुआ जैसे कि 'दशरथजातक' से स्पष्ट हो जाता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'महाभारत'से सम्बद्ध केवल एक ही त्यौहार है, जन्माष्टमी किन्तु राम के कथानक से सम्बद्ध अनेक त्यौहार मिलते है, जैसे रामनवमी, सीतानवमी, विजयादशमी, दीपावली, हनुमान जयंती आदि। विजयादशमी न केवल राम की रावण के ऊपर विजय को इंगित करती है अपितु वह अच्छाई की बुराई पर, पुण्य की पाप पर एवं प्रकाश की अन्धकार पर विजय को भी इंगित करती है। इसी प्रकार दीपावली न केवल राम के अयोध्या आगमन विषयक तत्क्षण अद्भुत आनन्द को ही प्रस्तुत करती है, अपितु हमारे जीवन में नैतिक आदर्शों के पुनरागमन को भी सूचित करती है। इस तरह रामायण भारतीयों के लिए उत्साह का एक अखण्ड स्रोत रही है।

रामायण की शिक्षाएं व्यावहारिक हैं। अतः उनको समझना भी सुगम है। रामायण में हमें जीवन की सूक्ष्म और गम्भीर समस्याएं सुलझे हुए रूप में मिल जाती हैं। यह धार्मिक दृष्टि से प्राचीन संस्कृति, आचार, सत्य, धर्म, व्रत पालन, विविध यज्ञों का महत्त्व आदि विषयों का ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करती है। सामाजिक दृष्टि से यह पति–पत्नी के सम्बन्ध, पिता पुत्र के कर्त्तव्य, गुरु शिष्य का पारस्परिक व्यवहार, भाई का भाई के प्रति कर्त्तव्य, व्यक्ति का समाज के प्रति उत्तरदायित्व, पिता–माता, पुत्र, भाई, पति–पत्नी के आदर्श को प्रस्तुत करती है। सांस्कृतिक दृष्टि से यह राम राज्य का आदर्श, वानर आदि जातियों में आर्य संस्कृति का प्रसार, नैतिकता, सत्य के प्रति निष्ठा और कर्त्तव्य के लिए त्याग का आदर्श चित्रण करती है। राजनीतिक दृष्टि से राजा के कर्त्तव्य और अधिकार, उसका प्रजा के साथ सम्बन्ध, उत्तराधिकार, शत्रु–नाश और सैन्य संचालन आदि विषयों का महत्त्वपूर्ण चित्रण करती है।

आदिकवि वाल्मीकि

रामायण के संस्कृत कविता का प्रधान स्रोत होने के कारण, वाल्मीकि वास्तव में आदि अर्थात प्रथम कवि के रूप में माने जाते हैं। इनसे पूर्व का वाङ्मय ऋषि दृष्ट होने के कारण वैदिक वाङ्मय है। काव्य अथवा लौकिक संस्कृत एवं उसके साहित्य के जनक होने के कारण वाल्मीकि ही आदि कवि स्वीकृत हुए हैं।

संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम काव्य निर्मित होने के कारण वेद एवं उनके अंग; वेदांग सर्वोच्च स्थान प्राप्त करते हैं।

फिर भी 'आदिकवि' यह उपनाम केवल वाल्मीकि से इतना अधिक सम्बद्ध एवं एकरूप है कि बहुत समय से यह वाल्मीकि के विशेषण के रूप में ही प्रयुक्त नहीं हुआ अपितु वाल्मीकि का सम्बोधन इसी नाम से होने लगा है। 'आदिकाव्य' यह नाम वाल्मीकि की स्वयं अपनी खोज है क्योंकि रामायण में वे अपने काव्य को 'आदिकाव्य' के नाम से सम्बोधित करते हैं। पुनश्च, जहाँ वैदिक ऋषि धर्म के व्यवस्थापन एवं प्रचार

टिप्पणी

के लिए वाणी का प्रयोग करते हैं, वहाँ लौकिक संस्कृत काल में कवियों ने उसी धर्म के तत्त्व का त्याग न करते हुए जनसमाज के आस्वादन के योग्य भी बनाया। इस सम्बन्ध में यह अवश्य कहा जा सकता है कि यह परिवर्तन वाल्मीकि के द्वारा ही आविष्कृत किया गया। अनादि रामकथानक की अनेक गाथाओं के सम्मिश्रण को पूर्वापर सम्बन्ध युक्त आदिकाव्य का स्वरूप प्रदान करने का श्रेय तो वाल्मीकि को है ही प्राचीन सूत्रों की गेय सामग्री भी वाल्मीकि के हाथों एक अद्‌भुत रचनात्मक परिणाम को प्राप्त करती है। वाल्मीकि को काव्य रचना करने की यह प्रेरणा कैसे हुई इस विषय में एक कथा प्रसिद्ध है–

''एक बार वाल्मीकि तमसा नदी के तट पर भ्रमण कर रहे थे, उस समय उन्होंने क्रौंच पक्षियों के एक युगल को तमसा तीर पर अठखेलियाँ एवं मधुर कूजन करते देखा। अचानक वहाँ एक दुष्ट निषाद 'बहेलिया' आया और उसने देखते ही देखते क्रौंचयुगल में से नरपक्षी को अपने बाण से मार गिराया। उस समय जबकि वह पक्षी खून से लथपथ हो रहा था और सहचर पक्षी विरह वेदना से करुणक्रन्दन कर रही थी तब वाल्मीकि एक प्रगाढ़ करुणा के परिद्रवित हो गये और उन्होंने उस बहेलिये के प्रति क्रोधित होकर शापयुक्त वचन कहे। ये शापवचन वाल्मीकि की वाणी से अपने आप 'श्लोक' छन्द में ही निकले। तदनन्तर भगवान् ब्रह्मा आदि कवि वाल्मीकि से रामचरित का वर्णन करने के लिए अनुरोध करते हैं।''

इस श्लोक में ही अन्य परवर्ती कवियों ने वाल्मीकि को आदि कवि मानने के औचित्य को ढूंढ़ निकाला है। आदि कवि वह नाम तो इसलिए है कि यह सचमुच एक नयी दिशा की ही खोज थी 'शोकः श्लोकत्वमागतः' यह कथन इस बात को सूचित करता है कि वाल्मीकि ने ही सर्वप्रथम इस तथ्य की गवेषणा की कि 'वास्तविक कविता कवि के हृदय का वह आकस्मिक प्रवाह है जो किसी के क्रन्दन को देखकर परिद्रवित होने पर उद्‌भूत होती है।'

मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत्क्रौंचमिथुनादकेमवधीः काममोहितम्।।

कुछ विद्वानों की सम्मति में यह साम्य ब्रह्मा से भी हो सकता है जो देववाणी के प्रथम कवि होने के नाते आदिकवि कहे जाते हैं। लौकिक संस्कृत के तो वाल्मीकि ही प्रथम कवि हैं एवं इसीलिए वे आदिकवि भी कहे जाते हैं। अमरसिंह के अनुसार 'आदि' पद का अर्थ है 'प्रथम'। अब 'प्रथम' का अर्थ कालक्रमानुसार पहला भी हो सकता है अथवा लाक्षणिक अर्थ की दृष्टि से 'श्रेणी में प्रथम' अर्थात् गणना में सर्वप्रथम भी। वाल्मीकि 'आदिकवि इसलिए भी हैं कि कालक्रमानुसार उन्होंने ही सबसे पहले काव्य के असली स्वरूप को जनसमूह के समक्ष रखा और 'आदि' इसलिए भी क्योंकि उन्होंने ही उन संस्कृत कवियों में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया जिन्होंने जीवन के सबसे सुन्दर एवं सर्वांगीण चित्रण को उपस्थापित किया।

श्लोक का आपात अर्थ तो व्याध के लिए शाप रूप है। हे व्याध, तुम पुरुषायुष तक शान्ति या प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सकोगे, क्योंकि तुमने क्रौंच युगल में से एक को मार दिया है। परन्तु इसका लाक्षणिक अर्थ यह भी बताया जाता है– हे मा निषाद हे

टिप्पणी

लक्ष्मीपते राम! आपने रावण और मन्दोदरी रूप क्रौंच युगल में से एक लोककण्टक रावण को मार डाला। इसलिये आप शाश्वत काल तक प्रतिष्ठा को प्राप्त हो। इसके तुरन्त बाद ब्रह्माजी महर्षिश्रेष्ठ से मिलने के लिये आ पहुँचे। महर्षि ने उनका पाद्य, अर्घ्य, आसन आदि से सत्कार– समर्चन किया। महर्षि क्रौंची के करुण क्रन्दनजन्य दुःख को भूले नहीं थे। ब्रह्मा जी ने मुस्कुराते हुए उनसे कहा''महर्षि, यह जो श्लोक आपने बनाया है, मेरी इच्छा से ही महाशक्ति सरस्वती आपके वन्दनारविन्द से आविर्भूत हुई है। हे ऋषि श्रेष्ठ, आप भगवान् राम का, जो धर्मात्मा एवं सबके अन्तर्यामी हैं, संपूर्ण चरित, वह चाहे गुप्त हो चाहे प्रकट हो, वर्णन करें। केवल राम का ही नहीं, लक्ष्मण का, सब राक्षसों का एवं विदेहनन्दिनी वैदेही का भी चरित चाहे प्रकट हो चाहे गुप्त हो वह सब वर्णन कीजिये। इस काव्य में आप की वाणी कदापि अनृत नहीं होगी। राम की मनोरम पुण्य कथा को श्लोकबद्ध कीजिये। जब तक पर्वत और नदियाँ भूतल में रहेंगी, तब तक आपकी रची रामकथा का प्रचार होगा।'' मान्यता है कि वेदवेद्य परम पुरुष भगवान् का दशरथ के पुत्र रामरूप में अवतार होने पर साक्षात् वेद का ही वाल्मीकि महर्षि से रामायण के रूप में अवतार हुआ।

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना।।

रामायण और महाभारत

रामायण और महाभारत इस देश के दो सबसे बड़े महाकाव्य हैं। यद्यपि दोनों ही कृतियां महाकाव्य इस समान नाम से विभूषित हैं फिर भी उनके स्वभाव में एक विशिष्ट अन्तर है। जैसा कि प्रो. ए. ए. मेकडानल्ड ने लिखा है कि 'संस्कृत' महाकाव्य के दो मुख्य भाग हैं, पहला वह जिसमें प्राचीन कथाओं का नियोजन है वह इतिहास व्याख्यान या पुराण नाम से सम्बोधित होता है, जबकि दूसरा काव्य नाम से पुकारा जाता है। महाभारत इनमें से प्रथम अर्थात् इतिहास की श्रेणी में आता है और रामायण द्वितीय समलंकृत कविता की श्रेणी में। परवर्ती आलंकारिकों के द्वारा दी गयी काव्य की परिभाषा के समस्त गुण रामायण में उपलब्ध हैं। अलंकारों के प्रयोग का प्रारम्भ इसी ग्रंथ से परिलक्षित होता है जो कि आगे चलकर अलंकारशास्त्र में निबद्ध एवं विस्तृत हुए। दूसरे यद्यपि दोनों महाकाव्यों में प्रयुक्त 'श्लोक छन्द एक ही है फिर भी महाभारत में हमें प्राचीनतर प्रक्रिया परिलक्षित होती है, जैसे कि उपजाति एवं वंशस्थ जैसे अपर छन्दों का प्रयोग जो कि वैदिक छन्दों– त्रिष्टुप् एवं जगती के विकसित रूप हैं। तीसरे, महाभारत में अनेक पात्रों का कथन इन शब्दों द्वारा प्रस्तुत किया गया है, 'संजय उवाच'– जो कि कविता या श्लोकों के अंग नहीं हैं और इस कारण से प्राचीन गद्याख्यानों के अवशिष्ट रूप लगते हैं। किन्तु रामायण में हमें ऐसी बात नहीं मिलती है। रामायण मूलतः एक ही कवि की रचना है जिसमें कथानक की योजना एवं उसके निर्वाह में कोई वैषम्य नहीं है। जैसा कि आगे निर्दिष्ट किया जायेगा कि रामायण महाभारत से प्राचीनतर है फिर भी रामायण की अपेक्षा महाभारत में अधिक आर्ष प्रयोग की भावना दृष्टिगोचर होती है। पुनश्च, ये दोनों आदि काव्य जिन स्थानों में प्रादुर्भूत हुए, वे भी भिन्न हैं।

महाभारत का सम्बन्ध उत्तर–पश्चिम भारत से है और वह तत्कालीन सभ्यता को इंगित करती है, जब कि रामायण का प्रादुर्भाव हुआ उत्तर भारत के पूर्वी क्षेत्र में जिसमें उस क्षेत्र की अधिक मानवीय एवं परिष्कृत सभ्यता परिलक्षित होती है। अन्ततः जैसा कि प्रो. मेकडानल्ड प्रस्थापित करते हैं कि रामायण में वर्णित राजनैतिक अवस्था राजाओं के पितृ परम्परा से प्राप्त आधिपत्य को इंगित करती है जिसमें छोटे–छोटे राज्य हुआ करते थे जबकि महाभारत के उल्लेख पूर्वी भारत के उन क्षेत्रों को दर्शाते हैं जिनके ऊपर जरासन्ध जैसे एक बलवान राजा का आधिपत्य था और जो मगध के अतिरिक्त और भी अधिक विस्तृत क्षेत्र में व्याप्त था–वे सब बातें ई. पूर्व. चौथी शती की राजनैतिक अवस्था को इंगित करती हैं।

रामायण का विभाजन

रामायण सात भागों में विभक्त है जिन्हें 'काण्ड' कहते हैं। प्रथम काण्ड बालकाण्ड में श्रीराम के प्रारम्भिक बाल्यकाल से यौवनकाल तक का कथानक मिलता है जिसके साथ कई प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है। दूसरा काण्ड है अयोध्याकाण्ड जिससे कि कथा के विस्तार का प्रारम्भ होता है। इसमें अयोध्या में होने वाली घटनाओं का वर्णन है। राजा दशरथ जब राम को युवराज बनाने का विचार करते हैं तब उनकी रानियों में से एक, कैकेयी आक्षेप करती है एवं राजा द्वारा पहले की गई प्रतिज्ञा के बदले यह वरदान मांगती है कि उसका पुत्र भरत राजगद्दी पर बैठे और राम को चौदह वर्ष का वनवास दिया जाए।

राजा दशरथ के पास इस बात को मानने के अतिरिक्त और कोई विकल्प न था परन्तु इस घटना से उन्हें इतना भारी धक्का पहुँचा कि उनकी आकस्मिक मृत्यु हो गई। राम ने बिना किसी प्रतिक्रिया के माता कैकेयी की दोनों मांगें सादर एवं प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लीं और राम वन के लिए चल दिए। सीता ने भी उनके साथ जाने का अनुरोध किया और लक्ष्मण ने भी उनका ही अनुगमन किया। तृतीय काण्ड में वनवास के वन्य जीवन का वर्णन है और इसीलिए उसका नाम है अरण्यकाण्ड। इसमें राक्षसराज रावण के द्वारा सीता के अपहरण का वर्णन मिलता है।

चतुर्थ काण्ड किष्किन्धाकाण्ड में राम द्वारा किष्किन्धा पर्वत पर रहने वाले वानरों के साथ की गई मैत्री का वर्णन है जिससे सीता का पता लगाया जा सके एवं उन्हें पुनः प्राप्त किया जा सके। पांचवें काण्ड, सुन्दरकाण्ड में लंका के अद्भुत द्वीप, वहां के अप्रतिम महल, रावण के अन्तःपुर एवं हनुमान द्वारा समुद्र लांघने का वर्णन है। छठे काण्ड युद्ध काण्ड में राम और रावण के युद्ध एवं राम द्वारा विजय प्राप्त कर लेने पर उनके अयोध्या आगमन का वर्णन है। अन्तिम काण्ड, उत्तराकाण्ड में श्रीराम के परवर्ती जीवन का वर्णन है।

रामायण की शैली

महर्षि वाल्मीकि की शैली को वैदर्भी कह सकते हैं। इसमें भाव–भाषा का समन्वय, सरलता, सुबोधता आदि सभी गुण संनिहित हैं। इसमें शैली के तीनों गुण प्रसाद, ओज और माधुर्य हैं।

टिप्पणी

भाषा– रामायण की भाषा सुन्दर, सरल, ललित, प्रांजल एवम् परिष्कृत है। वाल्मीकि का भाषा पर असाधारण अधिकार है। वे प्रसंग एवम् भावों के अनुरूप शब्दावली का चयन करते हैं। प्राचीन होने पर भी कालिदास आदि की भाषा के तुल्य प्रौढ़ता एवं परिष्कार परिलक्षित होता है। यथा– सुमुखी नायिका के समान शरत्कालीन रात्रि की शोभा का वर्णन है–

रात्रिः शशांकोदितसौम्यवक्त्रा, तारागणोन्मीलितचारुनेत्रा।
ज्योत्स्नांशुकप्रावरणा विभाति नारीव शुक्लांशुकसंवृतांगी।।

किष्किन्धाकांड, सर्ग 30–श्लोक 46

रस– रामायण में प्रायः सभी रस प्राप्त होते हैं। करुण, शृंगार और वीर इनमें मुख्य हैं। करुण रस अंगी है। शृंगार के दोनों पक्षों संयोग और विप्रलंभ का वर्णन प्राप्त होता है। अनेक प्रसंगों में मुख्यतः युद्ध काण्ड में वीर रस ही प्रमुख है। सीतावियोग वर्णन में विप्रलंभ शृंगार का सुन्दर एवम् सजीव चित्रण है। सीता परित्याग के बाद राम की दयनीय मानसिक स्थिति के वर्णन में करुण रस की स्रोतस्विनी का अमन्द प्रवाह प्रसूत होता है। इस प्रकार रस–परिपाक के कारण वाल्मीकि को रस सिद्ध कवीश्वर कहा जाता है।

छंद– वाल्मीकि का प्रिय छन्द अनष्टुप् है। अधिकांश श्लोक अनुष्टुप् छंद में हैं। पर स्थान–स्थान पर मुख्यतः सर्ग के अंत में इन्द्रवज्रा, उपजाति आदि छंद भी प्राप्य हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने रामायण की रचना श्लोकों अर्थात् केवल अनुष्टुप छंद में मानी है और श्लोक शब्द का अर्थ केवल अनुष्टुप् छंद माना है। यह सर्वथा भ्रान्त धारणा है। संस्कृत में 'श्लोक' शब्द पद्य बद्ध किसी भी रचना के लिये है। यह अनुष्टुप का भी पर्यायवाची है, जिसके कारण भ्रान्त धरणा हुई है।

अलंकार– महर्षि वाल्मीकि ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का विशेष प्रयोग किया है। ऋतु वर्णनों में अलंकारों की छटा विशेष रूपेण दर्शनीय है। यथा– बादलों में चमकती हुई बिजली की रावण से अपहृत छटपटाती हुई सीता से उपमा–

नीलमेघाश्रिता विद्युत् स्फुरन्ती प्रतिभाति मे।
स्फुरन्ती रावणस्यांके वैदेहीव तपस्विनी।।

वसंत ऋतु के वर्णन में वायु के फूलों से खेलने की बहुत सुन्दर उत्प्रेक्षा एक गेंद के खिलाड़ी से की गई है जिसकी गेंद कभी नीचे, कभी ऊपर और कभी बीच में होती है।

पतितैः पतमानैश्च पादपस्थैश्च मारुतः।
कुसुमैः पश्य सौमित्रो, क्रीडन्निव समन्ततः।।

प्रकृति–चित्रण – वाल्मीकि न केवल बाह्य प्रकृति के विशद चित्रण में असाधरण रूप से पटु हैं, अपितु अन्तः प्रकृति के निरूपण में भी सिद्धहस्त हैं। रामायण

टिप्पणी

में प्रकृति चित्रण के अनेक प्रसंग हैं। इसमें नगर, ग्राम, आश्रम उपवन, वन, पर्वत, नदी, पम्पा सरोवर, सेना, चंद्रोदय आदि के वर्णन अत्यन्त सरस, भावपूर्ण, सजीव, एवम् रोचक हैं। जैसे अयोध्याकाण्ड में चित्रकूट– वर्णन, अरण्यकाण्ड में वन, आश्रम, शरद् एवम् हेमन्त ऋतु वर्णन, किष्किन्धाकाण्ड में पंपासरोवर वर्णन, सुन्दरकाण्ड में चंद्रोदय वर्णन, युद्ध काण्ड में सेना और युद्ध का वर्णन विशेष उल्लेखनीय हैं। चंद्रोदय का उपमा अलंकार युक्त वर्णन इस प्रकार है–

हंसो यथा राजतपंजरस्थः, सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः।
वीरो यथा गर्वितकुंजरस्थश्चन्द्रोपि बभ्राज तथाम्बरस्थः।।

रामायणकालीन समाज और संस्कृति

रामायण काव्य, महाकाव्य या वीरकाव्य ही नहीं है, इसका इससे भी अधिक महत्त्व है। यह आर्यों का आचार–शास्त्र एवम् धर्मशास्त्र है। इसमें मानवजीवन का सर्वांगीण आदर्श प्रस्तुत हुआ है। यही नहीं, इसमें धर्मिक दृष्टि से प्राचीन संस्कृति, आचार, सत्य, धर्म, व्रतपालन, विविध यज्ञों का महत्त्व आदि का पूर्ण इतिहास समाविष्ट है।

श्री शांतिकुमार नानू रामव्यास ने अपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'रामायणकालीन समाज' में वाल्मीकि रामायण में वर्णित सामाजिक, आर्थिक एवम् प्रशासनिक व्यवस्था का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है। वाल्मीकि और उनके काव्य का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है– 'वाल्मीकि रामायण भारत का राष्ट्रीय आदि–काव्य ही नहीं अपितु धर्मिक एवम् नैतिक आदर्शों का भण्डार होने के साथ–साथ एक महत्त्वपूर्ण मानवीय समाज शास्त्र भी है जो सहस्रों शताब्दियों पूर्व के भारतीयों के जीवनयापन का रोचक वृत्तान्त उपस्थित करता है। एक पुरातन युग की जीवित परम्पराओं, धारणाओं, चिन्तनों, अकांक्षाओं, और भावनाओं का चित्रण करने के कारण यह प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति की बहुमूल्य निधि है। उसकी उपमा एक ऐसे पर्वत से दी जा सकती है, जिसकी चोटी से हम प्राचीन आर्यों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवम् कला सम्बन्धी क्रियाकलाप का सम्यग् दर्शन कर सकते हैं। तत्कालीन भारतीय समाज के अनेक अस्पष्ट पक्षों पर वाल्मीकि के काव्य से जैसा प्रकाश पड़ता है वैसा अन्य किसी स्रोत से नहीं। उत्तर वैदिक भारत के सामाजिक इतिहास के शोध में रामायण का योग और भी महत्त्वपूर्ण इसलिए हो जाता है कि यह आज करोड़ों भारतीयों के धार्मिक विश्वासों के साथ अविच्छिन्न रूप से गुँथी हुई है।

धर्म प्रधान संस्कृति

रामायणकालीन संस्कृति में धर्म का प्रमुख स्थान है। दशरथ के राज्य में कोई झूठा, दुष्ट एवम् व्यभिचारी व्यक्ति न था। रामराज्य का तो कहना ही क्या, रामराज्य में सभी लोग दीर्घायु स्वाध्यायशील और धर्मनिष्ठ थे इसीलिये कहा गया–

नाकाले म्रियते कश्चिन्न व्याधिः प्राणिनां तथा।
न चार्तो विद्यते कश्चिद् रामे राज्यं प्रशासति।।

रामायण 7–99–13

टिप्पणी

प्रजा फल फूल रही थी। किसी को दैहिक, दैविक, भौतिक ताप, व्याप्त नहीं होते थे। इन सबका कारण था राजा का आदर्श पुरुष होना, क्योंकि यथा राजा तथा प्रजा। रामायण में भी राजा के इस महत्त्व का वर्णन मिलता है। रामायणकालीन संस्कृति में राजा का व्यक्तिगत चरित्र आदर्श बन गया। इसीलिये वह प्रजापालन में अधिक तत्पर एवम् सावधान हुआ। राजा के व्यक्तिगत आचरण में असाधरण आदर्श की प्रतिष्ठा हुई। राम में ये सब गुण एकत्र मिलते हैं।

राजनीतिक स्थिति

रामायण में 18 राज्य पदाधिकारियों का वर्णन उपलब्ध है। इन्हें तीर्थ कहते हैं। अयोध्याकाण्ड में इनकी गणना हुई है। मंत्री, पुरोहित, युवराज, चमूपति, द्वारपाल, अन्तर्वेशिक, कारागारधिकारी, द्रव्यसंचयकृत, कृत्याकृतेषु चार्थानाम् विनियोजक, प्रदेष्टा, नगराध्यक्ष, कार्यनिर्माणकृत, धर्माध्यक्ष, सभाध्यक्ष, दण्डपाल, दुर्गपाल, राष्ट्रान्तपालक तथा अटवीपालक। इनमें मंत्री का सर्वाधिक महत्त्व है। "अमात्यैः कामवृत्तो हि राजा कुपथमाश्रितः।"

अर्थात् उन्मार्गगामी राजा को अच्छे मंत्रियों के नियंत्रण में रहना चाहिये। अतः मंत्री का राजनीति में प्रवीण होना अनिवार्य था। उसे नीतिशास्त्र विशारद कहा गया है इसीलिये रामायण में कुलशील वृद्धों को मंत्री बनाने का परामर्श दिया गया है। उन्मार्गगामी उच्छृंखल राजा मंत्रियों द्वारा दण्डनीय है–

निग्राह्यः सर्वथा सद्भिः स निग्राह्यो न गृह्यते।

राजा की आज्ञा से क्षुब्ध होकर सुमंत ने दशरथ की तथा कैकेयी की भर्त्सना की थी। रामायण में एक स्थान पर राजा के प्रति पूज्य भावना प्रकट करते हुए उसे 'इन्द्रस्यैव चतुर्भागः' कहा है। एक अन्य स्थान पर 'देवा मानुषरूपेण चरन्त्येते महीतले' कहकर उसे देवता ही कहा है। यहाँ राजा में देवता के से उत्कृष्ट गुणों की सराहना की गई है। राजा ही धर्म और पाप का मूल है–

राजा धर्मश्च कामश्च द्रव्याणां चोत्तमो निधिः।
धर्मः शुभं वा पापं वा राजमूलं प्रवर्तते।।

स्त्रियों की स्थिति

रामायण काल में पत्नी का यथेष्ट सम्मान था। वह सच्चे अर्थों में सहधर्मचारिणी थी। सीता के विनाश की कल्पना से राम शोकाविष्ट हो जाते हैं क्योंकि उनके नष्ट होने पर राम द्वारा धर्म का पालन संभव नहीं। अतः उनके हृदय में कारुण्य की भावना प्रवाहित होने लगी–

स्त्री प्रणष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः।
पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च।।

रामायण काल में नारियां शिक्षित, धर्मपरायण, राजनीति में कुशल एवम् विदुषी थीं। आर्येतर नारियां; वानर व राक्षस वर्ग की भी विदुषी होती थीं। वानरराज बालि की पत्नी तारा पतिपरायणा, सुशिक्षित एवम् विदुषी थी। सुग्रीव का यह कथन द्रष्टव्य है– सुषेण की पुत्री तारा, सूक्ष्म विषयों का निर्णय करने तथा नाना उत्पातों के चिह्नों को

टिप्पणी

समझने में निपुण थी, उसकी सम्मति का विपरीत परिणाम संभव नहीं। तारा ने कुपित लक्ष्मण को पौराणिक दृष्टान्त देकर शांत किया और बाद में सीता के अनुसंधान की योजना बनाई। सुग्रीव के राज्य का संचालन एवं नीति निर्धारण तारा ही करती थी। रामायणकालीन नारी धर्मपरायण थी। उसका दैनिक जीवन कठोर धार्मिक बंधनों में बंधा था। पति–सेवा उनका परमधर्म था। उन्हें विभिन्न धार्मिक अनुष्ठान करने होते थे। गर्भवती महिला गर्भस्थ शिशु के अच्छे संस्कारों के लिए शास्त्र प्रवचन सुनती थी। पुलस्त्य मुनि की पत्नी गर्भावस्था में वेद पाठ श्रवण करती रहती थीं, इसी कारण उनका पुत्र 'विश्रवा' कहलाता है। धर्मिक कृत्यों में पत्नी अपने पति की सहचारिणी थी। बिना पत्नी के किया पति का कोई भी धार्मिक अनुष्ठान सफल नहीं होता था। राम के राज्याभिषेक के समय कौशल्या को मंत्रों सहित यज्ञ में आहुति देते हुए दिखाया गया है। रामायण काल में स्वयंवर प्रथा, अन्तर्जातीय विवाह आदि के प्रचलन का भी बोध होता है। उत्तरकाण्ड में अंतर्जातीय विवाह की बढ़ती हुई प्रवृत्ति का संकेत मिलता है। क्षत्रिय ययाति और ब्राह्मण देवयानी का अपवाद–स्वरूप विवाह सम्बन्ध इस प्रवृत्ति का उदाहरण कह दिया जाता है। वास्तव में कन्या 'पितृवशा' थी और माता–पिता की इच्छा के विरुद्ध हुए विवाह निन्दनीय माने जाते थे। वायु द्वारा कुशानाम कन्याओं में भार्या बनने के प्रस्ताव के उत्तर में उनका यह कथन उनके 'पितृवशा' होने का प्रमाण है–

'यस्य नो दास्यति पिता स नो भर्ता भविष्यति'।

रामायण काल में विवाह सम्बन्धों में ज्योतिष और सामुद्रिक शास्त्र का विचार भी आवश्यक था। साथ ही कन्या एवम वर के लक्षणों का भी विचार किया जाता था। रामायण में प्राप्त कुछ वर्णनों से ज्ञात होता है कि उस युग में आर्य और अनार्य दोनों वर्गों की स्त्रियां पर्दा करती थीं। सीता वनगमन का प्रसंग इसका प्रमाण है। राक्षसों में भी पर्दा–प्रथा थी। रावण की मृत्यु पर मंदोदरी युद्ध स्थल में विलाप करती हुई कहती है'– 'स्वामी! मैं पर्दा छोड़कर नगर द्वार से पैदल चलकर प्रासाद से बाहर आई हूँ। मुझे देखकर आप क्रुद्ध क्यों नहीं होते? इससे सिद्ध होता है कि उस काल में स्त्रियां अवगुण्ठन तो करती थीं परन्तु उनके भ्रमण पर प्रतिबंध नहीं था। खेल–कूद आदि व्यसनों, संकट के समय, स्वयंवर एवम् विवाह तथा यज्ञ में स्त्रियों को देखे जाने में अवगुण्ठनहीन होने में, दोष नहीं माना जाता था–

व्यसनेषु न कृच्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयंवरे।
न कृत्ये न विवाहे वा दर्शनं दुष्यते स्त्रियः।।

युद्ध काण्ड 11 –27

रामायण काल में पतिव्रत धर्म का बहुत अधिक महत्त्व था–

'भर्ता हि परदैवतम्' अयोध्या काण्ड

सीता ने धर्मशास्त्रानुसार पति की सहधर्मिता की चर्चा की है। पति की सहधर्मिणी होने के कारण पति के भाग्य तथा पति द्वारा अनुष्ठित कर्म का फल–भोग पत्नी ही करती है। अन्य सम्बन्ध पिता, पुत्र आदि अपने–अपने फल भोगते हैं। स्त्रियों के लिए

तो न पिता, न पुत्र, न माता, न सखीजन यहाँ तक कि अपनी आत्मा की भी गति नहीं है। इस लोक में तथा परलोक में स्त्री के लिए एकमात्र पति ही गति है। पति आभूषणों से अधिक नारी की शोभा बढ़ाने वाला है –'

टिप्पणी

भर्ता नाम परं नार्या शोभनं भूषणादपि'।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि रामायण काल में नारी का पर्याप्त सम्मान था।

अपनी प्रगति जांचिए

1. रामः कस्मिन् वेदे निष्ठतिः प्रोक्तः?
   (क) ऋग्वेदे (ख) आयुर्वेदे
   (ग) धनुर्वेदे (घ) अथर्ववेदे
2. वीर्ये रामः कस्य सदृशः आसीत्?
   (क) सोमस्य (ख) कालस्य
   (ग) पृथिव्याः (घ) विष्णोः
3. कस्य प्रियकारणात् रामः वनं जगाम?
   (क) कौसल्यायाः (ख) कैकेय्याः
   (ग) सीतायाः (घ) सुमित्रायाः
4. जनस्थाने कियन्तो राक्षसाः रामेण निहताः?
   (क) चतुर्दशसहस्राः (ख) त्रयोदशसहस्राः
   (ग) पञ्चदशसहस्राः (घ) इनमें से कोई नहीं

1.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (घ)
3. (ख)
4. (क)

1.5 सारांश

इस इकाई के बालकांड के प्रथम सर्ग के अंतर्गत सर्वप्रथम मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि ने देवर्षि नारद से विशिष्ट गुणवान् धर्मज्ञ–वीर का परिचय पूछा है। परिचय–पृच्छा के अंतर्गत वाल्मीकि ने कृतज्ञता, शुद्ध चरित्र, प्रियदर्शनत्व, जितक्रोधत्व, अनसूयकत्व, सुरभयोत्पादक क्रोधत्व आदि अन्य गुणों का भी उल्लेख किया है।

टिप्पणी

इन समस्त गुणों का धरातल पर एकत्र एक ही व्यक्ति में उपलब्ध होना, यद्यपि असंभवप्राय है, तथापि इनमें अन्य गुणों का भी समावेश करके देवर्षि ने अपने उत्तर में श्रीराम का विस्तृत परिचय वाल्मीकि जी को दे डाला। न केवल परिचय अपितु श्रीराम का संपूर्ण जीवनचरित देवर्षि ने 88 श्लोकों में कलशान्तर्गत–समुद्रवत् उपस्थापित कर दिया। इस घनीभूत समुद्र को ही तदनन्तर महर्षि वाल्मीकि ने रामायणम् नामक महार्णव के रूप चतुर्विंशति–साहस्री संहिता के रूप में उपनिबद्ध किया। अतः इस इकाई को रामायण सार के रूप में भी समझा जा सकता है।

1.6 मुख्य शब्दावली

- **मुनिपुङ्गवः** – श्रेष्ठ मुनि।
- **संयुगे** – युद्ध में।
- **कीर्तिताः** – वर्णन किए गए।
- **महोरस्कः** – विशाल वक्षस्थल वाला।
- **विलपन्** – विलाप करता हुआ।
- **पादुके** – खड़ाऊँ।
- **कामरूपिणी** – इच्छानुसार रूप बदलने में समर्थ।
- **सख्यं** – मैत्री।
- **तोरणम्** – प्रवेशद्वार।
- **वागृषभत्वम्** – वैदुष्य।

1.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. वाल्मीकि मुनि ने देवर्षि नारद से क्या पूछा?
2. श्रीराम के शरीर की शोभा को देवर्षि नारद ने किस रूप में बताया।
3. शृङ्गवेरपुर में श्रीराम की भेंट किससे हुई?
4. चित्रकूट में किस ऋषि से आज्ञा पाकर निवास किया।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. बालकाण्ड के प्रथम सर्ग का सार लिखिए।
2. भारतीय संस्कृति और साहित्य पर रामायण के प्रभाव को विस्तारपूर्वक लिखिए।
3. 'रामायण – महाभारत' एक व्यक्ति की रचनाएं न होकर, कई व्यक्तियों की रचनाएं है – युक्ति–युक्त उत्तर दीजिये।
4. 'रामायण ' महाकाव्य का सामान्य परिचय दीजिये।
5. 'रामायण' एक आदर्शों का महाकाव्य है, स्पष्ट कीजिये।

टिप्पणी

6. रामायण के बाल कांड के आधार पर श्रीराम के चरित्र पर प्रकाश डालिए।
7. रामायण का मुख्य रस क्या है?
8. रामायण की प्रधान कथा का उल्लेख कर, उसके प्रक्षिप्त अंशों की सकारण विवेचना कीजिये।
9. रामायण के रचना काल के विषय में विद्वानों के विचारों का प्रतिपादन कीजिये।

1.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. *रामायण,* द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी शर्मा, इलाहाबाद, 1950 (हिन्दी अनुवाद सहित)
2. *साम्ब पुराण,* हिन्दी रूपान्तर, – इण्डोलॉजिकल पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1975
3. डॉ. भगवती लाल राजपुरोहित– *भारतीय कला और संस्कृति,* शिवालिक प्रकाशन, दिल्ली, 2003
4. डॉ. कपिल देव मिश्र, *प्राचीन भारतीय साहित्य एवं कला में कार्तिकेय,* दुर्गा पब्लिकेशन, दिल्ली, 1995
5. ए.ए. मैकडॉनल, *द वैदिक माइथालॉजी,* वाराणसी, 1963
6. *रामराज,* ऑव मानसार ए. मैकडॉनल, ए.बी. कीथ – वैदिक इण्डेक्स, भाग 1–2, वाराणसी, 1922

इकाई 2 महाभारते शान्तिपर्वणि द्विनवत्यधिकैकशततमोऽध्यायः

टिप्पणी

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 महाभारतम् – द्विनवत्यधिकैशततमः (192) अध्यायः – शान्तिपर्व (मोक्षधर्म पर्व)
2.3 शान्तिपर्व तथा महाभारत विमर्श
2.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.5 सारांश
2.6 मुख्य शब्दावली
2.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.8 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

इस इकाई में महाभारत के 12 वें पर्व शान्तिपर्व के अन्तर्गत **मोक्षधर्म पर्व के 192 वें अध्याय गद्य**–पद्यमय भाग का सरलार्थ पढ़ेंगे, जिसमें वानप्रस्थाश्रमियों के लिए निर्धारित जीवनचर्या और संन्यासियों के आचरण के बारे में बताया गया है।

इस अध्याय के प्रारंभ में तीन गद्यांश हैं। तत्पश्चात् 24 श्लोकों का वर्णन अवशिष्ट कथ्य तथा अनुष्टुप् आदि छन्दों में वर्णित हैं। वस्तुतः प्रथम तीन गद्यांशों में वानप्रस्थियों के तपश्चर्यापूर्ण जीवन का विशिष्टि उल्लेख हुआ है। तदनन्तर पुण्यलोक एवं पापाचारी लोक की तुलना दृष्टिगत होती है। समग्र अध्याय में पापकर्मों के त्याग और पुण्य पथ के अवलम्बन की प्रेरणा दी गई है। इसके अतिरिक्त महाभारत के स्वरूप और शान्ति पर्व के वैशिष्ट्य की चर्चा भी इस इकाई की उपयोगिता की श्रीवृद्धि में सहायक है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप–

- वानप्रस्थाश्रमियों की दिनचर्या व व्यवहार को जानेंगे;
- पुण्य लोकों में निवास करने वालों के आचरण से परिचित होंगे;
- महाभारत व तदन्तर्गत शान्तिपर्व के वैशिष्ट्य से भी परिचित हो जाएंगे।

2.2 महाभारतम् – द्विनवत्यधिकैशततमः (192) अध्यायः – शान्तिपर्व (मोक्षधर्म पर्व)

वानप्रस्थ और संन्यास धर्मों का वर्णन तथा हिमालय के उत्तर पार्श्व में स्थित उत्कृष्ट लोक की विलक्षणता एवं महत्ता का प्रतिपादन, भृगु–भरद्वाज–संवाद के अंतर्गत

टिप्पणी

वानप्रस्थाः खल्वपि धर्ममनुसरन्तः पुण्यानि तीर्थानि नदीप्रस्रवणानि सुविविक्तेष्वरण्येषु मृगमहिषवराहशार्दूलवनगजाकीर्णेषु तपसान्तोऽनुसंचरन्ति त्यक्तग्राम्यवस्त्राभ्यवहारोपभोगा वन्यौषधिफलमूलपर्णपरिमितविचित्रनियताहाराः स्थानासनिनो भूमिपाषाणसिकताशर्करावालुकाभस्मशायिनः काशकुशचर्मवल्कलसंवृताङ्गाः केशश्मश्रुनखरोमधारिणो नियतकालोपस्पर्शना अस्कन्दितकालबलिहोमानुष्ठायिनः समित्कुशकुसुमापहारसम्मार्ज्जनलब्धविश्रामाः शीतोष्णवर्षपवनविष्टम्भविभिन्नसर्वत्वचो विविधनियमोपयोगचर्यानुष्ठानविहितपरिशुष्कमांसशोणितत्वगस्थितभूता धृतिपराः सत्त्वयोगाच्छरीराण्युद्वहन्ते।।1।।

महर्षि भृगु ने ऋषि भरद्वाज से यह कथन कहा – हे! मुनिश्रेष्ठ, तीसरे अर्थात् वानप्रस्थ आश्रम का पालन करने वाले मानवजन धर्म का पालन करते हुए शुचि तीर्थों में, नदियों के तटों पर, झरनों के पास और जहाँ जंगली पशु जैसे मृग, भैंस, सूअर, सिंह और जंगली हाथियों से भरे हुए एकांत वनों में विचरण करते रहते हैं। वे लोग (वानप्रस्थ आश्रमवासी) गृहस्थ आश्रम के सुन्दर वस्त्रों का त्याग करके, स्वादिष्ट भोजन को न ग्रहण कर, विषयभोगों का परित्याग करके, वनों में स्वयं से उत्पन्न होने वाले कंद, मूल, फल का अत्यल्प मात्रा में, संयमित एवं नियत सेवन करते है। घास, जूट, मृगचर्म, पेड़ों की छाल से अपना तन ढकते हैं। सिर पर केशों को, दाढ़ी, मूँछ, नाखून को हमेशा धारण किये रहते हैं। निश्चित समय स्नान करके और निर्धारित समय का उल्लंघन न करके यज्ञोपवीत होम तथा अग्निहोत्र आदि का अनुष्ठान करने में तत्पर रहते हैं। ये (वानप्रस्थ आश्रमवासी) प्रातः काल फल – फूल, हवन सामग्री का संग्रह करके तथा आश्रम को झाड़ – बुहार कर किंचित् समय विश्राम करते हैं। (सभी ऋतुओं) शीत, ग्रीष्म, वर्षा और तीव्र वायु का वेग सहते – सहते उनके शरीर की त्वचा फट जाती है। विभिन्न प्रकार के कठोर नियमों का पालन करने के कारण और श्रेष्ठकर्मों का अनुष्ठान करने की वजह से इनके रक्तकोष एवं मासपंजर सूख जाते है और हृष्ट – पुष्ट शरीर के स्थान पर हड्डियों का ढांचा मात्र शेष रह जाता है। तथापि वे धैर्य धारण करते हुए तपयोग की शक्ति से शरीर का भार वहन करते रहते हैं।

यस्त्वेतां नियतश्चर्यो ब्रह्मर्षिविहितां चरेत् स दहेदग्निवद्दोषान् जयेल्लोकांश्च दुर्जयान्।।2।।

आगे भृगु मुनि बताते है कि इस प्रकार जो व्यक्ति (वानप्रस्थ आश्रमवासी) नियत नियमों का पालन करते हुए और महर्षियों द्वारा बतलाई गयी इस वानप्रस्थ विधि का अनुष्ठान करता है, वह (वानप्रस्थानुचारी) अग्नि के समान अपने समस्त पापों को भस्म करके दुर्लभ लोकों को प्राप्त कर लेता है।

परिव्राजकानां पुनराचारः – तद् यथा विमुच्याग्निधनकलत्रपरिबर्हणं सङ्गेष्वात्मनः स्नेहपाशानवधूय परिव्रजन्ति। समलोष्टाश्मकाञ्चनास्त्रिवर्ग प्रवृत्तेष्वसक्तबुद्धयोऽरिमित्रोदासीनानां तुल्यदर्शनाः स्थावर–जरायुजाण्डज–स्वेदजोद्भिज्जानां भूतानां वाङ्मनःकर्मभिरनभिद्रोहिणोऽनिकेताः पर्वतपुलिनवृक्षमूल देवतायतनान्यनुचरन्तो वासार्थमुपेयुर्नगरं ग्रामं वा नगरे पञ्चरात्रिका ग्रामे चैकरात्रिकाः प्रविश्य च प्राणधारणार्थं द्विजातीनां भवनान्यसंकीर्णकर्मणामुपतिष्ठेयुः पात्रपतितायाचितभैक्ष्याः कामक्रोधदर्प–लोभमोहकार्पण्यदम्भपरिवादाभिमानहिंसानिवृत्ता इति।।।3।।

टिप्पणी

इसके पश्चात् (वानप्रस्थ आश्रम के बाद) संन्यासियों का आचरण– व्यवहार भृगु मुनि ने बताया– संन्यास आश्रम में प्रवेश करने वाले पुरुष अग्निहोत्र, धन–सम्पदा, स्त्री आदि परिवार का तथा घर की सम्पत्ति का त्याग करके भोग–विलास और संगी –साथियों के प्रति मोह के बंधनों को तोड़कर सदैव के लिए घर का त्याग कर देते हैं। पाषाण और स्वर्ण को एक समान जानते हैं। अर्थ और काम के प्रति उनमें लेशमात्र लगाव शेष नहीं रह जाता, शत्रु–मित्र सबके प्रति समान दृष्टि रखते हैं। स्थावर, पिण्डज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज प्राणियों के प्रति उनका व्यवहार कभी भी विद्रोह पूर्ण नहीं होता है। वे कभी आश्रम या कुटी बनाकर नहीं रहते। उनके लिए ग्रंथों में यह निर्देश है कि वे सभी ओर विचरण करते रहें तथा रात्रि में पर्वत की गुफा, नदी का तट, पेड़ का आश्रय, मंदिर, नगर या गांव में आश्रय ले। नगर में पांच रात और गांव में एक रात से अधिक न ठहरें। अपने प्राण धारण करने योग्य भोजन हेतु ऐसे ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य के द्वार जाएं जो धर्मानुसार आचरण करता हो। बिना मांगे ही पात्र में जितनी भिक्षा आ जाए उसे ही स्वीकार करें। काम, क्रोध, दर्प, लोभ, मोह, कृपणता, दम्भ, निंदा, अभिमान तथा हिंसा से सर्वथा दूर रहें।

भवति चात्र श्लोकः –

अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्वा यश्चरते मुनिः।
न तस्य सर्वभूतेभ्यो भयमुत्पद्यते क्वचित्।।4।।

इस विषय में यह श्लोक प्रसिद्ध है–

जो ऋषिवर इस प्रकार समस्त प्राणियों को अभयदान देकर विचरण करता है, उस ज्ञानी संन्यासी के लिए समस्त प्राणियों से किसी भी प्रकार का भय शेष नहीं उत्पन्न होता है।

कृत्वाग्निहोत्रं स्वशरीरसंस्थं
शारीरमग्निं स्वमुखे जुहोति।
विप्रस्तु भैक्ष्योपगतैर्हविर्भि
–श्चिताग्निना स व्रजते हि लोकम्।।5।।

जो संन्यासी ब्राह्मण अग्निहोत्र को अपने शरीर में धारण करके शरीर में स्थित अग्नि के उद्देश्य से अपने मुख में प्राप्त भिक्षा रूपी हविष्य का होम करता है, वह अग्नि – चयन करने वाले अग्निहोत्रियों के लोक में जाता है।

मोक्षाश्रमं यश्चरते यथोक्तं
शुचिः सुसंकल्पितमुक्तबुद्धिः।
अनिन्धनं ज्योतिरिव प्रशान्तं
स ब्रह्मलोकं श्रयते मनुष्यः।।6।।

जो बुद्धि को संकल्परहित करके पवित्र हो शास्त्रोक्त विधि के अनुसार मोक्ष–आश्रम (संन्यास) के नियमों का पालन करता है, वह मनुष्य बिना ईंधन की आग के समान परम शांत ज्योतिर्मय ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है।

टिप्पणी

भरद्वाज उवाच

अस्माल्लोकात् परो लोकः श्रूयते नोपलभ्यते।

तमहं ज्ञातुमिच्छामि तद् भवान् वक्तुमर्हति।।7।।

ऋषि भरद्वाज ने पूछा–

हे! ऋषिवर, इस संसार में कोई अन्य श्रेष्ठ लोक सुना जाता है ; किन्तु देख़ने को नहीं मिलता। मैं उस श्रेष्ठ लोक को जानना चाहता हूँ, कृपा करके उसे बताने का कष्ट करें।

भृगुरुवाच

उत्तरे हिमवत्पार्श्वे पुण्ये सर्वगुणान्विते।

पुण्यः क्षेमश्च काम्यश्च स परो लोक उच्यते।।8।।

भृगु जी ने कहा–

हे मुने! उत्तर दिशा के हिमालय के पार्श्वभाग में, जो समस्त गुणों से सम्पन्न एवं पुण्यमय प्रदेश है, वहां के भू–भागपर श्रेष्ठ लोक बताया जाता है, वह पवित्र, कल्याणकारी और कमनीय लोक है।

तत्र ह्यपापकर्माणः शुचयोऽत्यन्तनिर्मलाः।

लोभमोहपरित्यक्ता मानवा निरुपद्रवाः।।9।।

वह पवित्र स्थल पापकर्म से रहित, पवित्र, अत्यंत निर्मल, लोभ और मोह से शून्य तथा सब प्रकार के उपद्रवों से रहित है जहाँ श्रेष्ठ मानव निवास करते है।

स स्वर्गसदृशो देशस्तत्र ह्युक्ताः शुभा गुणाः।

काले मृत्युः प्रभवति स्पृशन्ति व्याधयो न च ।।10।।

वह ऐसा स्वर्ग के सदृश प्रदेश है कि उस स्थान पर सभी शुभ गुणों की स्थिति बतायी गयी है। वहाँ निर्धारित समय पर ही मृत्यु होती है। रोग–व्याधि किसी का स्पर्श नहीं करते हैं।

न लोभः परदारेषु स्वादरनिरतो जनः।

नान्योऽन्यं बध्यते तत्र द्रव्येषु च न विस्मयः।

परो ह्यधर्मो नैवास्ति सन्देहो नापि जायते ।।11।।

वहाँ किसी भी व्यक्ति के मन में पर स्त्री के प्रति दुर्भाव नहीं होता।सब लोग अपनी ही स्त्रियों में अनुरक्त रहते हैं। वहाँ के निवासी धन के लिये एक दूसरे का वध नहीं करते। किसी को बंधंन में नहीं डालते। उन्हें कभी महान विस्मय नहीं होता। अधर्म का तो वहाँ नाम भी नहीं है। वहाँ किसी के मन में संदेह नहीं पैदा होता है।

कृतस्य तु फलं तत्र प्रत्यक्षमुपलभ्यते।

पानासनाशनोपताः प्रासादभवनाश्रयाः।।12।।

सर्वकामैर्वृताः केचिद्धेमाभरणभूषिताः।

टिप्पणी

प्राणधारणमात्रं तु केषांचिदुपपद्यते।

श्रमेण महता केचित् कुर्वन्ति प्राणधारणम् ।।13।।

उस लोक में किए हुए कर्म का फल प्रत्यक्ष उपलब्ध होता है। उस लोक में कुछ लोग बड़े–बड़े महलों में रहते, अच्छे आसनों पर बैठते और उत्तमोत्तम वस्तुएँ खाते–पीते हैं। समस्त कामनाओं से सम्पन्न और सुवर्णमय आभूषणों से विभूषित होते हैं तथा कुछ लोगों को प्राणधारणमात्र के लिये भोजन प्राप्त होता है, कुछ लोग बड़े परिश्रम से तपोमय जीवन व्यतीत करते हुए प्राण धारण करते हैं। (इस प्रकार वह लोक इस लोक से सर्वथा उत्कृष्ट है अर्थात् इस लोक के श्रेष्ठ लोग प्रत्येक स्थिति में धर्माचरण करते हुए प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं।

इह धर्मपाः केचित् केचिन्नैकृतिका नराः।

सुखिता दुःखिताः केचिन्निर्धना धनिनोऽपरे।।14।।

इस मनुष्य लोक में कुछ मनुष्य धर्म को मानने वाले हैं तो कुछ धर्म विरोधी, कपटी हैं तो कुछ बड़े भारी ठग निकलते हैं। इसीलिये कोई सुखी ओर कोई दुखी होते हैं। कुछ धनवान और कुछ लोग निर्धन हो जाते हैं।

इह श्रमो भयं मोहः क्षुधा तीव्रा च जायते।

लोभश्चार्थकृतो नृणां येन मुह्यन्ति पण्डिताः ।।15।।

इस मनुष्य लोक में श्रम, भय, मोह और तीव्र भूख का कष्ट होता है। मनुष्यों में धन का लोभ विशेष होता है, जिससे अज्ञानी पुरुष मोह–बंधन में पड़ जाते हैं।

इह वार्ता बहुविधा धर्माधर्मस्य कारिणः।

यस्तद्वेदोभयं प्राज्ञः पाप्मना न स लिप्यते ।।16।।

इस प्रदेश में धर्म और अधर्म करने वाले मनुष्यों के विषय में विभिन्न प्रकार की बातें सुनी जाती हैं। जो मनुष्य धर्म और अधर्म दोनों के परिणाम को जानता है, वह विद्वान् मनुष्य पाप से लिप्त नहीं होता है।

सोपधं निकृतिः स्तेयं परिवादो ह्यसूयिता।

परोपघातो हिंसा च पैशुन्यमनृतं तथा ।।17।।

एतानासेवते यस्तु तपस्तस्य प्रहीयते।

यस्त्वेतान्नाचरेद् विद्वांस्तपस्तस्य प्रवर्धते ।।18।।

जो मनुष्य छल– कपट, धृष्टता, चोरी, निंदा दूसरों के दोष देखना, दूसरों को हानि पहुँचाना, प्राणियों की हिंसा करना, चुगली करना और झूठ बोलना– इन दुर्गुणों का सेवन करता है, उसकी तपस्या क्षीण होती है और जो विद्वान् इन दोषों को कभी अपने आचरण में नहीं लाता, उसकी तपस्या निरंतर बढ़ती रहती है।

इह चिन्ता बहुविधा धर्माधर्मस्य कर्मणः।

कर्मभूमिरियं लोके इह कृत्वा शुभाशुभम्।

शुभैः शुभमवाप्नोति तथाशुभमथान्यथा।।19।।

इस मनुष्य लोक में पुण्य और पापकर्म के संबंध में विभिन्न प्रकार के आचार–विचार होते रहते हैं। यह प्रदेश कर्मभूमि है। इस जगत में शुभ और अशुभ कर्म करके मनुष्य शुभ कर्मों का शुभ फल पाता है और अशुभ कर्मों का अशुभ फल भोगता है।

टिप्पणी

इह प्रजापतिः पूर्वं देवाः सर्षिगणास्तथा।

इष्ट्वेष्टपतसः पूता ब्रह्मलोकमुपाश्रिताः।।20।।

प्राचीन काल में इसी तपोभूमि पर प्रजापति, देवता तथा ऋषियों ने यज्ञ और अभीष्ट तपस्या करके पवित्र हो ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लिया।

उत्तरः पृथिवीभागः सर्वपुण्यतमः शुभः।

इहस्थास्तत्र जायन्ते ये वै पुण्यकृतो जनाः ।।21।।

इस पृथ्वीलोक का उत्तर भाग सबसे अधिक पवित्र और मंगलमय है। इस लोक में जो पुण्यात्मा मनुष्य हैं, वे ही मृत्यु के पश्चात् उस भूभाग में जन्म लेते हैं।

असत्कर्माणि कुर्वन्तस्तिर्यग्योनिषु चापरे।

क्षीणायुषस्तथा चान्ये नश्यन्ति पृथिवीतले ।।22।।

दूसरे जो लोग यहाँ पापकर्म, छल–कपट, धृष्टता करते हैं, वे पशु–पक्षियों की योनि में जन्म ग्रहण करते हैं और दूसरे कितने ही आयु क्षय होने पर नष्ट हो जाते हैं और पाताल में चले जाते हैं।

अन्योन्यभक्षणासक्ता लोभमोहसमन्विताः।

इहैव परिवर्तन्ते न ते यान्त्युत्तरं दिशम् ।।23।।

जो लोग लोभ और मोह से युक्त हो एक दूसरे को कष्ट देने के लिए उद्यत रहते हैं, वे भी इसी लोक में आवागमन करते रहते हैं, उत्तर दिशा के उत्कृष्ट लोक में नहीं जा पाते हैं।

ये गुरून् पर्युपासन्ते नियता ब्रह्मचारिणः।

पन्थानं सर्वलोकानां विजानन्ति मनीषिणः ।।24।।

जो लोग मन और इन्द्रियों को संयम में रखकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए गुरुजनों की उपासना करते हैं, वे मनीषी सभी लोकों के मार्ग को जानते हैं अर्थात् सर्वज्ञाता बन जाते है।

इत्युक्तोऽयं मया धर्मस्संक्षिप्तो ब्रह्मनिर्मितः।

धर्माधर्मौ ही लोकस्य यो वै वेत्ति स बुद्धिमान् ।।25।।

भृगु मुनि कहते हैं कि मैंने यहाँ ब्रह्मा जी के द्वारा निर्मित इस धर्म का संक्षेप से वर्णन किया है। जो लोक में करने योग्य और न करने योग्य धर्म और अधर्म को जानता है, वही बुद्धिमान है।

भीष्म उवाच

इत्युक्तो भृगुणा राजन् भरद्वाजः प्रतापवान्।

भृगुं परमधर्मात्मा विस्मितः प्रत्यपूजयत्।।26।।

भीष्म कहते हैं कि– हे राजन्! भृगु जी के इस प्रकार कहने पर परम धर्मात्मा प्रतापी भरद्वाज ने विस्मित होकर उनकी पूजा की।

एष ते प्रसवो राजन् जगतः सम्प्रकीर्तितः।

निखिलेन महाप्राज्ञ किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।।27।।

टिप्पणी

हे परम बुद्धिमान राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे जगत की उत्पत्ति के संबंध में ये सारी बातें बतायी हैं। अब और क्या सुनना चाहते हो? अर्थात् इससे अधिक और क्या जानना चाहते हो।

इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वाणि भृगुभरद्वाजसंवादे द्विनवत्यधिकैशततमः अध्यायः।

इस प्रकार श्रीमहाभारत शांतिपर्व के अंतर्गत मोक्षधर्मपर्व में भृगु–भरद्वाज संवादविषयक एक सौ बानवेवां अध्याय पूरा हुआ।

2.3 शान्तिपर्व तथा महाभारत विमर्श

शान्तिपर्व में धर्म, दर्शन, राजनीति और अध्यात्म ज्ञान का विशद निरूपण किया गया है। इसमें 365 अध्याय हैं। शान्ति पर्व में युद्ध की समाप्ति पर युधिष्ठिर का शोकाकुल होकर पश्चात्ताप करना, श्रीकृष्ण सहित सभी लोगों द्वारा उन्हें समझाना, युधिष्ठिर का नगर प्रवेश और राज्याभिषेक, सबके साथ पितामह भीष्म के पास जाना, भीष्म के द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति, भीष्म द्वारा युधिष्ठिर के प्रश्नों का उत्तर तथा उन्हें राजधर्म, आपद्धर्म और मोक्षधर्म का उपदेश करना आदि वर्णित है। मोक्षपर्व में सृष्टि का रहस्य तथा अध्यात्म ज्ञान का विशेष निरूपण है। **शान्तिपर्व में सदाचार का लक्षण बताते हुए कहा गया है कि ''श्रेष्ठ पुरुष तो वही है जिनमें सदाचार देखा जाए – सदाचार ही उनका लक्षण** है।''

मनुष्य के द्वारा गोओं के बीच में, अनाज में, मल या मूत्र का त्याग न करना, प्रतिदिन आवश्यक शौच का सम्पादन करके आचमन करना, फिर नहाने और अपने अधिकार के अनुसार संध्योपासन के पश्चात् देवता आदि का तर्पण करने को मानव मात्र का धर्म कहा गया है। नित्यप्रति सूर्योपस्थान करके सूर्योदय के समय कभी भी न सोना, सांयकाल प्रातःकाल दोनों समय संध्योपासना करके गायत्री मंत्र जप करना। पवित्र होकर पूर्वाभिमुख भोजन करना (पूर्व की तरफ मुख करके), भोजन के समय मौन रहना, भोजन के बाद हाथ धोकर उठना, रात को भीगे पैर न सोना, सदाचार का लक्षण बताया गया है। महाभारत में शान्तिपर्व का उद्देश्य युधिष्ठिर के दुःखी, अशान्त मन को शान्ति प्रदान करने का प्रयास है जो वर्तमान समय में मानव जीवन के लिए आवश्यक है। शान्तिपर्व में बताया गया है कि मानव जीवन सर्वश्रेष्ठ है। शान्ति को प्राप्त करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने बताया है कि जिस व्यक्ति ने इन्द्रियतृप्ति की समस्त इच्छाओं का त्याग कर दिया है, जो इच्छाओं से रहित रहता है और जिसने मोह त्याग दिया है तथा अहंकार से रहित है, वह वास्तविक शान्ति को प्राप्त करता है। कहने का भाव यह है कि जिसने इच्छाओं को त्याग दिया है और अपने वास्तविक स्वरूप शांति के स्रोत चेतना (आत्मा) को पहचाना है, यही ज्ञान की वास्तविकता ही शांति का मूल सिद्धान्त है।

टिप्पणी

शान्ति एक सकारात्मक व शक्तिशाली गुणवत्ता पूर्ण ऊर्जा है, जो निरन्तर एक अक्षय स्रोत से प्रसारित होती रहती है। शांति शुद्ध विचारों भावनाओं तथा कामनाओं के मेल से बनी है। यह कठिन समय में शक्ति व सहायता का स्रोत बनती है। शान्ति का स्रोत मानव की चेतना (आत्मा) है। शान्ति अपने विशुद्ध रूप में एक आंतरिक मौन है, जो सत्य की शक्ति से परिपूरित है। इसके लिए निरंतर आंतरिक शक्ति, आत्मानुशासन, संकल्प तथा साहस की आवश्यकता होती है, ताकि समस्याओं एवं परिस्थिति का सामना किया जा सके। शान्ति को प्राप्त करने के लिए हमें विवेक, धैर्य, प्रेम, आपसी समय क्षमता तथा दयालुता का अभ्यास करना होगा। यह एक आधारशिला है, जिस पर हम एक स्वस्थ व क्रियाशील समाज की नींव रख सकते हैं। शांति ही एक सभ्य समाज की प्रमुख विशेषता है और किसी भी समाज के सदस्यों की सामूहिक चेतना के माध्यम से उसका चरित्र जाना जा सकता है। चेतना ही संस्कृति के नियम, मूल्यों व तंत्रों को विकसित करती है और चेतना ही संस्कृति का रूपांतरण भी कर सकती है।

शान्ति पर्व में मंकीगीता (अध्याय 177), "पराशरगीता" (अध्याय 290–98) तथा "हंसगीता" (अध्याय 299) भी हैं। इसके अन्तर्गत ३ उपपर्व हैं–

- राजधर्मानुशासन पर्व
- आपद्धर्म पर्व
- **मोक्षधर्म पर्व**

महाभारत और उसके पर्व

महाकाव्य महाभारत आज से 5100 वर्ष पूर्व के भारतीय जीवन का एक विशाल–कोश है। इसमें उस समय की भारतीय जन–जीवन की सभ्यता और संस्कृति का अद्‌भुत चित्रण प्रस्तुत किया गया है। महाभारत में धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक, दार्शनिक, अलौकिक और पारलौकिक, इहलौकिक एवं दिव्य स्वरूप का सुन्दर शब्दों में ज्ञान का वर्णन किया है। इसमें वेदों और उपनिषदों का सार समाया हुआ है। इसी कारण श्रद्धालु लोग सन्त महात्मा इसे पंचमवेद कहते हैं। यह कोई साधारण दृष्टिकोण से लिखित इतिहास नहीं है, बल्कि इसमें आत्मा परमात्मा, जन्म–पुनर्जन्म, धर्म–अधर्म और जगत् के भूत भविष्य एवं वर्तमान तीनों कालों की चर्चाएं भी की गई है। इसमें सभी युगों का संक्षिप्त वृत्तान्त है। महाभारत के पहले ही पर्व के पहले ही अध्याय में सृष्टि के आदिकाल का वर्णन किया गया है; महाभारत के युद्ध का वर्णन तो बाद में हुआ है। इसमें सतयुग की स्थापना का वृत्तान्त तथा कलियुग के लक्षण भी बताये हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि महाभारत इतिहास का भी इतिहास हैं इसमें अनीति, नीति का संघर्ष भी है और साथ–साथ गहन दार्शनिक तत्वों की भी विस्तृत चर्चा है। साहित्य के इतिहासकारों ने इसे जातीय इतिहास और सांस्कृतिक मूल्यों का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ घोषित किया है।

महाभारत में प्रकृति–वर्णन भी है। यह प्रेम–प्रसंगों से भी ओत–प्रोत है, परन्तु इसका वास्तविक बल विभिन्न सांस्कृतिक मूल्यों एवं आदर्शों के संघर्ष, तथा जीवन और चरित्र पर है। भीष्म का ब्रह्मचर्य और राज्य–त्याग युधिष्ठिर की सत्यनिष्ठा, भीम का बल, अर्जुन का पराक्रम, विषम परिस्थितियों में द्रोपदी का पातिव्रत्य, कुन्ती का धैर्य, कर्ण का दान, कृष्ण की उदारता के माध्यम से भारतीय समाज के आदर्श पात्र चित्रित हुए

टिप्पणी

हैं जो भारतीय संस्कृति के उच्चतम आरोह को सूचित करते हैं। दुर्योधन शकुनि और दुःशासन के अहंकार, छल और अनीति के परिप्रेक्ष्य में जिन उदात तत्वों की प्रतिष्ठा हुई है, वे महाभारत की बहुमूल्य निधियां हैं। भारतीय जीवन के लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में धर्म को प्रथम स्थान दिया गया है, क्योंकि महाभारत स्वयं अपने लक्ष्य की दृष्टि से धर्म–अधर्म युद्ध का प्रतिपादन कर धर्म की विजय घोषित करता है। इसीलिए धर्म ही महाभारत की मूल धुरी है। महाभारत एक विशद महाकाव्य है। इसमें 18 पर्व हैं जो इस प्रकार है–

1. आदिपर्व – आदिपर्व में चन्द्रवंश का विस्तृत इतिहास तथा कौरव–पाण्डवों की उत्पत्ति का वर्णन है।
2. सभापर्व– सभापर्व में द्यूतक्रीड़ा का वर्णन है।
3. आरण्यक पर्व –आरण्यक पर्व में पाण्डवों के वनवास का वर्णन हैं।
4. विराटपर्व –इस पर्व में पाण्डवों के अज्ञातवास का वर्णन हैं।
5. उद्योगपर्व –इसमें श्री कृष्ण का दूत बनकर कौरवों की सभा में जाना तथा शान्ति का उद्योग करना वर्णित है।
6. भीष्मपर्व– इसमें अर्जुन के प्रति गीता का उपदेश, युद्ध का आरम्भ, भीष्म का युद्ध और शरशैय्या पर पड़ना वर्णित हैं।
7. द्रोणपर्व– इसमें अभिमन्यु–वध, द्रोणाचार्य का युद्ध और वध का वर्णन है।
8. कर्णपर्व– कर्ण का युद्ध और वध वर्णित है।
9. शल्यपर्व– इसमें शल्य की अध्यक्षता में लड़ाई और अन्त में शल्य वध का वर्णन है।
10. सौप्तिक पर्व – इस पर्व में वन में पाण्डवों के सोये हुए पुत्रों का रात में अश्वत्थामा द्वारा वध का वर्णन है।
11. स्त्री पर्व– इस पर्व में स्त्रियों के विलाप का वर्णन है।
12. शान्तिपर्व – शान्ति का उपदेश दिया गया है।
13. मोक्षधर्मपर्व –भीष्मपितामह का युधिष्ठिर को मोक्षधर्म का उपदेश वर्णित किया गया है।
14. अनुशासनपर्व – धर्म तथा नीति की कथाएँ वर्णित हैं।
15. आश्वमेधिकपर्व – युधिष्ठिर का अश्वमेघ करना वर्णित है।
16. आश्रमवासिकपर्व – इसमें धृतराष्ट्र, गांधारी आदि का वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना वर्णित है।
17. मौसलपर्व – इस पर्व में यादवों का मूसल के द्वारा नाश वर्णित है।
18. महाप्रस्थानिकपर्व – इस पर्व में पाण्डवों की हिमालय यात्रा का वर्णन है।
19. स्वर्गारोहण पर्व – इस पर्व में पाण्डवों का स्वर्ग में जाना वर्णित है। मूलकथा में ऐतिहासिक एवं धार्मिक उपाख्यानों का प्रसंगवंश समावेश किया गया है, जिसमें शकुन्तला, मत्स्य, राम, शिवि, सावित्री तथा नल के उपाख्यान मुख्य रूप से समाविष्ट हुए हैं।

महाभारत का रचना काल

आश्वलायन के गृह्यसूत्र में महाभारत के अस्तित्त्व का सर्वप्रथम प्रमाण मिलता है, जिसका रचनाकाल ईसा से 500 ई.पू. है।

टिप्पणी

महाभारत का विकास तीन चरणों में सम्पन्न हुआ है। जो इस प्रकार हैं–

प्रथम चरण–प्रथम संस्करण महाभारत काल में ही व्यास द्वारा प्रणीत हुआ है। इसका आरम्भिक नाम ''जय'' था, इसमें 8500 श्लोक थे।

दूसरा चरण–वैशम्पायन द्वारा परिवर्द्धित इस ग्रंथ का नाम 'भारत संहिता' हुआ और इसमें चौबीस हजार श्लोक थे।

तीसरा चरण–तीसरा चरण सौति उग्रश्रवा अथवा अन्य लेखकों द्वारा बढ़ाया गया। अब यह लगभग एक लाख श्लोकों का विशालकाय ग्रन्थ है। महाभारत में यह भी कहा गया है कि यह ग्रन्थ वेद व्यास ने 60000 श्लोकों का बनाया था। वर्तमान समय में महाभारत श्लोकों का विशालकाय ग्रन्थ है। यह इस धरा का सबसे बड़ा महाकाव्य है, जो लगभग 125000 श्लोकों का बताया गया है, जिसे वेद व्यास ने अपने पांच शिष्यों को सिखाया। ये शिष्य थे सुमन्तु, जैमिनी, शुक (पुत्र) और वैशम्पायन। इन पाँचों शिष्यों ने महाभारत के अपने–अपने संस्करण रचे पर आज वैशम्पायन का ही संस्करण उपलब्ध है। इस संस्करण का नाम 'भारत' हुआ। इसकी रचना लगभग 3000 वर्ष ईसा पूर्व मानी जाती है।

इस ग्रंथ में अनेक नैतिक मूल्यों की चर्चा हुई है। भगवान् कृष्ण द्वैपायन के मतानुसार सबका मूल, सत्य और अहिंसा है। इसे हम ऐसा भी कह सकते हैं कि सम्पूर्ण मानवीय गुणों का आधार सत्य और अहिंसा है। महाभारत ज्ञान का भण्डार है, जिसमें परम्परागत विचारों के साथ–साथ व्यावहारिक बुद्धि का अद्‌भुत सम्मिश्रण दिखाई देता है। वैसे तो समूचे ग्रन्थ में ही अनेक नैतिक आदर्शो का परिचय मिलेगा किन्तु उद्योगपर्व, वनपर्व, शान्तिपर्व, राजपर्व तथा मोक्षधर्म पर्व इसमें विशेष उल्लेखनीय हैं। राजधर्म में लोकयात्रा प्रकरण व्यक्ति और समाज के कल्याण से नैतिक गुणों का एक समुदाय मात्र है। मोक्षधर्म पर्व में वर्णित मोक्षधर्म समाज के बन्धनों से मुक्त करा देने वाले नियमों का ही तो ब्यौरा है। महाभारत में जीवन के उत्थान–पतन, हर्ष–शोक, आशा–निराशा, संयोग–वियोग, क्षमा–क्रोध, करुणा, क्रूरता, राग–विराग, अहिंसा–हिंसा, सरलता, कुटिलता, परमार्थ–स्वार्थ और त्याग–योग के स्वरूप सामने रखता हुआ, उन द्वन्द्वों से त्रस्त मानव को समाधान की अमृत तृप्ति का जो दिव्य आनंद भगवद्‌गीता जैसे उपदेशों के माध्यम से प्रदान करता है, वह अद्वितीय है। इसी प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के संबंध में जो बात इस ग्रंथ में है, वही अन्यत्र भी है। जो इसमें नहीं है, वह कहीं भी नहीं है।

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।

यदि हम जानना चाहे कि आज से पांच हजार वर्ष पूर्व विश्व में कौन–कौन से धर्म, सम्प्रदाय, नीति–नियम, मानव–मूल्य थे तो यह महाभारत में हम देख सकते हैं। यही कारण है कि इसकी महिमा समाज में चिरकाल से प्रतिष्ठित है। महाभारत जीवित

टिप्पणी

संग्रह ग्रंथ है। धर्मशास्त्रों एवं दर्शनशास्त्र का यह अनूठा कोश है। इस प्रकार हम महाभारत का अवलोकन करते हैं तो देखते हैं कि इस विशाल ग्रंथ में धार्मिकता, आध्यात्मिकता, नैतिकता, अलौकिकता, पारलौकिकता आदि पर्याप्त गहन विषयों की जानकारी मिल सकती है।

शान्ति पर्व में वर्णित अवशिष्ट अवधारणाओं का स्वरूप

विद्वानों ने महाभारत को भारतीय संस्कृति, इतिहास, धर्म, दर्शन तत्वज्ञान तथा पौराणिक उपाख्यानों को वृहत् कान्तार कहा है। "व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वं" कह कर इसी तथ्य को स्वीकार किया गया है। महाभारत के सारे प्रासाद की रचना मानवता की नींव पर बनायी गयी है। इसके पात्र मनुष्य हैं। मनुष्य में जो सारी बुराईयाँ और अच्छाइयाँ होती हैं। उनमें भी हैं। इसीलिए महाभारत में मानवता को ही धर्म का प्रतीक माना गया है। महाभारत का सिद्धान्त पक्ष मनुष्य में मानवीय गुणों की स्थापना के लिए प्रयासरत लगता है और वह इसी आधार पर एक उन्नत समाज की कल्पना करता है। पूरे महाभारत में क्षमा, दया, करुणा, सत्य, आर्जव, इन्द्रिय निग्रह आदि नैतिक मूल्यों की भूरि–भूरि प्रशंसा की गयी है। इन्हीं गुणों से युक्त मनुष्य देवत्व की उपलब्धि करता है और 'नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्' की उक्ति चरितार्थ होती है। प्रस्तुत अध्याय में मानव में नैतिक मूल्यों की स्थापना से सम्बन्धित अवधारणाओं पर विचार किया जाएगा।

सदाचार

अच्छे लोगों के आचरण को सदाचार कहा गया है और महाभारत में बार–बार सदाचार के पालन पर बल दिया गया है। शा. पर्व के 230वें अध्याय में उग्रसेन के पूछने पर भगवान् श्रीकृष्ण नारदजी के गुणों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि नारद जी में अप्रीत, क्रोध, चपलता और भय आदि दोष नहीं है। इसीलिए वे सभी जगह पूजित होते हैं। वे अध्यात्मज्ञान के तत्वज्ञ विद्वान् क्षमाशील, शक्तिमान्, जितेन्द्रिय, सरल और सत्यवादी हैं, इसीलिए उनकी सर्वत्र पूजा होती है। नारद जी तेज, बुद्धि, यश, ज्ञान, विनय, जन्म और तपस्या द्वारा भी सबसे बढ़े–चढ़े हैं। इसीलिए उनकी सर्वत्र पूजा होती है। वे सुशील, सुख से सोने वाले, पवित्र भोजन करने वाले, आदर के पात्र, भीतर बाहर से पवित्र, उत्तम वचन बोलने वाले तथा ईर्ष्या से रहित हैं। इसीलिए उनकी सर्वत्र पूजा होती है। वे खुले दिल से सबका कल्याण करते हैं। उनके मन में लेशमात्र भी पाप नहीं है। दूसरों का अनर्थ देखकर उन्हें प्रसन्नता नहीं होती है। वे किसी शास्त्र में दोष दृष्टि नहीं करते हैं। अपनी नीति के अनुसार जीवन यापन करते हैं समय को कभी व्यर्थ नहीं गंवाते और मन को वश में रखते हैं इसीलिए वे सर्वत्र सम्मानित होते हैं।

उक्त उद्धरण से यह सिद्ध होता है कि सदाचरण ही व्यक्ति को समाज में पूज्य और आदरणीय बनाता है। शान्ति पर्व के 110वें अध्याय में सदाचार और ईश्वर भक्ति को समस्त सांसारिक दुखों से छूटने का उपाय बताया गया है। महाराज युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्म ने बताया जो दम्भयुक्त आचरण नहीं करते, जिनकी जीविका नियमानुकूल चलती है, जो विषयों के लिए बढ़ती हुई इच्छा को रोकते हैं, वे दुखों के पार हो जाते हैं। जो दूसरों के कटुवचन सुनाये या निन्दा करने पर भी स्वयं उन्हें उत्तर नहीं देते, मार खाकर भी किसी को मारते नहीं, दूसरों से माँगते नहीं परन्तु स्वयं देते

टिप्पणी

हैं, वे दुर्गम संकटों से पार हो जाते हैं। जो धर्मज्ञ पुरुष सदा माता–पिता की सेवा में लगे रहते हैं, दिन में कभी सोते नहीं है, वे सभी दुखों से छूट जाते हैं। जो मन, वाणी, क्रिया द्वारा कभी पाप नहीं करते हैं तथा किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं पहुँचाते हैं, वे भी संकट के पार हो जाते हैं।

जो किसी से भयभीत नहीं होते और जिनसे कोई भयभीत नहीं होता जिनकी दृष्टि में यह सारा जगत अपनी आत्मा के तुल्य है, वे दुस्तर संकटों से पार हो जाते हैं। जो दूसरों की सम्पत्ति से ईर्ष्या नहीं करते व जलते नहीं और ग्राम्य विषय भोग से निवृत्त हो गये हैं, वे श्रेष्ठ साधु पुरूष सभी विपत्तियों से छुटकारा पा जाते हैं। जो सब देवताओं को प्रणाम करके और धर्मों को सुनते हैं, जिनमें श्रद्धा और शान्ति वर्तमान है, वे सम्पूर्ण दुखों से पार हो जाते हैं। जो दूसरों से सम्मान नहीं चाहते जो स्वयं दूसरों को सम्मान देते हैं और सम्माननीय पुरूषों का आदर करते हैं, वे कठिन संकटों से पार हो जाते हैं।

इस पर्व के 114वें अध्याय में परनिन्दा को अत्यन्त गर्हित कर्म बताया गया है। जो सदा लोगों की निन्दा में तत्पर रहता है, वह मनुष्य के शरीर रूपी घर में रहने वाला भेड़िया है वह सदा अशान्त बना रहता है। मतवाले हाथी के समान चीत्कार करता है और अत्यन्त भयंकर कुत्ते के समान काटने को दौड़ता है। श्रेष्ठ पुरुष को चाहिए कि उसे सदा के लिए त्याग दे, क्योंकि वह मूर्खों द्वारा सेवित पथ पर चलने वाला इन्द्रिय संयम और विनय से कोसों दूर है। उसने शत्रुता का व्रत ले रखा है तथा सदा सबकी अवनति चाहता है। उस पापात्मा एवं पापबुद्धि मनुष्य को धिक्कार है।

निन्दा करने वालों की निन्दा के साथ–साथ निन्दा करने वाले पर क्रोध न करने की सलाह दी गयी है। जो निन्दा करने वाले पुरुष के उपर क्रोध नहीं करता है, वह उसके पुण्य को प्राप्त कर लेता है। वह सहनशील मनुष्य अपना सारा पाप उस क्रोधी पुरुष पर ही धो डालता है। अच्छे पुरुष को चाहिए कि टिटिहिरी की भाँति टाय–टाय करते हुए उस निन्दाकारी पुरुष की उपेक्षा कर दे जिससे वह सब लोगों के द्वेष का पात्र बन जाएगा व उसके सारे सत्कर्म निष्फल हो जायेंगे।

अन्यत्र भी बताया गया है जो दूसरे किसी की निन्दा तथा अपनी प्रशंसा नहीं करता, ऐसा उत्तम गुण सम्पन्न विद्वान पुरुष ही महान् यश का भागी होता है। कल्याण के साधनों का वर्णन करते हुए भीष्मजी ने युधिष्ठिर से कहा कि सदा गुरुजनों की पूजा, वृद्धपुरुषों की सेवा और शास्त्रों का श्रवण; ये तीन कल्याण के अमोघ साधन हैं।

गुरुजनों की पूजा और माता–पिता की सेवा महाभारत के अनुसार परमपद को प्राप्त कराने में समर्थ है। पिता मनुष्यों के लिए सर्वश्रेष्ठ देवता है। माता को पिता से भी बढ़कर बताया गया है। अज्ञान मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है किन्तु उस शत्रु को पराजित करने में वही समर्थ हो सकता है। मनुष्य माता–पिता और वृद्धों की सेवा करके स्थिर बुद्धि को प्राप्त कर लेता है। जो काम भोगों में अनासक्त होकर सबको प्रेम भाव से देखता है, मन में चतुराई न रखकर धर्म में संलग्न रहता है, दूसरों का दमन या हिंसा नहीं करता है उस मनुष्य का इस लोक में सत्पुरुष भी आदर करते हैं।

महाभारत में इन्द्रिय संयम, क्षमा, धैर्य, तेज, सन्तोष, सत्यभाषण, लज्जा, अहिंसा, दुर्व्यसन का अभाव तथा दक्षता, ये सब सुख के साधन बताये गये हैं। वहीं पर अपने

टिप्पणी

लिए निर्धारित सदाचरण का पालन न करने वालों की निन्दा की गयी है। डरपोक, क्षत्रिय, सब कुछ खाने वाले ब्राह्मण, अकर्मण्य वैश्य, आलसी शूद्र, उत्तम गुणों से रहित विद्वान, सदाचार का पालन न करने वाला कुलीन पुरुष, सत्य से भ्रष्ट पुरुष, दुराचारी विषयासक्त योगी, केवल अपने लिए भोजन बनाने वाला मनुष्य, मूर्ख वक्ता, राजा से रहित राष्ट्र तथा अजितेन्द्रिय होकर प्रजा के प्रति स्नेह न रखने वाला राजा ये सबके सब शोक के योग्य हैं। सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति कोमलता का बर्ताव करना, व्यवहार में सरल रहना, मीठा वचन बोलना, कल्याण का सन्देह रहित मार्ग है। क्रोधी मनुष्यों पर क्रोध न करने वाला मनुष्य श्रेष्ठ है। असहनशील से सहनशील बड़ा है। मनुष्येतर प्राणियों से मनुष्य ही बढ़कर है। अज्ञानी से ज्ञानी ही श्रेष्ठ है। जो दूसरों के द्वारा गाली दी जाने पर भी उसे गाली नहीं देता उस क्षमाशील मनुष्य का शान्त क्रोध ही उस गाली देने वाले को भस्म कर देता है।

जो सत्य इन्द्रिय संयम, सरलता, दया, धैर्य और क्षमा का अधिक सेवन करता है, सदा स्वाध्याय में लगा रहता है, जो दूसरे की वस्तु नहीं लेना चाहता तथा एकान्त में निवास करता है, वह ऊर्ध्व गति को प्राप्त होता है। इस प्रकार सदाचार व्यक्ति के आत्यन्तिक लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति में भी सहायक होता है।

वर्ण व्यवस्था

महाभारतकालीन समाज चार वर्णों में विभाजित था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र नाम से वर्णित ये वर्ण सामाजिक व्यवस्था में पूर्णतया स्वीकृत थे। समान वर्ण के माता–पिता से उत्पन्न सन्तान उसी वर्ण की मानी जाती है, किन्तु बाद में जब अलग–अलग वर्णों के माता–पिता होने लगे तो उनकी सन्तानों का समाज में जाति के द्वारा परिचय होने लगा। उनका कोई वर्ण नहीं होता। मूर्धाभिषिक, अम्बष्ठ आदि जातियां थीं, वर्ण नहीं। वर्ण और जाति पर यदि विचार किया जाये तो महाभारत में अनेक तथ्य मिल सकते हैं। महाभारत के वर्णनों को देखने से ब्राह्मण आदि वर्ण ब्राह्मण कुल में जन्म से ही निर्धारित होते थे किन्तु अच्छे कर्म के द्वारा भी उत्तम वर्ण की प्राप्ति के कतिपय दृष्टान्त महाभारत में उपलब्ध हैं। महाभारत के शान्ति पर्व में सरस्वती के तट पर सिन्धुद्वीप और देवापि के द्वारा ब्रह्मतत्व प्राप्ति की बात कहीं गयी है।

महाभारत के अनुशासन पर्व में क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर कठोर तपस्या द्वारा विश्वामित्र के ब्राह्मणत्व प्राप्ति का वर्णन है। यद्यपि महाभारतकालीन वर्ण व्यवस्था में हर वर्ण के लिए कर्म नियत थे किन्तु महाभारत के अनेक प्रमुख पात्र जिस वर्ण में उत्पन्न हुए थे उन्होंने अपने लिए नियत वृत्ति का अवलम्बन नहीं किया था। द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य ब्राह्मण वर्ण में उत्पन्न हुए थे किन्तु ये सभी आयुध जीवी थे और इन्होंने ब्राह्मणोचित व्यवहार का अवलम्बन कभी नहीं किया और जीवन भर युद्ध विग्रह आदि क्षत्रिय वृत्ति से ही जीवन–यापन किया। दुर्योधन, दुःशासन आदि क्षत्रिय वर्ण में उत्पन्न हुए थे किन्तु गहराई से देखने पर उनमें वैश्यत्व और शूद्रत्व का मिश्रण प्रतीत होता है। इनके जीवन में एकाध बार युद्ध से भागने की भी घटना घटी थी, जो कथमपि क्षत्रियोचित नहीं है। महात्मा विदुर, धर्म व्याध, तुलाधार आदि प्रमुख व्यक्ति या तो शूद्र थे या तो वैश्य किन्तु गुणों के आधार पर वे श्रेष्ठ ब्राह्मणत्व के अधिकारी थे। महाभारत काल में वर्ण व्यवस्था जन्म पर आधारित थी कि कर्म पर, यह विवादित विषय है। इस पर आगे विचार करेंगे। पहले हम

टिप्पणी

महाभारत शा. पर्व के अनुसार वर्ण व्यवस्था के स्वरूप पर विचार करेंगे। शान्ति पर्व में अध्याय 182–192 तक भृगु और भरद्वाज के संवाद के माध्यम से कतिपय गहन विषयों पर गम्भीर और पाण्डित्यपूर्ण चर्चा की गयी है। अध्याय 188 में महात्मा भृगु ने भरद्वाज को बताया कि जब प्रजापति ब्रह्मा देवता दानव, गन्धर्व, दैत्य, असुर, नाग, यक्ष, राक्षस, गणों के साथ मनुष्यों की रचना कर रहे थे तो उसी समय उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार वर्णों की रचना की। यहाँ वर्ण शब्द रंग का वाचक प्रतीत होता है क्योंकि यहीं आगे वे कहते हैं कि ब्राह्मणों का रंग श्वेत, क्षत्रियों का लाल, वैश्यों का पीला, शूद्रों का काला बनाया गया है। महर्षि भृगु की इस वाणी को सुनकर भरद्वाज घबरा उठते हैं। वे कहते हैं कि समाज में तो हर वर्ण में हर रंग के पुरुष, स्त्री दिखायी देते हैं तो क्या हर जगह वर्ण संकरता ही व्याप्त है। प्रत्येक व्यक्ति पर काम, क्रोध, भय, लोभ, शोक, चिन्ता, भूख, प्यास, थकावट का प्रभाव समान रूप से पड़ता है फिर चारों वर्णों का भेद कैसे सुनिश्चित होगा। इस पर महामुनि भृगु ने कहा कि पहले वर्णों में कोई अन्तर नहीं था। ब्रह्माजी से उत्पन्न होने के कारण यह सारा जगत् ब्राह्मण ही था किन्तु पीछे विभिन्न कर्मों के कारण उनमें भेद हो गया। जो अपने ब्राह्मणोचित कर्म का परित्याग कर विषय भोग के प्रेमी हो गये तथा तीखे स्वभाव वाले और साहस का काम पसन्द करने लगे। इन्हीं कारणों से जिनके शरीर का रंग लाल हो गया, वे ब्राह्मण क्षत्रिय भाव को प्राप्त हुए और क्षत्रिय कहलाने लगे। जिन्होंने गौओं से और कृषि कर्म से जीविका चलाने की वृत्ति अपना ली इन्हीं कारणों से उनके रंग पीले हो गये। ये ब्राह्मणोचित धर्म को छोड़कर वैश्य भाव को प्राप्त हो गये। जो शौच और सदाचार से भ्रष्ट होकर हिंसा और असत्य प्रेमी हो गये, वे लोभ वश, निन्द्य कर्म करने लगे और इन्हीं निन्दित कर्मों से अपनी जीविका चलाने लगे। इसीलिए इनके शरीर का रंग काला पड़ गया, इसलिए ये शूद्र भाव को प्राप्त हो गये।

शान्ति पर्व अध्याय 290 से 298 तक का भाग पराशर गीता है। इसमें महामुनि पराशर ने जनक द्वारा पूछे गये प्रश्नों के माध्यमों से जीवन और जगत् से संबंधित गम्भीर विषयों का प्रतिपादन किया है। वर्ण व्यवस्था विषयक प्रश्न का उत्तर देते हुए पराशर ने जनक को बताया कि सृष्टि करते हुए प्रजापति के मुख, भुजा, उरु और पैरों से मनुष्यों का प्रादुर्भाव हुआ। जो मुख से उत्पन्न हुए वे ब्राह्मण कहलाए। जो दोनों भुजाओं से उत्पन्न हुए वे क्षत्रिय कहलाए, जो उरु से उत्पन्न हुए वे वैश्य और जो पैर से उपन्न हुए वे शूद्र कहलाए।

भृगु और पराशर के वचनों में गम्भीर अन्तर्भेद प्रतीत होता है। भृगु के अनुसार ब्राह्मण ही कर्मगत भिन्नता के कारण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों में परिवर्तित हुआ किन्तु पराशर के अनुसार इन चारों वर्णों के उत्पत्ति स्थल में ही भेद है। भीष्म पर्व के 28वें अध्याय के 13वें श्लोक में भगवान् कृष्ण स्वयं अर्जुन से कहते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों का समूह गुण और कर्मों के विभागपूर्वक मेरे द्वारा ही रचा गया है।

पराशर गीता में तपोबल से उत्कृष्ट वर्ण की प्राप्ति का दृष्टान्त है। जनक के प्रश्न का उत्तर देते हुए महर्षि पराशर ने जनक से कहा कि मेरे पितामह वसिष्ठ जी कश्यप गोत्रीय ऋषि शृङ्गी वेद, कृप, कक्षिवान, कमठ, यवकृत, वक्ताओं में श्रेष्ठ द्रोण, आयु,

मतंग, द्रुपद तथा मत्स्य ये सब तपस्या का आश्रय लेने से ही अपनी–अपनी प्रकृति को प्राप्त हुए थे।

टिप्पणी

महाभारत में चारो वर्णों के लिए अलग–अलग धर्म निर्धारित किये गये हैं। दान लेना, यज्ञ करना तथा विद्या पढ़ाना ये ब्राह्मण के विशेष धर्म हैं। प्रजा की रक्षा करना क्षत्रिय के लिए श्रेष्ठ धर्म हैं। कृषि और पशुपालन तथा व्यापार को वैश्यों का कर्म बताया गया है और इन तीनों वर्णों की सेवा करके जीविका चलाना शूद्र के लिए निर्धारित वर्ण धर्म है। जो जाति आदि कर्म अन्य संस्कारों से युक्त हैं, जो पवित्र तथा वेदों के स्वाध्याय में निरत हैं, जो यजन–याजन, अध्ययन–अध्यापन और दान–प्रतिग्रह इन छः कर्मों में स्थित रहता है, शौच एवं सदाचार का पालन तथा परम उत्तम यज्ञशिष्ट अन्न का भोजन करता है, गुरु के प्रति प्रेम रखता है, नित्य अपने व्रत का पालन करता है तथा सत्य में तत्पर रहता है, वही ब्राह्मण कहलाता है। जो क्षत्रियोचित युद्ध आदि का सेवन करता है, वेदों के अध्ययन में लगा रहता है। ब्राह्मणों को दान देता है और प्रजा से कर लेकर उसकी रक्षा करता है, वह क्षत्रिय कहलाता है। इसी प्रकार जो वेदाध्ययन से सम्पन्न होकर व्यापार, पशुपालन और खेती का काम करके अन्न, धन संग्रह करने की रूचि रखता है, दान देता है और पवित्र रहता है, वह वैश्य कहलाता है। किन्तु जो वेद और सदाचार का परित्याग करके सब कुछ खाने में अनुरक्त रहता है और सब तरह के काम करता है तथा अपवित्र रहता है वह शूद्र कहलाता है। ब्राह्मण को चारो वर्णों में महाभारत श्रेष्ठ मानता है किन्तु सामाजिक व्यवस्था को उचित बौद्धिक परीक्षण द्वारा बनाये रखने की जिम्मेदारी भी ब्राह्मण की ही निश्चित की गयी है। इसलिए ब्राह्मण को स्वकर्म निरत और दक्ष रहने की बार–बार राय दी गयी है। महाराज जनक नाना प्रकार के धर्म और कर्मों का उपदेश देते समय कहते हैं कि ब्राह्मण को पहले ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर तपस्यापूर्वक वेदों का अध्ययन करना चाहिए, फिर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करके अपनी शक्ति के अनुसार इन्द्रिय संयम पूर्वक पंच महायज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिए, तत्पश्चात् अपने पुत्र को घर–बाहर की रक्षा में नियुक्त करके कल्याण मार्ग में स्थित हो, केवल धर्म पालन की इच्छा रखकर वन को प्रस्थान करना चाहिए। सामाजिक व्यवस्था और नैतिक स्थिति बनाए रखने के लिए ब्राह्मण अपने लिए निर्धारित कर्म में लगा रहे। इसके लिए महाभारतकार अत्यन्त सचेष्ट लगते हैं। यदि ब्राह्मण तनिक भी अपने मार्ग से विचलित होता है तो सामाजिक व्यवस्था के विपथगामी होने की संभावनाएं बहुत बढ़ जाती हैं। राजधर्म का उपदेश करते हुए भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कहते हैं कि जो ब्राह्मण ऋग्, यजु : और सामवेद का अध्ययन करके अपने अपने वर्णोचित कर्म में लगे हुए हैं, वे ब्राह्मणों में देवता के तुल्य समझे जाते हैं। वर्णोचित कर्म में लगे हुए ब्राह्मण को देवता और ब्रह्मा के समान कहने वाले भीष्म कर्मच्युत ब्राह्मण को कभी भी क्षमा न करने का निर्देश देते हैं। वे कहते हैं कि राजा को कर्म भ्रष्ट ब्राह्मणों की किसी प्रकार उपेक्षा नहीं करनी चाहिए बल्कि धर्म का आचरण न करने के लिए उन्हें दण्ड देना चाहिए और श्रेष्ठ ब्राह्मणों की श्रेणी से उन्हें अलग कर देना चाहिए। सभी वर्णों के लिए अलग–अलग धर्माचरण निर्धारित होने पर भी कुछ नैतिक नियम सभी वर्णों के लिए साधारण धर्म के रूप में महाभारत में बताये गये हैं। क्रूरता का अभाव, अहिंसा, अप्रमाद, देवता, पितर आदि को उनके भाग समर्पित करना, दान देना, श्राद्ध कर्म, अतिथि सत्कार, सत्य और क्रोध पर नियंत्रण, अपनी ही पत्नी से सन्तुष्ट रहना पवित्रता रखना, किसी

टिप्पणी

के दोष न देखना, आत्मज्ञान तथा सहनशीलता, महाभारत के अनुसार सभी वर्णों के समान धर्म हैं। महाभारत में सर्वत्र अपने कुल धर्म के पालन का निर्देश दिया गया है। श्रेष्ठ लोग सबको अपने–अपने कुल धर्म में प्रतिष्ठित धर्म के पालन का निर्देश देते हैं। श्रेष्ठ लोग सबको अपने–अपने कुल धर्म में प्रतिष्ठित होने के लिए प्रेरणा दिया करते थे। महाभारत युद्ध में अर्जुन के मन में जब वैराग्य उत्पन्न हुआ तो कृष्ण उन्हें क्षात्र धर्म की याद दिलाते हैं और कहते हैं कि तुम्हें अपने धर्म को सामने देखकर विकम्पित नहीं होना चाहिए क्योंकि क्षत्रिय के लिए धर्म युक्त युद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्तव्य नहीं है। इतना ही नहीं वे इस अवसर को स्वर्ग के खुले हुए द्वार की तरह तथा अर्जुन को ऐसा विशिष्ट अवसर प्राप्त करने वाला बताते हैं और भयभीत भी करते हैं। वे कहते हैं कि अगर तू इस धर्म युद्ध को नहीं करेगा तो स्वधर्म और कीर्ति को खोकर पाप का भागी बनेगा।

जन्मोचित कर्म को महाभारत में सहज कर्म बताया गया है। जो उसी कर्म को करता रहता था समाज में साधु पुरुष के रूप में सम्मानित होता था। मिथिला के बाजार में मांस बेचने वाला धर्म व्याध अपने पैतृक परम्परागत कर्म से ही किन्तु स्वकर्म में निरत था, अतः सदाचारी होने के कारण उसे कौशिक नामक ब्राह्मण को उपदेश देने का अधिकार मिला। महाभारत में व्यास जी की सारी चेष्टा अपने पुत्र शुक देव को वैराग्य और ब्राह्मण धर्म में प्रतिष्ठित होने के लिए ही प्रतीत होती है।

महाभारतकालीन वर्णव्यवस्था में किसी भी जाति अथवा वर्ण में जन्म लेने पर सम्मान पर कोई असर नहीं पड़ता था। इसमें छोटे–बड़े होने का भाव तो था ही नहीं। विदुर, धर्म व्याध और तुलाधार, कथित नीच वर्ण में जन्म लेने पर भी सामाजिक श्रद्धा पाने में समर्थ हुए। प्रायः जाति जन्म द्वारा ही निश्चित की जाती थी किन्तु कर्म की विशिष्टता से सामाजिक सम्मान निर्धारित होता था।

विश्वामित्र आदि का वर्ण परिवर्तन तपः शक्ति से असंभव का संभव हो जाना लगता है। यौगिक प्रक्रिया द्वारा अथवा तपः सिद्ध व्यक्ति के प्रसाद से सब कुछ हो सकता है। विश्वामित्र की माता का मन्त्रपूत हव्यान्न भक्षण भी भूलने वाली बात नहीं है। चातुर्वर्ण्य की प्रतिष्ठा इस काल की सामाजिक स्थिति के अनुकूल थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में वर्ण व्यवस्था कहीं जन्मगत और कहीं कर्मगत कही गयी है।

चतुराश्रम

महाभारतकालीन समाज जिस प्रकार चार वर्णों में विभक्त था उसी तरह से एक व्यक्ति के जीवन को चार आश्रमों में बाँटा गया था। इस विभाजन का एक मात्र अर्थ सामाजिक स्थिति और क्रमोन्नति को बनाए रखना था। प्रत्येक व्यक्ति का जीवन सुगठित होकर भौतिक उन्नति प्राप्त करे और अन्त में मोक्ष की ओर अग्रसर हो जाए, इसी उद्देश्य को लेकर चतुराश्रम का उपदेश किया गया है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सामाजिक धर्म की स्थापना चातुर्वर्ण्य पर एवं व्यक्तिगत जीवन धर्म की स्थापना चार आश्रमों पर हुई है। वर्ण धर्म के साथ आश्रम धर्म का बड़ा घनिष्ठ संबंध है। गहराई से देखने पर दोनों अन्योन्याश्रित हैं। आश्रमवासी वर्ण धर्म का ही वाहक है। इसीलिए चातुर्वर्ण्य के वर्णन के बाद चतुराश्रम का वर्णन अभिप्रेत है।

टिप्पणी

संसार में मनुष्य के बहुत से कर्तव्य हैं किन्तु मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति अर्थ एवं काम में है। यदि हमारा जीवन मानसिक प्रवृत्ति से ही संचालित रहेगा तो कर्तव्य पालन में अत्यन्त त्रुटियां हो जायेंगी, इसीलिए जीवन को संयमित रखने के लिए आश्रम धर्म की व्यवस्था की गयी है। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष पुरूषार्थ कहे जाते हैं। इन चारो की प्राप्ति से मनुष्य कृत–कृत्य एवं धन्य हो उठता है। हमारा जीवन धन्य हो, आश्रम धर्म व्यवस्था का यही लक्ष्य है। आश्रम चार हैं। जिज्ञासु भाव से भीष्म के सामने बैठे महाबाहु युधिष्ठिर को पितामह भीष्म ने बताया कि हे महाबाहु युधिष्ठिर पहला आश्रम ब्रह्मचर्य, दूसरा महान आश्रम गार्हस्थ्य, तीसरा वानप्रस्थ और चौथा ब्राह्मणों द्वारा सेवित संन्यास है।

सुविधा के लिए यदि मनुष्य की पूर्णायु सौ वर्ष तक मान ली जाये तो प्रत्येक आश्रम की अवधि 25 वर्ष होगी। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रारम्भ के 25 वर्ष ब्रह्मचर्य आश्रम, दूसरे 25 वर्ष अर्थात् 25–50 तक गृहस्थ आश्रम, 50–75 वानप्रस्थ और इसके ऊपर की आयु संन्यास के लिए है। अपने स्थान पर हर आश्रम का महत्व है। जीवन की पूर्णता के लिए इन आश्रमों का यथाक्रम पालन करना व्यक्ति की इहलौकिक और पारलौकिक उन्नति में अत्यधिक सहायक हो सकता है। अपने पुत्र शुकदेव को आश्रम धर्म समझाते हुए व्यास जी कहते हैं कि ये चारों आश्रम ब्रह्म में ही प्रतिष्ठित हैं और ब्रह्म तक पहुँचाने के लिए चार डण्डे वाली सीढ़ी के समान हैं। इस सीढ़ी पर चढ़कर मनुष्य ब्रह्मलोक में सम्मानित होता है।

आश्रम धर्म की उत्पत्ति

महाभारत शान्ति पर्व के अनुसार मानव जीवन को सार्थक बनाने के लिए स्वयं ब्रह्मा ने आश्रम धर्म की व्यवस्था की है। भृगु भरद्वाज संवाद में महामुनि भृगु ने भरद्वाज को बताया कि जगत् का कल्याण करने वाले भगवान् ब्रह्मा ने धर्म की रक्षा के लिए चार आश्रमों का निर्देश किया था। इस उक्ति से सिद्ध है कि यह आश्रम व्यवस्था सनातन है। स्वयं सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने अपनी मानव सृष्टि को व्यवस्थित एवं समुन्नत बनाने के लिए आश्रम धर्म की स्थापना की।

ब्रह्मचर्य आश्रम

ब्रह्मचर्य पालनपूर्वक गुरुकुल में रहकर विद्याध्ययन एवं नैतिक गुणों का विकास करना ही ब्रह्मचर्य आश्रम कहलाता है। इसमें रहने वाले ब्रह्मचारी को बाह्य और आभ्यन्तर शुद्धि सहित वैदिक संस्कार तथा व्रत एवं नियमों का पालन करते हुए अपने मन को वश में रखना चाहिए। दोनों सन्ध्याओं में सन्ध्योपासन, सूर्योपस्थान एवं अग्निहोत्र द्वारा अग्निदेव की आराधना करनी चाहिए। तन्द्रा और आलस्य रहित हो कर प्रतिदिन गुरु को प्रणाम करे और वेदों के अभ्यास तथा श्रवण से अपनी अन्तरात्मा को शुद्ध करे। सवेरे–शाम और दोपहर तीनों पहर स्नान करे। प्रतिदिन भिक्षा मांगकर लाए, भिक्षा में जो कुछ प्राप्त हो जाए गुरु को समर्पित कर दे। गुरुजी जो कुछ कहें, जिसके लिए संकेत करें और जिस कार्य के निमित्त स्पष्ट शब्दों में आज्ञा दें, उसके विपरीत आचरण न करे और गुरु प्रसाद में मिले हुए स्वाध्याय में तत्पर रहे।

गुरुकुल वासी ब्रह्मचारी के लिए निर्धारित नियमों की कतिपय बातें आज के परिप्रेक्ष्य में असंगत प्रतीत हो सकती है। किन्तु ये नियम विद्यार्थी में जो सदाचार

टिप्पणी

स्थापित करना चाहते हैं उसके लिए ये आज भी समीचीन हैं। सदाचार और नैतिकता से पूर्ण जीवन गुरु में अविचल श्रद्धा और अपने अभिप्रेत विषय में तत्परता विद्यार्थी के जीवन को पूर्णता प्रदान कर सकता है। जो छात्र गुरु की आराधना पूर्वक इच्छित विषय का अध्ययन करता है, तो इस लोक में जो चाहता है बन जाता है और मरने के बाद उसे स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है। ब्रह्मचर्य आश्रम जीवन की आधारशिला है। इसी में व्यक्ति ज्ञान और चारित्रिक दृढ़ता प्राप्त करता है। इसी आश्रम की समुचित सिद्धि के बाद अन्य आश्रमों के परिपालन हेतु व्यक्ति में सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है और व्यक्ति अपने जीवन का समुचित विकास कर सकता है। उपनयन के पश्चात् बालक गुरु शुश्रूषा में लग्न होकर सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन करे। तत्पश्चात् पर्याप्त गुरु दक्षिणा से गुरु ऋण से मुक्त हो तथा समावर्तन संस्कार के पश्चात् घर लौटे। तदन्तर गुरु की आज्ञा लेकर आगे के आश्रमों में से किसी एक आश्रम में जीवन पर्यन्त रहे अथवा क्रमशः सभी आश्रमों में प्रवेश करे। जिसके हृदय में ब्रह्मचर्य की पूर्ण प्रतिष्ठा हो चुकी हो वह चाहे तो स्त्री परिग्रह करके गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए सन्तान उत्पन्न करे अथवा आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे। वन में रहकर वानप्रस्थ धर्म का पालन करे या संन्यास धर्म के अनुसार जीवन यापन करे। जिसने सविधि ब्रह्मचर्य का पालन कर लिया है उस ब्रह्मचारी के मन में यदि मोक्ष की अभिलाषा जाग उठे तो उसे ब्रह्मचर्य आश्रम से सीधे संन्यास ग्रहण का उत्तम अधिकार प्राप्त हो जाता है। बड़े–बड़े ऋषियों ने ब्रह्मचर्य के पालन से ही उत्तम लोकों पर विजय पायी है। अतः मन ही मन अपने कल्याण की इच्छा रखकर मनुष्य को पहले ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

गृहस्थ आश्रम

जब वेद संबंधी व्रत और उपवास करते हुए आयु का एक चौथाई भाग व्यतीत हो जाए, तब गुरु को दक्षिणा देकर समावर्तन संस्कार पूर्वक स्नातक घर लौटे और धर्मतः पत्नी का पाणिग्रहण करके उसके साथ यत्न पूर्वक अग्नि की स्थापना करे, आयु के द्वितीय भाग अर्थात् 50 वर्ष तक की अवस्था तक उत्तम व्रत का पालन करते हुए गृहस्थ बना रहे। अग्नि स्थापन का भाव यह था कि गृहस्थ धर्म में प्रतिदिन अग्निहोत्र अवश्य करणीय था। महाभारत शान्ति पर्व में महर्षि भृगु भारद्वाज से कहते हैं कि गार्हस्थ्य को दूसरा आश्रम कहते हैं– जो सदाचार का पालन करने वाले ब्रह्मचारी विद्या पढ़कर गुरुकुल से स्नातक होकर लौटते हैं, उन्हें यदि सहधर्मिणी के साथ रहकर धर्माचरण करने और उसका फल पाने की इच्छा हो तो उनके लिए गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने की विधि है। इसी आश्रम में धर्म, अर्थ और काम तीनों की प्राप्ति होती है। इसलिए त्रिवर्ग साधन की इच्छा रखकर गृहस्थ को उत्तम कर्म द्वारा धन संग्रह करना चाहिए। स्वाध्याय से प्राप्त विशिष्ट योग्यता से ब्रह्मर्षियों द्वारा धर्मशास्त्रों में निश्चित किये हुए मार्ग से अथवा पर्वत से उपलब्ध हुए उसके सारभूत मणिरत्न दिव्य औषधि एवं स्वर्ण आदि का सेवन करें अथवा यज्ञ, श्राद्ध, नियम वेदाभ्यास तथा देवताओं की प्रसन्नता से प्राप्त धन के द्वारा गृहस्थ पुरुष अपनी गृहस्थी का निर्वाह करे। गृहस्थ आश्रम को सब आश्रमों का मूल कहते हैं क्योंकि गुरुकुल में निवास करने वाला ब्रह्मचारी, संकल्प के अनुसार व्रत, नियम तथा धर्म का पालन करने वाला वानप्रस्थ एवं सब कुछ त्यागकर सर्वत्र विचरण करने वाला संन्यासी भी इस गृहस्थ आश्रम से ही भिक्षा, भेंट, उपहार तथा दान आदि पाकर अपने–अपने धर्म पालन में प्रवृत्त होते हैं।

टिप्पणी

महाभारत शान्ति पर्व में अनेक प्रकरणों में गृहस्थ आश्रम की प्रशंसा की गयी है। युधिष्ठिर को क्षत्रियोचित कर्म के लिए प्रेरित करते हुए अर्जुन ने उन्हें पक्षी रूप धारी इन्द्र और मन्द बुद्धि ऋषि बालकों के संवाद का दृष्टान्त सुनाया। ये बालक घर–द्वार छोड़कर अल्पायु में ही वन जाकर तपस्या करने का निर्णय लिए हुए थे। बालकों को समझाते हुए पक्षी रूप धारी इन्द्र कहते हैं कि इस दुष्कर व्रत का अनुष्ठान करके देवताओं ने उत्तम वैभव प्राप्त किया है। यह गृहस्थ धर्म का पालन ही दुष्कर व्रत है। मैं तुम लोगों को इसी दुष्कर व्रत का भार उठाने के लिए कह रहा हूँ। तपस्या श्रेष्ठ कर्म है। इसमें सन्देह नहीं कि यही प्रजा वर्ग का मूल कारण है परन्तु गार्हस्थ्य विषयक शास्त्रों के अनुसार इस गार्हस्थ्य में ही सारी तपस्या प्रतिष्ठित हैं। युधिष्ठिर को समझाते हुए नकुल कहते हैं कि गृहस्थ आश्रम सब आश्रमों से ऊँचा है। यह बात वेदों के सिद्धान्त को जानने वाले श्रुति सम्पन्न ब्राह्मण कहते हैं – हे मृगराज! आप ऐसे ब्राह्मणों की सेवा में स्वयं उपस्थित होकर इस बात को समझे। युधिष्ठिर को आश्रम धर्म समझाते हुए पितामह भीष्म कहते हैं कि हे युधिष्ठिर! जो वेदों का अध्ययन पूर्ण करके समस्त वेदोक्त शुभकर्म का अनुष्ठान करने के पश्चात् अपनी विवाहिता पत्नी के गर्भ से सन्तान उत्पन्न कर, उस आश्रम के न्यायोचित भोगों को भोगता और एकाग्रचित्त होकर शास्त्रोक्त धर्म से युक्त जो गार्हस्थ्य धर्म का पालन करता हो वह उत्तम है। आगे वे गृहस्थ धर्म के कर्तव्यों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हैं। गृहस्थ को चाहिए कि अपनी स्त्री से अनुराग रखे और सन्तुष्ट रहे। शास्त्रों की आज्ञा का पालन करे। शठता और कुटिलता से दूर रहे। उपकार करने वाले के प्रति कृतज्ञ रहे, सत्य बोले, सबके प्रति मृदुभाव रखे और सदा क्षमा भाव रखे। ईर्ष्या द्वेष से दूर रहे। हव्य–कव्य समर्पित करने में कभी भूल न होने दे। ब्राह्मणों को निरन्तर अन्नदान करे। अन्य सब आश्रमों को भोजन देकर उसका पालन पोषण करता रहे और यज्ञादि में लगा रहे। शास्त्रों में गृहस्थ के लिए पंचमहायज्ञ का विधान बताया गया है। यह उसके लिए प्रतिदिन पंच महायज्ञ–करणीय है।

1. ब्रह्मयज्ञ

ऋषियों ने ज्ञान–विज्ञान का प्रसार किया है, उनका हम पर ऋण है। जब व्यक्ति स्वयं ज्ञान–विज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करता है और इसका प्रचार–प्रसार करता है तो वह ऋषि ऋण से मुक्त हो जाता है। ऋषि ऋण से मुक्त होने की यही प्रक्रिया ब्रह्मयज्ञ कहलाती है।

2. पितृयज्ञ

जिनके घर में मनुष्य जन्म लेता है, जिन्होंने पालन–पोषण किया जिनकी साधना का हम उपभोग कर रहे हैं यद्यपि वे इस समय नहीं हैं, फिर भी हमें श्राद्ध और तर्पण आदि अनुष्ठानों द्वारा उन्हें तृप्त करना चाहिए। ऐसा करने से व्यक्ति पितृ ऋण से मुक्त हो जाता है। इसे पितृ यज्ञ कहते हैं।

3. देव यज्ञ

परमात्मा द्वारा संचालित इस संसार में उसकी अनन्त शक्तियाँ अलग–अलग रूपों में हमारा कल्याण करती हैं। उन दिव्य शक्तियों को होम और यज्ञ द्वारा परितुष्ट करना ही देवयज्ञ का लक्ष्य है।

टिप्पणी

4. भूतयज्ञ

सारा संसार ईश्वर का रूप है। इसलिए गृहस्थ, पशु–पक्षियों यहाँ तक कि कीट–पतंगों को भी अपने द्वारा उपार्जित अन्नादि में सहभागी समझे। उनके अंश को श्रद्धा पूर्वक उनके लिए निवेदित करना भूत यज्ञ कहलाता है।

5. नृयज्ञ

अकस्मात् घर आये हुए व्यक्ति को अतिथि कहते हैं। उसे परमात्मा का रूप समझकर अन्न, जल, आसन से तृप्त करना गृहस्थ का परम धर्म है। अतिथि सेवा को ही नृयज्ञ कहते हैं। अपने मत का उपसंहार करते हुए भीष्म पितामह युधिष्ठिर से कहते हैं कि गृहस्थ पुरूष इस लोक में सत्य, सरलता, अतिथि सत्कार, धर्म, अर्थ, अपनी पत्नी के प्रति अनुराग तथा सुख का सेवन करे, ऐसा होने पर ही उसे परलोक में भी सुख प्राप्त होते हैं यह मेरा मत है।

महाभारत शान्ति पर्व में गृहस्थ आश्रम की भूरि–भूरि प्रशंसा की गयी है। कहते हैं कि एक बार मनीषी पुरूषों ने चारों आश्रमों को विवेक के तराजू पर रखकर तौला था। एक ओर तो अन्य तीनों आश्रम थे दूसरी ओर अकेला गृहस्थ आश्रम था। गृहस्थ ही बाकी तीनों आश्रमों को धारण करता है। पराशर गीता में महामुनि पराशर स्वयं कहते हैं कि जैसे– सम्पूर्ण नदियाँ और नद सम्पूर्ण समुद्र में गिरते हैं उसी प्रकार समस्त आश्रम गृहस्थ का ही सहारा लेते हैं। कपिल और स्युमरश्मि संवाद में स्युमरश्मि कपिल को बताते हैं कि जैसे समस्त प्राणी माता की गोद का सहारा पाकर ही जीवन धारण करते हैं, उसी प्रकार गृहस्थ आश्रम का आश्रय लेकर ही दूसरे आश्रम टिके हुए हैं। गृहस्थ ही यज्ञ करता है। गृहस्थ ही तप करता है। मनुष्य जो कुछ भी चेष्टा करता है जिस किसी भी शुभ कर्म का आचरण करता है, उस धर्म का मूल कारण गार्हस्थ्य आश्रम ही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गृहस्थ आश्रम सभी आश्रमों में श्रेष्ठ एवं महत्वपूर्ण है। गृहस्थ आश्रम में धर्म, अर्थ, काम का सम्यक् उपसेवन परमपुरुषार्थ मोक्ष के लिए हेतु बन जाता है। जिस पुरुष को गृहस्थ आश्रम में सदा धर्म, अर्थ और काम के गुणों की सिद्धि होती रहती है, वह इस लोक में सुख का अनुभव करके अन्त में शिष्ट पुरूषों की गति को प्राप्त कर लेता है।

वानप्रस्थ आश्रम

गृहस्थ जब पुत्र, पौत्र वाला होकर धन, धान्य से सम्पन्न जीवन–यापन कर रहा हो, तभी उसे संसार से निःस्पृह हो जाना चाहिए। जीवन के तीसरे भाग में जब आयु 50 वर्ष से अधिक हो जाये तो व्यक्ति को वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करना चाहिए। वानप्रस्थ आश्रम के काल के बारे में व्यास जी ने अपने महात्मा पुत्र शुकदेव को समझाते हुए कहते हैं कि बेटा गृहस्थ पुरुष को जब अपने सिर के बाल सफेद दिखायी दे, झुर्रियाँ शरीर में पड़ जाय और पुत्र को भी पुत्र की प्राप्ति हो जाये तो अपनी आयु का तीसरा भाग व्यतीत करने के लिए वन में जाए और वानप्रस्थ आश्रम में रहे। तीसरे आश्रम वानप्रस्थ का पालन करने वाले मनुष्य को धर्म का अनुसरण करते हुए पवित्र तीर्थों में,

टिप्पणी

नदियों के किनारे, झरनों के आस–पास वन्य पशुओं से युक्त वनों में निवास करना चाहिए। सुन्दर वस्त्र, स्वादिष्ट भोजन और विषय भोगों का परित्याग करके जंगलों में अपने आप होने वाले अन्न, फल, मूल तथा पत्तों का नियत आहार करना चाहिए। वानप्रस्थ आश्रम का पालन करने वाला भूमि, पत्थर, रेत कंकरीली मिट्टी, बालू अथवा राख पर ही सोता है। काश, कुश और मृगचर्म से बने वस्त्रों से शरीर ढकता है। नख और बाल धारण किए रहता है, नियत समय पर स्नान करके बली वैश्वदेव तथा अग्निहोत्र का अनुष्ठान करता है। सर्दी, गर्मी और हवा का वेग सहते–सहते उसके शरीर की त्वचा फट जाती है और कठिन नियमों का अनुष्ठान करते–करते रक्त और मांस सूख जाते हैं। शरीर हड्डियों का ढांचा मात्र रह जाता है। फिर भी वह धैर्य पूर्वक जीवन–यापन करता रहता है।

वानप्रस्थ के लिए धन का संग्रह करना निषिद्ध है। ये श्रेष्ठ लोग प्रायः शुद्ध एवं हितकर अन्न मात्र के इच्छुक होते हैं। ये स्वाध्याय, तीर्थयात्रा एवं देश दर्शन के निमित्त भ्रमण करते हैं। महाभारतकार गृहस्थों को निर्देश देते हैं कि यदि ऐसे लोग घर पर आ जाये तो उन्हें यथा शक्ति सुखद आसन दें, उन्हें उत्तम भोजन कराएं, उनका पूर्ण सत्कार करें। यह उन श्रेष्ठ पुरुषों के प्रति गृहस्थ का कर्तव्य है।

वानप्रस्थी पुरुष नियम के साथ रहे, नियमानुकूल भोजन करे दिन के छठें भाग अर्थात् तीसरे पहर में एक बार अन्न ग्रहण करे और प्रमाद से बचा रहे। गृहस्थ आश्रम की भाँति अग्निहोत्र, गोसेवा तथा उसी प्रकार यज्ञ के सम्पूर्ण अंगों का सम्पादन करते रहना चाहिए। महाभारत शान्ति पर्व में वानप्रस्थी के लिए कुछ अन्न संग्रह का भी विधान है जिसका उद्देश्य अतिथि सेवा तथा यज्ञ कर्म ही होना चाहिए। कोई–कोई वर्ष भर के लिए और कुछ लोग 12 वर्ष के लिए अन्न का संग्रह करते हैं। किन्तु उनका संग्रह अतिथि सेवा तथा यज्ञ कर्म के लिए होता है। वानप्रस्थ आश्रम में शारीरिक सुख के लिए कोई स्थान नहीं है। इस आश्रम का पालन करने वाला व्यक्ति वर्षा के समय खुले आकाश के नीचे रहता है और जाड़े के दिन पानी के भीतर खड़ा रहता है, जब गर्मी आती है तब पंचाग्नि का सेवन करता है तथा स्वल्प भोजन करता है। यह जमीन पर ही सोता है। एक स्थान पर आसन लगाकर बैठता है। पंजों के बल खड़ा होता है तथा तीनों काल में स्नान और सन्ध्या करता है। वानप्रस्थ धर्म का आश्रय लेने वाला कोई कन्दमूल से और कोई–कोई दृढ़व्रत का पालन करता हुआ मात्र फूलों से ही धर्मानुकूल जीविका चलाता है।

महाभारत शान्ति पर्व के अनुसार वानप्रस्थ आश्रम अकेले अथवा पत्नी के साथ भी ग्रहण किया जा सकता है। जब व्यक्ति गृहस्थाश्रम से कृत–कृत्य हो जाय अर्थात् अग्निहोत्र आदि कर्म सम्पन्न कर ले तो इन्द्रियों को संयम रखते हुए मनस्वी पुरुष स्त्री को साथ लेकर या अकेले ही वानप्रस्थ धर्म का पालन करे।

अत्यन्त कष्ट साधना द्वारा चित्त शुद्धि करना वानप्रस्थ धर्म का प्रधान उद्देश्य है इसमें व्यक्ति परमात्मदर्शन के लिए स्वयं को प्रस्तुत करता है और साथ ही साथ संन्यास ग्रहण की भूमिका तैयार करता है। महाभारत शान्ति पर्व के अनुसार जो पुरुष नियम के साथ रहकर इस वानप्रस्थ धर्म का अनुष्ठान करता है, वह अग्नि की भाँति अपने सारे दोषों को भस्म करके दुर्लभ लोकों को प्राप्त कर लेता है।

टिप्पणी

संन्यास आश्रम

महाभारत शान्ति पर्व के अनुसार आयु के चौथे भाग में वानप्रस्थ आश्रम के बाद संन्यास आश्रम का विधान है। जराग्रस्त शरीर जब नाना प्रकार के व्याधियों से आक्रान्त हो जाय उस वक्त प्रजापत्य का अनुष्ठान करके सब कुछ त्याग करने का विधान बताया गया है। समस्त विहित कर्मों का ही त्याग संन्यास है। संन्यास शब्द का अर्थ यही है – सब कुछ छोड़ देना। संन्यास में आत्मा का ही यजन आत्मा में ही रत होकर आत्मा में ही क्रीड़ा करे, सब प्रकार से आत्मा का आश्रय ले। अग्निहोत्र की अग्नियों को आत्मा में ही आरोपित करके सम्पूर्ण संग्रह परिग्रह को त्याग दे और ब्रह्म यज्ञ तथा इष्टियों का मानसिक अनुष्ठान करता रहे। इसे तब तक करता रहे जब तक कर्म यज्ञ से हट कर आत्मयज्ञ का अभ्यास न हो जाए। वानप्रस्थ आश्रम में व्यक्ति समस्त शरीर संस्कारों से रहित होता है। वह नाखून नहीं कटाता, बाल नहीं बनवाता किन्तु संन्यास आश्रम ग्रहण करते समय कर्म में पवित्र होने के साथ–साथ नाखून, बाल कटाकर पुण्यमय संन्यास आश्रम में प्रवेश करना चाहिए।

शान्ति पर्व के भृगु भरद्वाज संवाद में परिव्राजक के आचार का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इस आश्रम में प्रवेश करने वाले पुरुष समस्त प्रकार के कर्म और समस्त भौतिक सम्पत्ति अर्थात् धन, स्त्री, परिवार तथा घर की सारी सम्पत्ति का परित्याग करते हुए भोगों और सङ्गों के प्रति अपनी आसक्ति के बन्धनों को तोड़कर सदा के लिए घर से बाहर निकल जाते हैं। ढेले, पत्थर और सुवर्ण को समान समझते हैं। धर्म, अर्थ और काम की प्रवृत्तियों में उनकी बुद्धि आसक्त नहीं होती शत्रु, मित्र और उदासीन सब में समान भाव रखते हैं। किसी भी प्राणी से कभी भी मन, वाणी अथवा कर्म द्वारा द्रोह नहीं करते हैं। ये कुटी या मठ बनाकर नहीं रहते। उन्हें चाहिए कि चारों ओर विचरते रहे। इनके ठहरने की कोई निश्चित जगह नहीं होती। ये अपनी सुविधा के अनुसार पर्वत की गुफा, नदी का किनारा, वृक्ष की जड़, देव मन्दिर अथवा किसी गाँव में रात बिताते हैं। ये एक जगह एक दिन से अधिक नहीं ठहरते हैं। प्राणधारण के लिए ऐसे द्विजातियों के घर जाकर खड़े होते हैं जहाँ संकीर्णता न हो और एक बार में जितनी भिक्षा बिना माँगे मिल जाए उतनी ही स्वीकार करते हैं। उससे ही जीविका यापन करते हैं। काम, क्रोध, दर्प, लोभ, मोह, कृपणता, दम्भ, निन्दा, अभिमान तथा हिंसा से सर्वथा दूर रहते हैं।

युद्ध के उपरान्त मिले हुए राज्य का उपभोग करना वे नहीं चाहते। वे अपने भाइयों से कहते हैं कि भाई मैं इस राज्य को नहीं चाहता। मैं सर्दी, गर्मी और हवा को सहूँगा, भूख, प्यास और परिश्रम को सहने का अभ्यास डालूँगा। शास्त्रोक्त तपस्या द्वारा इस शरीर को सुखाता रहूँगा। वे पुनः आगे कहते हैं कि मैं मूड़–मुड़ाकर मननशील संन्यासी हो जाऊँगा और एक–एक दिन एक–एक वृक्ष से भिक्षा माँग कर अपने शरीर को सुखाता रहूँगा। किसी के लिए शोक नहीं करूँगा। न हर्ष, निन्दा और स्तुति को समान समझूँगा। आशा और ममता को त्याग कर निर्द्वन्द हो जाऊँगा तथा कभी किसी वस्तु का संग्रह नहीं करूँगा। युधिष्ठिर की मनोदशा एक सच्चे संन्यासी जैसी लग रही थी। भले ही तत्कालीन परिस्थितियों में यह युधिष्ठिर के मन का क्षणिक आवेग हो किन्तु यह ऊपर से थोपा गया संन्यास नहीं था। इस पर उन्हें भीम समझाते हैं और

टिप्पणी

आगे कहते हैं कि शास्त्र का उपदेश यह है कि आपत्तिकाल में या बुढ़ापे से जर्जर हो जाने पर अथवा शत्रुओं द्वारा धन सम्पत्ति से वंचित कर दिये जाने पर मनुष्य को संन्यास ग्रहण करना चाहिए। महाभारत शान्ति पर्व के अनुसार केवल द्विजातियों के लिए संन्यास का विधान है। किन्तु अन्य आश्रमों के सदाचार का पालन करने वाला शूद्र भी द्विजातियों की भाँति भिक्षा माँगकर निर्वाह कर सकता है। संन्यास आश्रम त्याग का आश्रम है। इसका उपयोग समाज में सेवा और सम्मान पाने के लिए कथमपि नहीं होना चाहिए। गृहस्थ धर्मों का त्याग कर देने पर भी ऋषि भावों से वेदान्त श्रवण आदि संन्यास धर्म का पालन करते हुए जीवन रक्षा के लिए ही भिक्षा का आश्रय लेना चाहिए, सेवा कराने के लिए नहीं। महाभारत के अनुसार संन्यासी चार तरह के होते हैं। इन्हें चार श्रेणियों में विभक्त किया गया है। कुटी चक्र संन्यासी एक जगह बैठकर ही ईश्वर चिन्तन में रत रहते हैं। ये अपने स्त्री, पुत्रादि से भी भिक्षा ग्रहण कर लेते हैं। बहूदक संन्यासी केवल कर्म निष्ठ सद्गृहस्थ ब्राह्मण से ही भिक्षा ग्रहण करते हैं और दण्ड, कमण्डल शिखा यज्ञोपवीत का परित्याग नहीं करते हैं। हंस संन्यासी शिखा आदि तो रखते हैं, लेकिन ये एक जगह स्थिर निवास नहीं करते हैं और अन्तिम प्रकार के संन्यासी परमहंस कहे जाते हैं। ये भी दण्डधारी होते हैं। तीनों गुणों के अपने वश में करने वाले ये त्रिगुणातीत कहे जाते हैं।

संन्यास आश्रम का महत्व

संन्यास आश्रम जीवन के अन्तिम भाग में लिया जाता है। अतः इसका महत्व परलोकाभिमुख है। संन्यासधर्म के विधिवत पालन से मरणोपरान्त व्यक्ति अपने इच्छित लोकों को प्राप्त करता है, किंवा ब्रह्मत्व को प्राप्त कर लेता है। जो ब्राह्मण अग्निहोत्र को अपने शरीर में आरोपित करके शरीरस्थ अग्नि के उद्देश्य से अपने मुख में प्राप्त भिक्षा रूप हविष्य का होम करता है, वह अग्नि चयन करने वाले अग्निहोत्रियों के लोक में जाता है। जो बुद्धि को संकल्प रहित करके पवित्र हो शास्त्रोक्त विधि के अनुसार इस मोक्ष आश्रम के नियमों का पालन करता है, वह मनुष्य बिना ईंधन की आग के समान परम शान्ति ज्योतिर्मय लोक को प्राप्त होता है। आशा, तृष्णा का सदा परित्याग करके सबके प्रति समभाव रखता हुआ और भोगों से दूर रहकर विकार रहित पुरुष अविनाशी ब्रह्म के साथ एकता प्राप्त कर लेता है। जो सब प्रकार के संग्रह से रहित निरीह एकान्तवासी, अल्पाहारी, तपस्वी और जितेन्द्रिय है, जिसके सम्पूर्ण कर्म दग्ध हो गये हैं तथा जो योगानुष्ठान का प्रेमी और मन को वश में रखने वाला है, वह अपने निश्चल चित्त के द्वारा उस परमात्मा को निश्चित रूप से प्राप्त कर लेता है। जो अहिंसा आदि यमों और शौच सन्तोष आदि नियमों का पालन करने में कभी कष्ट का अनुभव नहीं करता, संन्यास आश्रम का विधान करने वाले शास्त्र के सूत्र भूत वचनों के अनुसार त्यागमयी अग्नि में अपने सर्वस्व की आहुति दे देने के लिए निरन्तर तत्पर रहता है उसे इच्छानुसार गति प्राप्त होती है। ऐसे जितेन्द्रिय एवं धर्मपरायण, आत्मज्ञानी की मुक्ति के विषय में तनिक भी सन्देह के लिए स्थान नहीं है।

महाभारत में नैतिक मूल्य

प्रत्येक संस्कृति के नैतिक–मूल्य उसकी पहचान होते है। नैतिक मूल्यों को समझना आवश्यक होता है। नैतिक मूल्यों के ज्ञान का ही महाकाव्य महाभारत है। जिस पर

टिप्पणी

विस्तार से व्याख्या की गई। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का स्रोत महाभारत भारतवर्ष के लिये ही नहीं अपतु सम्पूर्ण विश्व के लिए वेद व्यास की एक अनुपम देन है। महाभारत नीति–दर्शन का भण्डार है। धर्मनीति, राजनीति, लोकनीति और व्यवहार नीति आदि सभी प्रकार की नीतियाँ इसमें उपलब्ध हैं। महाभारत संस्कृति का सागर है। उसमें वर्णित विषयों की इतनी अधिकता और विविधता है कि यह कथन प्रचलित हो गया – **'यन्न भारते तन्न भारते'** अर्थात् जो महाभारत में नहीं है, वह भारत में कहीं नही मिलेगा।

एक लाख श्लोकों वाले महाभारत ग्रंथ में बहुत गूढ बातें हैं। ऐसे विशद गम्भीर और गूढ़ ग्रंथ में अनेक विषयों की विस्तृत उपस्थापना हुई है, जिनमें से एक विषय नीति सम्बन्धी है। इसमें भगवान् योगेश्वर श्री कृष्ण, युधिष्ठिर, विदुर, व स्वयं कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास के नीति–सम्बन्धी विचार तथा अन्य अनेक ऋषि, मुनि, राजा और महापुरुषों के नैतिक–मूल्यपरक वर्णन एवं आख्यान विस्तार वाले हैं। महाभारत की प्रतिष्ठा भारतीय संस्कृति के प्रतिपादक ग्रंथों में अनुपम है। इसके रचयिता महर्षि व्यासदेव ने स्वयं इसे 'इतिहासोत्तम' बतलाया है। इतना ही नहीं यह धर्मशास्त्र, कामशास्त्र, नीतिशास्त्र, मोक्षशास्त्र भी है, इसकी तुलना इस वैचित्र्य के कारण किसी भी अन्य ग्रंथ से नहीं हो सकती। फलतः यह अपनी विशिष्टता की दृष्टि से एकदम बेजोड़ है।

महाभारत में जिन नैतिक मूल्यों का महत्व बताया गया है उन मूल्यों का वर्णन इस प्रकार है–

शाश्वत मूल्य एवं सामाजिक मूल्य

ये सनातन मूल्य हैं जो कि निरपेक्ष होते हैं। अतः सभी कालों में सभी देश जाति वर्ग के लोगों के द्वारा समभाव से समय परिस्थिति के अनुसार इनका पालन किया जाता है। सदाचार, अहिंसा, सत्य, शांति, प्रेम आदि मूल्य शाश्वत् हैं, इनका विवेचन इस प्रकार है।

सामाजिक मूल्य

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसका जीवन सामाजिक मान्यताओं तथा परम्पराओं से प्रभावित होता है। नैतिक मूल्यों तथा मनुष्य का गहरा सम्बन्ध रहा है। जब से मनुष्य ने दूसरों के साथ मिलकर समाज का निर्माण किया और उसी में रहकर अन्य व्यक्तियों के सहयोग से अपनी समस्याओं का समाधान खोजने लगा, तभी से उसे कुछ ऐसे नियमों की आवश्यकता पड़ी, जो उसकी तथा दूसरे मनुष्यों की इच्छाओं व रुचियों या प्रयोजनों में होने वाले संघर्ष को कम कर सकें, या समाप्त कर सकें। धीरे–धीरे इन सामाजिक परम्पराओं ने अनिवार्य नैतिक नियमों का रूप धारण कर लिया।

सभी दार्शनिकों ने व्यक्ति के अस्तित्व एवं विकास के लिए समाज को अनिवार्य माना है। इस तथ्य की सत्यता व्यक्ति के विचारों एवं आदर्शों के विकास से स्पष्ट प्रमाणित होती है। व्यक्ति अपने जीवन में जिन आदर्शों एवं विश्वासों के अनुरूप आचरण करता है, वे उसे अन्ततः समाज से ही प्राप्त होते हैं।

वर्तमान समय में पारिवारिक एवं सामाजिक नैतिक मूल्यों में गिरावट आई है जिसके कारण सम्बन्धों में टकराव, पारिवारिक कलह, भ्रष्टाचार, ईर्ष्या आदि बुराइयाँ बढ़ती जा रही हैं। मानव जीवन का स्तर गिरता जा रहा है। ऐसे समय में हमें आवश्यकता है पुनः पारिवारिक एवं सामाजिक मूल्यों को जीवन में धारण करने की। हमारे भारतीय ग्रन्थों में नैतिक–मूल्यों का विस्तृत विवेचन किया गया है जिन्हें हम जीवन में अपना सकते हैं।

सदाचार

मानवधर्म की व्याख्या करते हुए व्यास ने सदाचार को सर्वप्रथम स्थान दिया है। पुराणों में सदाचार वर्णन पर महाभारत का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। महाभारत में सदाचार को कहीं आचार कहकर धर्म के नाम से वर्णित किया गया है तो कहीं शिष्टाचार के नाम से है। इसके अन्तर्गत उन सभी आवश्यक गुणों के महत्त्व का उल्लेख है जो नैतिक–मूल्यों के अंग माने जाते हैं।

सदाचार का अर्थ है सत्य का आचरण जिसके अन्तर्गत सत्य, अहिंसा, दान, तप, अक्रोध, अस्तेय, शम आदि सभी गुण समाविष्ट हैं। शान्तिपर्व में इसी को शील कहा गया है। सदाचार का भाव है सज्जनों का आचार विचार और व्यवहार। सज्जन पुरुष जैसा सोचते, बोलते और करते हैं वही सदाचार है। वेद और स्मृति ग्रन्थ तो सदाचार के स्वरूप ही हैं। इसलिए आत्मा का प्रिय भी सदाचार मूल्य ही रहा होगा क्योंकि इसके अन्तर्गत सभी मूल्य समाहित हैं जो मानव के लिए आवश्यक हैं। सदाचार से ही महात्माओं की पहचान होती है।

शान्तिपर्व में सदाचार का लक्षण बताते हुए कहा गया है कि ''श्रेष्ठ पुरुष तो वे ही हैं जिनमें सदाचार देखा जाए – सदाचार ही उनका लक्षण है।'' मनुष्य के द्वारा गोओं के बीच में, अनाज में, मल या मूत्र का त्याग न करना, प्रतिदिन आवश्यक शौच का सम्पादन करके आचमन करना, फिर नहाने और अपने अधिकार के अनुसार संध्योपासन के पश्चात् देवता आदि का तर्पण करने को मानव मात्र का धर्म कहा गया है। नित्यप्रति सूर्योपस्थान करके सूर्योदय के समय कभी भी न सोना, सांयकाल प्रातःकाल दोनों समय संध्योपासना करके गायत्री मंत्र जप करना, पवित्र होकर पूर्वाभिमुख भोजन करना (पूर्व की तरफ मुख करके), भोजन के समय मौन रहना, भोजन के बाद हाथ धोकर उठना, रात को भीगे पैर न सोना, सदाचार का लक्षण बताया गया है।

अनुशासन पर्व में कहा गया है कि – ''सदाचार से मनुष्य को आयु की प्राप्ति होती है, सदाचार से ही वह सम्पत्ति पाता है तथा सदाचार से उसे इहलोक और परलोक में भी कीर्ति की प्राप्ति होती है। अतः यदि मनुष्य अपना कल्याण करना चाहता हो तो उसे सदाचार का पालन करना चाहिए। सदाचार ही धर्म का लक्षण है। सच्चरित्रता ही श्रेष्ठ पुरुषों की पहचान है। श्रेष्ठ पुरुष जैसा बर्ताव करते हैं, वही सदाचार का स्वरूप तथा लक्षण है। अतः प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त्त में जागकर धर्म और अर्थ के विषय में चिन्तन मनन करना चाहिए एवं शय्या से उठकर शौच स्नान के पश्चात् आचमन करके प्रातःकाल की संध्या एवं सांयकाल में भी मौन होकर संध्योपसना करना चाहिए। उदय और अस्त के समय सूर्य की ओर नहीं देखना चाहिए।

टिप्पणी

आत्म संयम

आत्म संयम सदाचार का ही एक अंश है। महाभारत में इसका विस्तृत विवेचन है, यही भारतीय संस्कृति का नैतिक पक्ष–नैतिक मूल्य है। इन्हीं उदात्त भावनाओं के कारण भारतीय संस्कृति विश्व में अनूठी है। आत्म संयम ही परम कल्याण का साधक है, क्योंकि जो मनुष्य इस संसार में आत्म–संयम सम्पन्न है, वही दान, क्षमा और सब प्रकार की सिद्धियों का यथार्थ लाभ प्राप्त करता है। महाभारतकार ने बताया है कि आत्मसंयम के द्वारा ही दान, तपस्या, ज्ञान और स्वाध्याय का समुचित सम्पादन होता है। आत्म संयम के द्वारा ही मनुष्य के तेज की वृद्धि होती है। यह आत्म कल्याण का पवित्र एवं उत्तम साधन है। आत्मा की पवित्रता ही आत्म संयमी पुरुष का लक्षण है।

सत्य

सत्य एक शाश्वत नैतिक मूल्य है। सत्य में सभी गुण समाहित हैं। सत्य शब्द व्यावहारिक जीवन में सच्चाई के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। दर्शनशास्त्र में सत्य शब्द का प्रयोग शाश्वत सत्ता के अर्थ में भी किया गया है। शब्दकोष के अनुसार सत्य शब्द का अर्थ है – सच्चाई, ईमानदार, सच्चा, पुण्यात्मा, यथार्थ, पारमार्थिक सत्ता, पुण्य, शपथ, कृतयुग, जल, सत्यलोक, श्रीराम, विष्णु आदि।

महाभारत में सत्य शब्द का अर्थ सत्य भाषण से लिया गया है। कहीं–कहीं सृष्टि के शाश्वत तत्वों को भी सत्य कहा है। एक स्थान पर ब्रह्म, तप, प्रजापति भूतों का उत्पत्तिस्थान तथा भूतमय जगत् को सत्य कहा है। सत्य से ही पृथ्वी व आकाश स्थिर है तथा मनुष्यलोक में अग्नि प्रज्वलित होती है। सूर्य को भी सत्य में प्रतिष्ठित माना गया है। एक स्थान पर अस्ताचल में सूर्य की स्थिति सत्य से ही बताई गई है।सत्य ही सबका आधार है।सत्य ही ब्रह्म व तप है। इसी से सृष्टि होती है इस लोक में स्वर्ग लोक का निर्वाह सत्य से ही होता है।

परन्तु अधिकांश स्थानों पर सत्य का तात्पर्य यथार्थ कथन से ही लिया गया है। सत्य का लक्षण देते हुए भीष्म पितामह कहते हैं कि सदा एकरस अविकारी तथा अविनाशी होना ही सत्य का लक्षण है। महाभारत में मन, वचन तथा कर्म की एकरूपता पर बहुत बल दिया गया है। जैसा सुना हो, देखा हो, किया हो, उसी प्रकार से उसको शब्दों से अभिव्यक्त करना सत्य है। सत्य को ही धर्म का प्रधान लक्षण माना गया है, सत्य द्वारा मनुष्य अनेक पापों से बच जाता है। परन्तु यदि सत्य भाषण, मन, वचन तथा कर्म की एकरूपता की अभिव्यक्ति नहीं करता, बल्कि छल प्रपंच से शब्दों को तोड़–मरोड़ कर बोला गया है, तो वह सत्य छलपूर्वक होने के कारण सत्य नहीं है। यदि सभा में किसी विशेष निर्णय पर पहुंचने के लिए प्रश्न पूछा जाए, तो उस सभा में उत्तर न देकर मौन रहने वाले सभासद् भी असत्य भाषण के आधे फल को प्राप्त करते हैं। अतः सत्यभाषण का तात्पर्य अपने मत का सही ढंग से स्पष्टीकरण है।

महाभारत में सत्य को धर्म का प्रधान अंग माना गया है। सत्य की अभिवृद्धि करने वाले और सत्यपालन में सहायता करने वाले तेरह धर्मों का वर्णन करते हुए कहा

गया है सत्य, समता, इन्द्रियसंयम, अमात्सर्य, क्षमा, तितिक्षा, अनूसयता त्याग, ध्यान, आर्यत्व, धृति व अहिंसा ये सभी सत्य को ही लक्षित कराने वाले हैं। ये सत्य का ही आश्रय लेते हैं, तथा उसी की वृद्धि व पुष्टि करते हैं।

टिप्पणी

यद्यपि महाभारत में सामान्य परिस्थितियों में सत्यभाषण का ही विधान किया गया है, परन्तु प्राणी मात्र के कल्याण की भावना से कुछ परिस्थितियों में असत्यभाषण का भी अनुमोदन किया गया है। जिनमें असत्य भाषण, सत्य कथन के समान फलदायक होता है। 'भीष्म पितामह कहते हैं, जैसे कभी किसी धनी व्यक्ति के पीछे लुटेरे पड़े हों, तथा उसका पता पूछते हों, तो उन्हें उस धनी का पता कदापि मत बताओ। पूछने पर भी मौन रहो। यदि न बोलने के कारण चोरों के मन में शंका हो जाए तो झूठ बोलना ही अधिक श्रेयस्कर है।

महाभारत में, जीवन में कुछ अन्य अवसरों पर भी मिथ्याभाषण पापरहित माना गया है। भीष्म पितामह युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए कहते हैं, प्राण–संकट आने पर विवाह निश्चित करने के समय, धर्म रक्षा हेतु अथवा पराये धन की रक्षा हेतु अथवा पराये धन की रक्षा के उद्देश्य से असत्य भाषण किया जा सकता है। वनपर्व में प्राण रक्षा करने व विवाह के समय असत्यवादन की अनुमति दी गई है, परन्तु मुख्य उद्देश्य प्राणी मात्र का अत्यधिक कल्याण करना ही होना चाहिए। महाभारत में बताया है जहां अपने तथा पराये, दोनों के प्राण बचाने का अवसर उपस्थित हो, तो केवल अपने प्राण बचाने के निमित्त किया गया असत्यवादन वक्ता का नाश कर देता है। एक अन्य प्रसंग में निर्दोष प्राणी की रक्षा हेतु गवाही देते समय मिथ्याभाषी को पतित नहीं माना गया है। एक अन्य प्रसंग मे यहां तक कहा गया है कि गुरु की रक्षा हेतु तथा परिहास में हानि रहित होने के कारण असत्यवादन पातक नहीं है। इस प्रकार महाभारत में अहिंसा धर्म के पालनपूर्वक तथा भूतकल्याण की भावना से मिथ्या कथन का अनुमोदन भी किया गया है।

महाभारत में यद्यपि सामान्य परिस्थितियों में सत्यभाषण का ही विधान किया गया है, परन्तु साधारण सामाजिक व्यक्ति जीवन में विषम परिस्थितियों से घिर कर अपवादरूप से असत्य भाषण भी कर सकते हैं। सत्य के स्वरूप विवेचन के संदर्भ में महाभारत का यह कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। महाभारत में ही इस अपवाद का कारण भी दिया गया है। महाभारत में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वेदों में सभी धर्मों का प्रतिपादन नहीं किया गया है। वेदों में, आपद्धर्म के अनुसार सत्यभाषण के अपवाद भूत परिस्थितियों में असत्य कथन का विधान नहीं है। जबकि महाभारत में कहा गया है कि परिस्थिति के अनुसार सत्यभाषण तथा असत्यभाषण के औचित्य का निर्णय लेना अत्यन्त कठिन है।

सत्य के लाभ

महाभारतकार ने सत्य के अनेक लाभ बताये हैं। सत्य भाषण से लौकिक, पारलौकिक तथा आध्यात्मिक लाभ होते हैं। सत्यभाषी के वक्तव्य का सभी व्यक्ति सम्मान व विश्वास करते हैं। वह सदा छलकपट तथा चिन्ताओं से युक्त एवं निर्भय रहता है। अतः

टिप्पणी

सत्यभाषण के फलस्वरूप उसकी आयु वृद्धि होती है। केवल आयुवृद्धि ही नहीं, सत्यभाषी को सन्तान प्राप्ति तथा 'लोकों पर जय भी प्राप्त होती है। सत्यभाषण से वाणी की पटुता तथा परलोक में प्रतिष्ठा होती है। यही स्वर्ग का सोपान है। इससे ही धर्मरक्षा होती है। सत्य से ही मृत्यु निवारण सम्भव है। सत्य ही अमृत है, सामने आती हुई मृत्यु सेना से भी सत्यभाषी को कष्ट नहीं होता। सत्यस्वरूप परमात्मा का दर्शन सत्य द्वारा ही सम्भव है। यही कारण है कि सत्य धर्मपालक महात्मा युधिष्ठिर आदि पांडव ही भगवान् श्रीकृष्ण की दैवी शक्ति को अधिक पहचानते थे। असत्यवादी दुर्योधन आदि कौरव नहीं। अतः सर्वदा सत्य का पालन करना चाहिए।

अहिंसा

अहिंसा का अभिप्राय साधारण शब्दों में है– अकारण किसी की हिंसा न करना अर्थात् मन वचन, कर्म से किसी को हिंसा न पहुंचाना। सत्य और अहिंसा के आधार पर ही संपूर्ण भारतीय गुणों की प्रतिष्ठा है। अहिंसा परम मित्र है और अहिंसा परम सुख है। अहिंसा से मनुष्य सुखी रहता है इस विषय में भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा कि ''जो मनुष्य अहिंसा नामक परम धर्म को समस्त प्राणियों के लिए सुखद और दुःख निवारक जानता है, वही सर्वज्ञ है और वही सुखी होता है। जो कर्म हिंसा से रहित हैं, वे सदा मनुष्य की रक्षा करते है। मनुष्य को चाहिए कि उसके प्रियजन यदि कोई हिंसात्मक कर्म उसके लिए करते हो तो वह उन सब कर्मों को रोक दे। दूसरे की आयु से अपनी आयु बढ़ाने की अर्थात् दूसरे के प्राण लेकर, अपने प्राण बचाने की इच्छा न करें।

महाभारत के अनुसार अहिंसा और दया आदि भावों से प्रेरित होकर किया हुआ कर्म इहलोक और परलोक में भी उत्तम फल देने वाला है यह परम कल्याण का साधन है। अतः अहिंसा को सर्वश्रेष्ठ धर्म बताया है। श्रेष्ठ पुरुषों के लिए अहिंसा श्रेष्ठ कर्म है। बृहस्पति युधिष्ठिर को अहिंसा का उपदेश देते हुए कहते हैं कि अहिंसा का पालन करो तथा सबको अपने जैसा समझो। जो व्यवहार तुमको रुचिकर नहीं लगता, वह व्यवहार दूसरों के प्रति भी मत करो। यही धर्म का संक्षिप्त लक्षण है। अहिंसा का पालक अपने काम क्रोध पर विजय पा लेता है क्योंकि हिंसात्मक आचरण काम क्रोध लोभ व मोह से प्रेरित होता है। स्वयं पतंजलि ने भी हिंसा को लोभ क्रोधमोह से उत्पन्न माना है। युधिष्ठिर ने वैदिक प्रमाण के अनुसार अहिंसा को देवता, ऋषि व ब्राह्मणों द्वारा प्रशंसित कहा है। भीष्म पितामह ने अहिंसा को चतुर्विध बताया है। मन, वचन, कर्म से, तथा मांसभक्षण हेतु हिंसा न करने पर ही अहिंसा का पूर्णतः पालन होता है। ये ही अहिंसा के चार पाद हैं। अहिंसा धर्म में ही सब धर्मों का समावेश हो जाता है, जैसे हाथी के पदचिह्न में सभी पदगामी प्राणियों के पदचिह्न समा जाते हैं। सम्पूर्ण यज्ञों में दिये दान, तीर्थस्थानों व सर्वविध दान के फलों को मिलाकर भी उनका फल अहिंसा के तुल्य नहीं हो सकता। जो हिंसा नहीं करता, उसकी तपस्या अक्षय होती है। अहिंसक पुरुष सब प्राणियों के मात–पिता के समान है। अतः अहिंसा ही परम धर्म है। यही परम संयम है। यही परमदान है। अहिंसा ही परम तपस्या है परम यज्ञ है। परमफल है परम मित्र है तथा अहिंसा ही परम सुख है। अतः महाभारतकार के मत में मनुष्य को सदा अहिंसा का ही पालन करना चाहिये। यही श्रेष्ठ व

टिप्पणी

सुखदायक धर्म है। हिंसा को सत्पुरुष–निन्दित व सबसे बड़ा पाप कहा गया है। श्री कृष्ण ने अर्जुन को युधिष्ठिरवध के विचार से विमुख करते हुए यहां तक कहा है कि किसी की प्राणरक्षा करने के लिए यदि झूठ भी बोलना पड़ जाए, तो झूठ बोल कर भी उसकी प्राणरक्षा करनी चाहिए। हिंसा करने वाला व्यक्ति नरकगामी होता है। वह न तो आत्मस्वरूप को जानता है, न ही मारे जाने वाले व्यक्ति को (तत्वतः) जानता है। नित्य शुद्ध–बुद्ध स्वरूप आत्मा न किसी को मारती है, न ही मारी जाती है। भाव यह है कि आत्मा अजर–अमर है। फिर भी जो किसी की हिंसा करता है, वह स्वयं काल द्वारा निहत होते हुए भी दूसरों की हत्या करता है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को युद्ध हेतु प्रेरित करते हुए कहते हैं कि तू इन कौरव वीरों को मार। व्यथित मत हो। मैंने इन्हें पहले ही मार दिया है। मारने व मरने में अनुभव होने वाले सुख, दुःख का कारण अज्ञान ही है। तथापि कोई भी व्यक्ति मरना नहीं चाहता। महाभारतकार ने बताया है कि मृत्यु काल में सभी प्राणियों का शरीर तुरन्त कांप उठता है। इस भूमण्डल पर अपने जीवन से बढ़कर कोई अन्य वस्तु प्रिय नहीं होती। अतः सदा सबको समान समझ कर कभी किसी की हिंसा नहीं करनी चाहिए। जो सदा दूसरों को सताते हैं, उनके ऊपर दैव प्रेरित प्राणनाशक दण्ड आता है। जाजलि के संवाद में भी यही कहा गया है। भेड़िये के समान भयंकर, जिस व्यक्ति से सब प्राणी डरते हैं, उस व्यक्ति को भी सम्पूर्ण प्राणिसमुदाय से भय प्राप्त होता है। इसका मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि जिस प्राणी को मारने अथवा भयभीत करने का प्रयास किया जाता है, वह भी अवसर पाकर पीड़ा देने वाले को, प्रतिशोधस्वरूप पीड़ित करने का प्रयास करता है। यदि मार भी दिया जाए तो भी हिंसित व्यक्ति के मन में हिंसक को मारने का भाव (संकल्प) उत्पन्न होता है, जो जन्मान्तर में क्रियान्वित होता है। मांस शब्द का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ भी इसी भाव की अभिव्यक्ति करता है। वध्यमान व्यक्ति कहता है – 'मां स भक्षयते यस्माद् भक्षयिष्ये तमप्यहम्' अर्थात् जो मुझे खा रहा है, इस व्यक्ति को मैं भी कभी खाऊंगा। इस प्रकार हिंसक व्यक्ति को अपने हिंसाकर्म का पापफल, बधु, बन्धन आदि के रूप में मिलता है।

शौच – (पवित्रता)

साधारण शब्दों में शौच का अर्थ है मानसिक, वाचिक और कायिक पवित्रता। यह एक दिव्य गुण भी है। ईश्वर की ओर बढ़ने वाले मनुष्य का यही मुख्य लक्षण है, और सफलतामूर्त बनने का यही मुख्य साधन है। इसे गीता में सत्त्व–संशुद्धि और शौच आदि नाम दिये गए हैं। भीष्मपर्व में शौच को परम स्थान दिया गया है। इसे भक्तियोग का आधार, ब्राह्मणधर्म का विशेष गुण तथा दैवी सम्पति माना गया है, इसके निर्वाह की पराकाष्ठा प्रदान करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने धर्म रूपी पवित्रता को अपना ही रूप स्वीकार किया है। अर्जुन द्वारा कृष्ण को दिया गया परम पवित्र विशेषण भगवान् श्रीकृष्ण के इससे पूर्व कथन की पुष्टि करता है। यज्ञ, दान और तप आदि को विवेकी पुरुषों का हेतु बताकर विवेक के लिए शौच को अपरिहार्यता को सार्वभौमिक तथा सार्वकालिक प्रासंगिकता प्रदान की गई है।

टिप्पणी

महाभारत में युधिष्ठिर की पवित्रता के विषय में भीष्मपितामह ने कौरवों को बताते हुए कहा कि जब कौरवों के पाण्डवों को ढूंढने के सभी उपाय निष्फल हो गए थे, तब अन्त में भीष्म पिता ने एक युक्ति बतलायी उन्होंने कहा साधारण दूतों द्वारा क्या पता लगा सकते हैं। उनकी खोज करने का एक साधन यह है कि आप लोग इसको ध्यायनपूर्वक सुनें। जिस देश और राज्य में पवित्रता या जितेन्द्रिय राजा युधिष्ठिर होंगे, वहां के राजा का अमंगल हो नहीं सकता है। उस देश के मनुष्य निश्चय ही दानशील, उदार, शान्त, लज्जाशील, प्रियवादी, सत्यपरायण पवित्र तथा चतुर होंगे। वहां की प्रजा सुख शान्ति से जीवन व्यतीत करती होगी। इस प्रकार भीष्म पितामह ने पवित्रता को एक सुरक्षा कवच बताया है। अगर वर्तमान समय में इसी सोच को जीवन में अपनाया जाए तो आए दिन होने वाले अत्याचार, भ्रष्टाचार को खत्म किया जा सकता है क्योंकि मानसिक सोच जब श्रेष्ठ होगी शुद्ध, पवित्र होगी तो सभी अपने अपने कार्य जिम्मेदारी से करेंगे तथा एकता का भाव पैदा होगा।

भीष्म पितामह ने आचार को आयुष्यवर्धक, श्रीसम्पन्नता तथा निःश्रेयस साधना का स्रोत घोषित करके प्राणियों में पवित्र सोच के संस्कार जगाने का प्रयास किया है।इसका समर्थन करते हुए कहा गया है कि शतवर्षीय जीवन के लिए सदाचार, श्रद्धा तथा आचार परम आवश्यक है। प्राणिविषयक पवित्रता के लिए जूठे हाथ से सिर का स्पर्श करना निषिद्ध घोषित किया गया है। वाणी की कटुता को निषिद्ध घोषित करते हुए प्राणियों से आग्रह किया गया है कि वे दूसरों के मर्म पर आघात न करें। कठोर वचन न कहें दूसरों को नीचा न दिखाएं। जिस बात को कहने से दूसरों को दुःख होता हो तो वैसी पापयुक्त अकल्याणकारी बात न कहें, नहीं तो उन्हें पापियों का लोक प्राप्त होगा। बुद्धिमान मनुष्य के लिए नित्यप्रति स्नान एवं सब पर्वों में ब्रह्मचर्य का पालन करना उचित बताया है। अशौच को निषिद्ध घोषित करने के लिए अपवित्र मनुष्य के निकट बैठकर भोजन करना भी वर्जित बताया है, यह भी कहा गया है कि मनुष्य को धर्मशास्त्रों में वर्जित भोजन को पीठ के पीछे छिपाकर नहीं खाना चाहिए। इस प्रकार इसका भाव है कि पवित्रता संधारणार्थ निषिद्ध भोजन का सर्वथा त्याग है।

शान्ति

वर्तमान समय के भौतिकवादी युग में मानव नैतिक मूल्यों एवं गुणों को भूल चुका है। इसलिए मनुष्य तनाव, भय, अशान्ति से पूर्ण जीवन जी रहा है और नशीली चीजें सेवन करता है, जिससे और ही बिमारियों को निमन्त्रण देता है। ऐसे समय में हमें महाभारत में दिशा निर्देश मिलता है जिसको अपनाने से जीवन में शांति प्राप्त हो सकती है।

महाभारत के भीष्मपर्व में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के अशांत मन को समझाते हुए कहते हैं कि जो पुरुष समुंद्र में निरन्तर प्रवेश करती रहने वाली नदियों के समान इच्छाओं के निरन्तर प्रवाह से विचलित नहीं होता और जो सदैव स्थिर रहता है, वही शान्ति प्राप्त कर सकता है। यहां पर श्रीकृष्ण का कहने का भाव यह हो सकता है कि नदी ज्यादा पानी होने पर, बरसात में किनारा तोड़ देती है अर्थात् नगरों को बहा भी देती है। जबकि सागर का हृदय विशाल होता है वह चाहे पानी कितना भी हो अपने में समा लेता है।

इसी प्रकार महान् व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की छोटी–छोटी बुराईयों को समा लेता है। कभी विचलित नहीं होता है। सभी के प्रति उसमें करुणा की भावना रहती है, उसके मन में नकारात्मक भाव पैदा नहीं होते हैं। इसलिए श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि तू काम रहित होकर परमानंद व शान्ति का आनन्द ले। श्रीकृष्ण शान्ति के बारे में समझाते हुए कहते हैं कि जो भक्त मुझे सर्वलोकों के महेश्वर, सम्पूर्ण जीवों का हितैषी अर्थात् स्वार्थ रहित, दयालु और प्रेमभाव से जानता है वह शांति को प्राप्त होता है। आगे भगवान् का कहना है कि जो परमात्मा को याद नहीं करते है उनकी न तो बुद्धि दिव्य होती है, न ही स्थिर होती है, जिसके बिना शान्ति की कोई सम्भावना नहीं है। इस प्रकार भगवान् पुनः शान्ति को प्राप्त करने के लिए कहते हैं कि सर्व सम्बन्ध मुझसे जोड़कर स्थिर चित होकर शान्ति की प्राप्ति करो। इस प्रकार सर्व सम्बन्ध भगवान् से जोड़कर हर कर्म करेंगे तो शान्ति प्राप्त होगी। परमात्मा के दिव्य रूप को समझकर अपनी चेतना को जागृत कर ज्ञान को समझ कर भक्त शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। अतः शांति तभी प्राप्त होगी, जब मन व मस्तिष्क एक साथ एक अक्षय स्रोत–चेतना (आत्मा) पर केन्द्रित व स्थिर होंगे। तभी विश्व में शान्ति हो सकती हैं।

प्रेम

प्रेम एक शाश्वत मूल्य है। प्रेम के लिए कहा जाता है कि जहाँ प्रेम है वहाँ भय नहीं होता है क्योंकि पवित्र और निःस्वार्थ प्रेम एक दिव्य शक्ति है। जितने भी महापुरुष हुए है उन्होंने प्रेम के आधार पर ही समाज व राष्ट्र में श्रेष्ठ कार्य किये हैं। इसलिए प्रेम एक ऐसी शक्ति है जो कार्य करने की बड़ी क्षमता प्रदान करता है। प्रेम मानव की चेतना की शक्ति है जो मानव को आगे बढ़ाती है। यह शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक स्वास्थ्य के लिए जरूरी एक संजीवनी शक्ति है। इसलिए इसे अमृत स्वरूप कहा गया है। प्रेम के बारे में कहा गया है कि इसमें शारीरिक और मानसिक विकारों के उपचार की भी शक्ति विद्यमान है। मन में घृणा का भाव रखने वाला व्यक्ति न केवल अपना मानसिक सन्तुलन खोता है, अपितु अपने जीवन और स्वास्थ्य को क्षति पहुंचाता है। दूसरी ओर प्रेम, सहानुभूति तथा मैत्रीभाव न केवल व्यक्ति को मानसिक शान्ति कायम रखने में मदद करते हैं, अपितु ये एक सन्तुलित दृष्टिकोण भी पैदा करते हैं। इन गुणों से युक्त व्यक्ति हर तरह की परिस्थिति में शान्ति और आनन्द का अनुभव करेगा। प्रेम करना और प्रेम प्राप्त करना सर्वाधिक महत्वपूर्ण 'विटामिन' का काम करते है और यह व्यक्ति के सम्यक् विकास तथा सुखमय जीवन के लिए अपरिहार्य है।

महाभारत के भीष्मपर्व के छठे अध्याय में प्रेम के बारे में भगवान् बताते हैं कि योगियों में भी जो योगी सदैव मुझे याद करते हैं, मुझसे ही प्रेम करते है वे मेरे द्वारा सर्वोच्च योगी माने जाते हैं। भाव यह कि वह परमात्मा की प्रेम से दिव्य भक्ति करता है इसलिए स्वयं भगवान् प्रेम से उसे सर्वोच्च स्थान देते है। इसीलिए कहा जा सकता है कि प्रेम से भगवान् को भी योगी अपने वश में कर सकता है। प्रेम एक आध्यात्मिक शक्ति है। भक्ति भी प्रेम पर आधारित है। उदाहरणार्थ, जब माता अपने बच्चे की सेवा करती है तो उसमें कोई स्वार्थ नहीं रहता, वह प्रेमवश ही सेवा करती है। भले ही सारे लोग बच्चे की परवाह न करें किन्तु माता ऐसा नहीं कर सकती, क्योंकि वह उससे प्रेम

टिप्पणी

करती हैं। इसी तरह जब ईश्वर की सेवा का प्रश्न आता है तो उसमें कोई स्वार्थ नहीं होना चाहिए। यही पूर्ण कृष्ण चेतना है और श्रीमद्भागवत में भी बताया गया है कि धार्मिक सिद्धांतों का वर्णन करते हुए इसी की महिमा की गई है **'स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे'** अर्थात् उच्च कोटि का धर्म वही है जो मनुष्य में ईश–चेतना या ईश्वर में प्रेम विकसित करने में समर्थ हो। यदि कोई व्यक्ति ईश–प्रेम विकसित कर सके तो वह किसी भी धर्म का पालन कर सकता है। इसकी परीक्षा यही है कि कोई कितना परमात्मा से प्रेम कर सकता है, किन्तु यदि कोई स्वार्थवश यह सोचे कि इस धर्म पद्धति का अभ्यास करने से मेरी भौतिक आवश्यकताएं पूरी हो जाएंगी तो यह उच्च कोटि का धर्म नहीं रहा। उच्च कोटि का धर्म वह है जिसमें मनुष्य परमात्मा से निःस्वार्थ प्रेम करे और परमात्मा की रचना (सृष्टि) से भी प्यार करें। इसलिए हम किसी मांग के बिना ईश्वर से प्रेम करें। जब हम परमात्मा को याद कर कर्म करते या सेवा करते है तो हमारी आवश्यकताएँ स्वतः पूरी हो जाती है। इसीलिए श्रीकृष्ण–अर्जुन से कहते हैं हे अर्जुन तू मुझमें मन लगा, मेरा भक्त बन और प्रेम से मुझको प्रणाम कर ऐसा करने से तू मुझे ही प्राप्त करेगा। यह मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूं क्योंकि तू मुझे अत्यन्त प्रिय है।

प्रसन्नता

मन की प्रसन्नता अर्थात् प्रसाद गुण एक ऐसी अवस्था है, जिसमें कोई भी उतार–चढ़ाव या हिंसा नहीं होती। आत्मा के साथ ऐसी शांति के साथ बुद्धि के भीतर विश्वास उत्पन्न होता है। जो लोग ऐसा विश्वास रखते हैं, उनके मन में प्रसन्नता निरन्तर आती रहती है। भले ही कोई भी परिस्थिति कितनी भी विपरीत, बुरी या चुनौतीपूर्ण क्यों न हो जाए, एक निर्भीकता का भाव होगा क्योंकि विश्वास की शक्ति अंतिम विजय का आश्वासन देती है। प्रसन्नता एक ऐसा पोषण है जो आत्मा की प्रभुसत्ता से प्राप्त होता है। यही हमारे मन, बुद्धि, व्यक्तित्व, गुणों तथा शरीर की भौतिक इंद्रियों का स्वामी है। प्रायः जीवन में सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक स्थिरता को प्रसन्नता व आनंद का स्रोत माना जाता है। जब भी इनमें से किसी एक क्षेत्र में अव्यवस्था आती है तो व्यक्ति की प्रसन्नता का लोप हो जाता है। जब व्यक्तियों के आध्यात्मिक व नैतिक–चरित्र के विकास की कीमत पर संसाधनों को सामाजिक आर्थिक आधारित संरचना पर केन्द्रित किया जाता है तो जीवन की प्राथमिकताएं उलझकर रह जाती हैं और धीरे–धीरे प्रसन्नता का क्षय होने लगता है। ऐसे समय पर हमें आवश्यकता है कि आध्यात्मिक व नैतिक मूल्यों का उपयोग करते हुए हम अपनी प्राथमिकताओं का पुनः मूल्यांकन करें। महाभारत के भीष्मपर्व में श्रीकृष्ण प्रसन्नता के बारे में कहते हैं कि अपने वश में किये हुए अन्तःकरण वाला साधक अपने अधीन की हुई राग–द्वेष से रहित इन्द्रियों द्वारा विषयों में विचरण करता हुआ अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है। इसलिए श्रीकृष्ण का कहना है कि मानव को अपनी चेतना अर्थात् आत्मा को विकारों से विमुक्त बनाएंगे तो प्रसन्नता प्राप्त होगी।

योगेश्वर भगवान् कहते हैं कि प्रसन्नता के प्राप्त होने पर दुःख स्वतः समाप्त हो जाते हैं।

टिप्पणी

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।

हमें इसे इस प्रकार समझना चाहिये कि जैसे प्रकाश होते ही अंधकार बिना प्रयास किये ही समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार प्रसन्नता के आते ही दुःख स्वतः समाप्त हो जाते हैं और चित्त प्रसन्नता से भर उठता है अर्थात् प्रसन्नता की ऊष्मा तथा आराम आत्मा के भीतर ही छिपा है। जब हम भीतर की ओर झांकते हैं और शांति व मौन की आंतरिक शक्तियों से बल प्राप्त करते हैं तो हम अपने गुणों को पुनर्जीवित करते हैं और हमारी प्रसन्नता का स्तर ऊँचा उठने लगता है।

इस प्रकार जब हम आत्मिक भाव से दूसरों के साथ कुछ बांटते हैं तो हमें प्रसन्नता होती है। तब हम निःस्वार्थ भाव से कोई आकांक्षा नहीं रखते।

सरलता

सरलता का अर्थ है मनुष्य का सादा जीवन। गीता के अनुसार चारों (आर्जव) के प्रत्येक सदस्य को इसका पालन करना चाहिए चाहे वह ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा संन्यास आश्रम में हो क्योंकि सरल चित्त होने से मनुष्य कई प्रकार की समस्याओं का समाधान कर सकता है। सरलता से, पवित्रता से सत्यता सम्बन्धी नैतिक गुणों की जागृति होती है जो स्वयं व दूसरों के लिए हितकर है। गीता के अनुसार सरलता में ही मनुष्य की विजयी बनने की शक्ति निहित है। सरलता का सम्बन्ध सरल स्वभाव, सरल मन से है। सरलता के बिना मनुष्य योगस्थ नहीं हो सकता है। गीता के अन्दर बताया गया है कि सरलता में एक प्रकार की आर्कषण शक्ति समाई रहती है और यह एक ऐसा गुण है, जिसके अभाव में अन्य मूल्य भी पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाते हैं। सरलता के बारे में बताया गया है कि सरलता कई पापों से बचा देती है और कई गुणों को जागृत कर देती है क्योंकि कुटिल व्यक्ति तो अपनी बातों के उधेड़–बुन में लगा रहता है। उसका मन चंचल रहता है, चित अस्थिर रहता है जिससे सत्वगुण जागृत नहीं हो सकते हैं। लेकिन सरल स्वभाव वाला व्यक्ति निर्मल चित रहता है तथा वह दूसरों को भी सुख देता है तथा स्वयं भी अपने सरल स्वभाव से सुखी रहता है, भले ही समस्याओं का सामना करना पड़े, लेकिन उसे यह निश्चित रहता है कि मेरा कार्य सत्य है।

क्षमा

संसार में सब धर्मों में क्षमा सबसे श्रेष्ठ गुण है। जो मनुष्य, अपमान से तिरस्कार अथवा गाली देने या धमकाने से कभी क्रोध नहीं करता, क्षमाशील बना रहता है, वही मनुष्य सब मनुष्यों में श्रेष्ठ कहा जाता है। क्षमाशील मनुष्य को ही वैकुण्ठ, यश तथा मोक्ष की प्राप्ति होती हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण ने क्षमा के विषय में युधिष्ठिर से इस प्रकार कहा – "क्षमा ही यश, दान, यज्ञ और मनोनिग्रह है। अहिंसा धर्म और इन्द्रियों का संयम क्षमा के ही स्वरूप हैं। क्षमा ही दया और क्षमा ही यज्ञ है।" महाभारतकार ने क्षमा का महत्व बताते हुए कहा है कि क्षमा पर जगत् टिका हुआ है, अतः जो ब्राह्मण क्षमावान् है वह देवता कहलाता है, वही सबसे श्रेष्ठ है। विदुर जी ने क्षमा की श्रेष्ठता बताते हुए धृतराष्ट्र से

टिप्पणी

कहा कि ''तात! समर्थ पुरुष के लिए सब जगह और सब समय में क्षमा के समान हितकारक और अत्यन्त श्रीसम्पन्न बनाने वाला उपाय दूसरा नहीं माना गया है। जो शक्तिहीन है, वह तो सब पर क्षमा करे, जो शक्तिमान है, वह भी धर्म के लिए क्षमा करें तथा जिसकी दृष्टि में अर्थ और अनर्थ दोनों समान हैं उसके लिए तो क्षमा सदा ही हितकारिणी होती है।

क्षमा की श्रेष्ठता बताते हुए युधिष्ठिर ने द्रौपदी से कहा कि ''सुशोभने! पुरुष को सभी आपत्तियों में क्षमा भाव रखना चाहिए। क्षमाशक्ति संपन्न पुरुष से ही समस्त प्राणियों का जीवन बताया गया है। क्षमा ब्रह्म है, क्षमा सत्य है, क्षमा भूत है, क्षमा भविष्य है, क्षमा तप है और क्षमा शौच है। क्षमा में ही सम्पूर्ण जगत् को धारण कर रखा है। जो मनुष्य यह जानता है कि क्षमा धर्म है। क्षमा यज्ञ है, क्षमा वेद है और क्षमा शास्त्र है, वह सब कुछ क्षमा करने के योग्य हो जाता है। क्षमाशील मनुष्य यज्ञवेत्ता, ब्रह्मवेत्ता और तपस्वी पुरुषों से भी ऊँचे–लोक प्राप्त करते हैं। क्रोधी मनुष्य अल्पज्ञ होता हैं। क्षमावान् मनुष्य विद्वान्, होते हैं। जब मनुष्य सब कुछ सहन कर लेता है तब वह ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है। जिन मनुष्यों का क्रोध क्षमाभाव से दबा रहता है, उन्हें सर्वोतम लोक प्राप्त होते है। अतः क्षमा सबसे उत्कृष्ट मानी गई है।

राजनैतिक (राजधर्म) मूल्य

सामाजिक व्यवस्था समाज में रहने वाले व्यक्तियों की मानसिक अवस्था पर निर्भर करती है, क्योंकि शासन–प्रशासन से लेकर समाज के हर क्षेत्र में व आधुनिक समाज के अन्दर या किसी भी कार्य को करने के लिये एक–दूसरे पर निर्भर और अपने आप पर निर्भर होना दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा है। सारे कार्य कोई एक व्यक्ति नहीं कर सकता है। उदाहरण के तौर पर जैसे शरीर के विभिन्न अवयवों का अपना–अपना महत्व है तथा उन सबकी एकात्मता और तालमेल से ही सुन्दर और स्वस्थ शरीर का निर्माण होता है, उसी प्रकार समाज के हर क्षेत्र के सुचारू रूप से संचालन और स्वस्थ प्रशासन (प्रिय शासन) के लिए कार्यकर्ता और नियोक्ता या प्रशासन के बीच सही तालमेल और अच्छे सम्बन्ध होना जरूरी है। राजा तथा प्रजा के अच्छे सम्बन्ध से ही श्रेष्ठ समाज का निर्माण हो सकता है। इसके लिए निश्चय ही प्रत्येक के जीवन में कुछ नैतिक मूल्यों का होना अत्यंत आवश्यक है।

एक अच्छी राजनीतिक सत्ता समाज में सुचारू प्रशासन व्यवस्था को स्थापित करती हैं। राज्य प्रणाली में समय–समय पर आवश्यक परिवर्तन होते रहते हैं। वर्तमान प्रजातन्त्र व्यवस्था में नैतिक मूल्यों के ह्रास ने स्वार्थपूर्ति के लिए असामाजिक तत्वों को जन्म दिया है। अव्यवस्था, असुरक्षा तथा अशान्ति बढ़ रही है। अपने राज्य को बढ़ाने के लिए सीमाओं का उल्लंघन होता रहता है। एक देश दूसरे को अपने अधीन करके गौरवान्वित महसूस करता है। चारों तरफ अनैतिकता का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, ऐसे समय में महाभारत महाकाव्य से हमें दिशा–निर्देश प्राप्त होता है जो कि इस प्रकार है–

महाभारत के शान्तिपर्व में वेदव्यास ने श्रीकृष्ण के द्वारा पितामह भीष्म के गुण एवं प्रभाव का वर्णन किया है।

टिप्पणी

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं 'हे तात, हे पृथ्वीनाथ! मैंने तीनों लोगों में सत्यवादी, एकमात्र कर्म में तत्पर, शूरवीर, महापराक्रमी तथा शरशय्या पर शयन करने वाले आप शान्तनुनन्दन भीष्म के अतिरिक्त दूसरे किसी प्राणी के विषय में ऐसा नहीं सुना है। जिसने शरीर के लिए स्वभाव सिद्ध मृत्यु को अपनी तपस्या से रोक दिया हो। सत्य, तप, दान और यज्ञ के अनुष्ठान में तथा वेद, धनुर्वेद तथा नीतिशास्त्र के ज्ञान, प्रजापालन कोमलतापूर्ण बर्ताव बाहर, भीतर की शुद्धि, मन एवं इन्द्रियों के संयम तथा सम्पूर्ण प्राणियों के हितसाधन में आपके समान मैंने अन्य महारथी के विषय में नहीं सुना है।

मनुष्येषु मनुष्येन्द्र न दृष्टो न च मे श्रुतः।
भवतो वा गुणैर्युक्तः पृथिव्यां पुरुषः कश्चित्।।

अतः हे भीष्मपितामह आपसे यह निवेदन है कि ये ज्येष्ठ पाण्डव अपने कुटुम्ब परिवार के वध से बहुत ही दुःखी हैं। आप इनका दुःख दूर करें। श्रीकृष्ण भीष्म को कहते हैं "हे महापुरुष, संसार में जो कोई संदेहग्रस्त विषय है, उसका समाधान करने वाला आपको छोड़कर दूसरा कोई नहीं है। अतः आप इन पाण्डवों को नीति का उपदेश देकर इन्हें सांत्वना दीजिए।"

भीष्म पितामह पाण्डवों को राजधर्म का उपदेश देते हुए राजा युधिष्ठिर से कहते हैं बेटा युधिष्ठिर। 'तुम सदा' पुरुषार्थ के लिए प्रयत्नशील रहना। पुरुषार्थ के बिना केवल प्रारब्ध राजाओं का प्रयोजन नहीं सिद्ध कर सकता। यद्यपि कार्य की सिद्धि में प्रारब्ध और पुरुषार्थ ये दोनों साधारणतः समान कारण माने गये हैं तथापि मैं पुरुषार्थ को प्रधान मानता हूँ, प्रारब्ध तो पहले से ही निश्चित है। भीष्म पितामह का पुरुषार्थ के प्रति विशेष दृष्टिकोण है। उनका कहना है कि मनुष्य को समय के अनुसार पुरुषार्थ करना चाहिए। उनका कहना है कि राजा का आरम्भिक कार्य पूरा न हो सका अथवा उसमें बाधा पड़ जाए तो भी उसे अपने मन में दुःख नहीं मानना चाहिए। अपने आप को पुरुषार्थ में लगाए रखना, यही राजाओं की सर्वोत्तम नीति है।

भीष्म पितामह ने राजा के लिए कहा है कि राजा को सत्यवादी होना चाहिए क्योंकि राजा को प्रजा बनाती है इसलिए राजा को सत्य के मार्ग पर चलकर प्रजा का दिल जीतना आवश्यक है। उनका कहना है कि सत्य पर चलने से ही समता, आत्मसंयम, क्षमा, लज्जा, धैर्य, अहिंसा, त्याग, दया, भावना, उपकार आदि गुणों का जीवन में समावेश हो जाता है। ये समस्त गुण शाश्वत होते है, जो नीति के अन्तर्गत ही माने जाते हैं। सत्य का पालन करने से वाणी में पवित्रता आती है। जिससे मानव का व्यवहार ठीक रहता है। भीष्म पितामह का कहना है कि सत्य पर ही धर्म आश्रित है। अतः राजा को सत्य का पालन करना चाहिए अगर राजा सत्य का पालन करता है तो प्रजा भी सत्य का पालन करती है, क्योंकि प्रजा राजा का अनुसरण करती है।

भीष्मपितामह ने युधिष्ठिर को बताया कि राजा को समय के अनुसार कठोरता एवं कोमलता का व्यवहार अपनी प्रजा के साथ करना चाहिए। जैसे वसन्त ऋतु का तेजस्वी सूर्य न तो अधिक ठंडक पहुंचाता है और न ही कड़ी धूप ही करता है। उसी प्रकार राजा

टिप्पणी

को भी प्रजा के साथ बर्ताव करना चाहिए। उनका कहना है कि राजा को व्यसनों का परित्याग कर देना चाहिए। जो सर्वहितकार्य हो उसे ही करना चाहिए। भीष्म पितामह का कहना है कि राजा को अपने सेवकों के साथ अधिक हँसी–मजाक नहीं करना चाहिए। इसके बारे में भीष्म पितामह का कहना है कि राजा से अधिक मेल–जोल करने से राजा के अन्दर के कारोबार का पता चलता है, जिससे सेवक राजा को अपमानजनक शब्द भी बोल सकते हैं। उनका दृष्टिकोण है कि किसी परिस्थिति में वे राजा की सारी बातें किसी को भी बता सकते हैं। अतः सेवक और राजा के सम्बन्ध कार्य के अनुसार होने चाहिएँ। वे अपनी मर्यादाओं में स्थिर नहीं रह सकते हैं और राजा की आज्ञा का उल्लंघन करने लगते हैं। अगर राजा किसी कार्य के लिए उन्हें भेजते हैं तो उन्हें संदेह होने लगता है। इस प्रकार वे राजा की त्रुटियों पर ध्यान देते हैं। सबके सामने कह डालते हैं, इसलिए अपनी गुप्त बातों पर ध्यान देना चाहिए, राजा के भोज्य पदार्थ को स्वयं भी खा लेते हैं और कार्यों में विघ्न डालते हैं। राजा के सामने जम्हाई लेते हैं, राजा के सामने झुकते हैं और राजा की वस्तुओं का प्रयोग करते हैं। वे परस्पर स्वार्थ साधन के निमित्त राजसभा में ही राजा के साथ विवाद करने लगते हैं।

भीष्म पितामह युधिष्ठिर को राजधर्म के बारे में कहते हैं कि हे युधिष्ठिर! राजा को सदा ही उद्योगशील रहना चाहिए तुम इस बात को अपने हृदय में धारण कर लो। भीष्म पितामह का कहना है कि जो संधि करने योग्य है उससे संधि करो और जो विरोध के पात्र हों उनका डटकर विरोध करो। भीष्म पितामह का कहना है कि राजा के सात अंग है – राजा, मन्त्री, मित्र, खजाना, देश, दुर्ग और सेना। जो इन सात अंगों से युक्त राज्य के विपरीत आचरण करे, वह शत्रु हो या मित्र वह बाहर करने के ही योग्य है। प्रजावर्ग को प्रसन्न रखना ही राजाओं का सनातन धर्म है तथा सत्य की रक्षा और व्यवहार की सरलता ही राजोचित कर्त्तव्य है।

भीष्म पितामह ने समझाया कि राजा को क्रोध नहीं करना चाहिए मन को वश में करना चाहिए। उनका कहना है कि जिसने क्रोध को जीत लिया है उसने शास्त्रों के सिद्धान्त का निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्त कर लिया है और जो धर्म अर्थ, काम तथा मोक्ष के प्रयत्न में निरन्तर लगा रहता है, जिसे तीनों वेदों का ज्ञान है एवं जो अपने गुप्त विचारों को दूसरे पर प्रकट नहीं होने देता वही राजा होने योग्य है। जिसके पास अपने भरण–पोषण का प्रबन्ध न हो, उसका पोषण करना राजा का कर्तव्य है। भीष्मपितामह का कहना है कि प्रजा को निर्भय रहना चाहिए। जैसे पुत्र अपने पिता के घर में निर्भीक होकर रहते हैं उसी प्रकार जिस राजा के राज्य में मनुष्य निर्भय होकर विचरते हैं वह सब राजाओं में श्रेष्ठ राजा है। जैसे समुद्र की यात्रा में टूटी हुई नौका त्याग दी जाती है, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह अहितकर उपदेश देने वाले आचार्य तथा रक्षा न कर सकने वाले राजा का त्याग कर दे।

भीष्म पितामह राज्य रक्षा का वर्णन करते हुए युधिष्ठिर से कहते हैं कि उद्योग ही राजधर्म का मूल है। देवराज इन्द्र ने उद्योग से ही अमृत प्राप्त किया, असुरों का संहार किया तथा उससे ही देव लोक और इहलोक में श्रेष्ठता प्राप्त की। जो राजा उद्योगहीन होता है, वह बुद्धिमान होने पर भी विषहीन सर्प के समान सदैव शत्रुओं के

द्वारा परास्त होता रहता है। बलवान कभी दुर्बल शत्रु की भी अवहेलना न करें, क्योंकि आग थोड़ी सी हो तो भी जला डालती है और विष थोड़ा सा हो तो भी मार डालता है।

टिप्पणी

भीष्म पितामह कहते हैं कि राजा को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। भीष्म पितामह युधिष्ठिर के ब्रह्मचर्य, धर्म और पवित्रता विषयक प्रश्न का उतर देते हुए कहते हैं कि मांस और मंदिरा का त्याग ब्रह्मचर्य से भी श्रेष्ठ है। वेदोक्त मर्यादा में स्थिर रहना ही परम धर्म है। मन और इन्द्रियों का संयम ही परम पवित्रता है। इसी भांति अन्य प्रश्नों के उत्तर में उन्होंने बतलाया कि प्राणदान से बढ़कर कोई दान नहीं सबको अभय देने वाला सब और से अभय हो जाता है। जो दूसरों को भय से छुड़ाता है, उसे न हिंसक पशु मारते हैं और न पिशाच अथवा राक्षस ही कष्ट देते हैं।

भीष्म पितामह का कहना है कि ब्रह्मचर्य के पालन से मानव के संकल्प में दृढ़ता आती है उसका मनोबल बढ़ता है और स्वभाव में एकाग्रता आती है। इसके साथ बौद्धिक योग्यताओं का विकास होता है। ब्रह्मचर्य से पवित्र और योगी जीवन बनता है।

भीष्म पितामह का कहना है कि परमार्थ से आत्मशुद्धि होती है, जिससे आत्मज्ञान प्राप्त होता है। आत्मज्ञान की प्राप्ति होने से समभाव पैदा होता है। जिससे ईश्वरत्व की प्राप्ति होती है। परमात्मज्ञान प्राप्त करके मनुष्य परम मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। उपर्युक्त राजधर्म एवं राजनीति का विश्लेषण कितना सटीक एव व्यापक हैं। भीष्म पितामह की इस नीति का अनुसरण किया जाए तो प्रजा की खुशहाली बढ़ेगी। प्रजा अपने को सुरक्षित समझेगी। देश में प्रसन्नता बढ़ेगी और देशवासियों के चेहरे से प्रसन्नता प्रकट होगी। यदि उच्च प्रशासनिक पदों पर आसीन लोगों में नैतिक मूल्यों की स्थापना की जाए और वे स्वयं भी इन मूल्यों को अपने जीवन का अंग बना लें, तो निश्चय ही वे कुशल प्रशासक बन सकते हैं और जनता में उनकी लोकप्रियता बढ़ सकती है। साथ ही अधीनस्थ लोगों के कार्य और व्यवहार में कुशलता और नैतिकता सहज ही लाई जा सकती है।

श्रद्धा

महाभारत में श्रद्धा को जीवन मूल के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। श्रद्धा एक हृदयगत पवित्र भाव या मानस संकल्प है जिससे किसी भी सत्कर्म की सिद्धि या पूर्णता सम्भव होती है। यज्ञ और दान का आधार भी श्रद्धा है। हमारी श्रद्धा कहां होनी चाहिए इसके उत्तर में साधारण शब्दों में बताया गया है कि श्रद्धा सनातन धर्म, वेद, देवता, ऋषिमुनि, गीता, गायत्री तीर्थ तथा भारतभूमि इन सबके प्रति हमारी श्रद्धा और विश्वास होना चाहिए।

वेद व्यास के अनुसार– श्रद्धा का सम्बन्ध पवित्रता (मन, वचन, कर्म) से है। उनके अनुसार मानसिक पवित्रता ही सात्विक पवित्रता है। यदि कोई पुरुष अश्रद्धा से अपवित्र मन से अन्न या दान देता है तो वह अपवित्र माना जाता है, श्रद्धाहीन माना जाता है।

वेदव्यास ने अश्रद्धा को सबसे बड़ा पाप बताया है यह मानसिक पाप है। इससे मुक्ति पाने के लिए वेदव्यास ने श्रद्धा में विश्वास एवं आस्था रखना बताया है। उदाहरण

के द्वारा उन्होंने समझाया है जैसे साँप अपनी पुरानी, केंचुल छोड़ देता है तथा नई धारण कर लेता है, उसी प्रकार श्रद्धालु पुरुष पाप का परित्याग कर सकता है।

टिप्पणी

दया

दया का महत्वपूर्ण स्थान है। धर्मात्मा मनुष्य सदा जीवों पर दया करते हैं। यहां तक कि संन्यासी लोग तो रास्ते में भी देख–देखकर बड़े ध्यान से चलते हैं कि कहीं कोई चींटी भी न दब जाये। महाभारत में दया के विषय में बताते हुए भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा कि "भारतनन्दन! जो समस्त प्राणियों पर दया करता है और क्रूरतारहित कर्मों में ही प्रवृत होता है, उसे सभी आश्रमों के सेवन का फल प्राप्त होता है।" जो बालकों और वृद्धों के प्रति भी दयापूर्ण व्यवहार करते हैं, उन्हें भी उतम फल प्राप्त होता है। राजा के लिए समस्त प्राणियों की रक्षा तथा उनके प्रति परम दया ही श्रेष्ठधर्म है।

दया की श्रेष्ठता बताते हुए भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा कि ''जो राजा प्रजापालन में तत्पर रह कर प्राणियों पर दया करता है, उसके इस व्यवहार को धर्मज्ञ पुरुष परम धर्म मानते हैं। दया से मानव को सुख, शान्ति की प्राप्ति होती है।

तप

महाभारत में तपस् शब्द का प्रयोग विविध अर्थों में पाया जाता है। अपने वर्णों व आश्रमों के लिए शास्त्र विहित कर्मों को सम्पन्न करने को तप कहा है। युधिष्ठिर को तप के बारे में भीम कहते हैं, हे राजन्! ऐसा हमने सुना है कि पृथ्वी का जो विधिपूर्वक पालन हमारे पूर्वजों ने किया है, वह भी तप ही है। कहने का भाव यह है कि जिस प्रकार सृष्टि अपने नियमों के अनुसार चलती है, उसी प्रकार पूर्वजों ने अपने नियमों का पालन किया है। वह भी एक तप ही है। महाभारत में भीम ने तप को स्वधर्म के पालन से भी अधिक महत्वपूर्ण बताते हुए कहा है कि क्षत्रिय तप द्वारा उन लोकों को नहीं प्राप्त कर सकता जिन्हें वह अपने किये हुए विहित युद्ध में विजय अथवा मृत्यु पाकर प्राप्त करता है।

तप क्या है? इसके बारे में भीष्मपर्व में अर्जुन श्रीकृष्ण से पूछते है। श्रीकृष्ण कहते हैं तप तीन प्रकार का होता है जो इस प्रकार हैं– तीन प्रकार की तपस्या को स्पष्ट करते हुए उसमें सात्विक, राजसिक, तामसिक, भावनाओं का स्पष्टीकरण भगवान् देते हैं।

1. शारीरिक तप

देवता, ब्राह्मण, गुरु व ज्ञानीजनों की अराधना अर्थात् सत्कार आदर करना, बाह्य शुद्धि, सरलता, पवित्रता ब्रह्मचर्य पालन एवं अहिंसा का व्रत पालन ये शारीरिक तप हैं।

2. वाणी तप

श्रीकृष्ण अर्जुन को बताते हुए वाणी के तप के बारे में कहते हैं, मीठे वचन, जो वाक्य सच्चे हैं, प्रिय हैं, हितकर हैं, ज्ञानयुक्त हैं, कल्याणकारी, हितकर वाक्य बोलना तथा प्रतिदिन श्रेष्ठ ग्रन्थों का अध्ययन करना वाणी का तप है।

3. मन का तप

मन के तप के बारे में श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं मन की प्रसन्नता, सौम्य भाव, मौन रखना, अपने विचारों भावों की पूर्णतः शुद्धि, गंभीरता आत्म संयम आदि ये सब मानसिक

तप है। जितना मन तपोमय है उतना मन सुंदर बन जाता है। इससे सकारात्मक भाव पैदा होते हैं।

टिप्पणी

इस प्रकार तप के तीन भागों को सात्विक, राजसिक और तामसिक कहा जाता है। जब तीनों के अन्दर भौतिक फल की इच्छा नहीं होती है, केवल ईश्वर अर्पण भाव एवं परम श्रद्धा से संपन्न हैं, वही सात्विक तप है। परन्तु जब तपस्या दम्भ पूर्वक सम्पन्न की जाती है तब वह अनिश्चित और क्षणिक तपस्या राजसी तपस्या है। जो तप कष्ट करके करना होता है, दुराग्रहपूर्वक और दूसरों के नाश के लिए होता है, वह तामस तपस्या मानी गई है अर्थात् जब मनुष्य दूसरे का सुख देख नहीं पाते हैं और दूसरे के सुख को देखते हुए जब दुःखी हो जाते हैं तो मन में कई प्रकार की दुराग्रहपूर्वक भावनाएं उत्पन्न होती हैं, उसका बुरा सोचते हैं कर भी देते हैं तो वह तपस्या तामसिक तपस्या कहलाती हैं।

इस प्रकार भगवान् ने तीनों तपों के बारे में श्रेष्ठ ज्ञान दिया हैं। इस तरह दूसरे हमें श्रेष्ठ तप की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित किया है। जिससे हम भी सुखी जीवन व्यतीत कर सकें और दूसरे भी। भौतिक लाभ की इच्छा न करने वाले तथा केवल परमेश्वर में प्रवृत मनुष्यों द्वारा दिव्य श्रद्धा से सम्पन्न इस प्रकार की तपस्या सात्त्विक तपस्या कहलाती है।

दान

महाभारत में दान को महत्वपूर्ण माना गया है, दान भी एक नैतिक मूल्य है। दान एक सामाजिक कर्त्तव्य माना गया है। भारतीय संस्कृति में बताया गया है कि दान अभाव एवं दुःखी, निर्धन, पराश्रित व्यक्ति की मानवीय भावना से प्रेरित होकर जब हम किसी वस्तु या धन के माध्यम से सहायता करते हैं तो भारतीय संस्कृति में उसे दान कहते हैं।

वेदव्यास का दान के विषय में कथन है कि मनुष्यों के लिए मात्र धन ही पुण्य का हेतु नहीं है। साधु, महात्मा, ऋषि, तपस्वी पुरुष बिना धन के ही, सुगमतापूर्वक संचित किये हुए शुद्ध संकल्प से जिस उत्तम फल की प्राप्ति कर लेते है, वैसा फल अनेक प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करने से प्राप्त नहीं होता है। यदि मनुष्य क्रोध करता है तो दान के फल को नष्ट कर देता है। अतः दान देते समय क्रोध नहीं करना चाहिए। यदि मनुष्य लोभ के कारण दान करता है या इच्छा रखता है तो वह व्यक्ति वैकुण्ठ में प्रवेश नहीं कर पाता है। इसका भाव यह है कि उसने दान का फल पहले ही प्राप्त कर लिया है। वेद व्यास का दृष्टिकोण है कि न्याय (सही रीति) से उपार्जित धन से निर्वाह के लिए एकत्र किए गये धन में से दान की सूक्ष्मता को जानने वाला महापुरुष दान एवं तपस्या के द्वारा स्वर्गीय लोकों को प्राप्त कर लेता है। वेदव्यास के अनुसार दान के तीन प्रकार हैं।

1. सात्विकदान

जो दान योग्य स्थान और समय देखकर, योग्य पात्र की, जरूरत के समय बदले की भावना न रख कर दिया गया दान सात्विक दान कहलाता है। जिससे देने वाले तथा लेने वाले को खुशी प्राप्त होती है।

टिप्पणी

2. राजसी दान

जो दान क्लेशपूर्वक उपकार की इच्छा से, प्रयोजन के फल को उद्देश्य में रखकर दिया जाता है वह राजसी दान कहलाता है।

3. तामसी दान

जो दान बिना सत्कार, अपवित्र स्थान, बिना स्नेह के, तिरस्कार पूर्वक, अयोग्य, कुपात्रों को किया जाता है, वह तामसी दान है।

जिससे पापकर्म बढ़ते हैं लेने पर भी और दान देने वाले पर भी क्योंकि कर्मों की गति बहुत ही गहन है। उदाहरण के तौर पर एक व्यक्ति गरीब है, उसकी स्थिति नाजुक है हमने उसे दस रुपये दिये, हमने सोचा पुण्य कर्म है लेकिन उस व्यक्ति ने चाकू खरीदा और किसी का कत्ल कर दिया तो उस पापकर्म का भागीदार देने वाला भी बन जाता है। इस प्रकार जाने अनजाने में पापकर्म हो जाते हैं। इसीलिए कहा गया है कि कलियुग में पात्र देखकर दान करो नहीं तो दान न करना अच्छा है। कुपात्र को दान देकर समाज में कुकर्म को बढ़ावा देने के बजाय दान न देना ही अच्छा है। वेदव्यास ने इन सभी दानों में गुप्तदान का अधिक महत्त्व बताया है।

गोदान

महाभारत में गौदान को महादान बताया गया है। गौदान करने से मनुष्य इहलोक तथा परलोक को प्राप्त कर लेता है। गौ प्राणियों की रक्षा करती है सबको सुख देती है इसके दान से सब पापों से मुक्ति मिलती है। गाय के निमित्त जो कुछ भी दिया जाता है वह कभी नष्ट नहीं होता। **गुरुजनो की सेवा**– भारतीय संस्कृति में गुरुजनों की सेवा तथा पूजा करना धर्म माना जाता है। **माता–पिता की सेवा, गुरुजनों की सेवा दीन–दुखियों की सेवा यह सेवा भाव भारतीय संस्कृति का विशेष अलंकार हैं। मानवता सेवा ही सच्ची सेवा है। महाभारतकार का कथन है कि जो माता–पिता अपनी संतान के लिए सदा यश–कीर्ति, ऐश्वर्य, संतान और धर्म की कामना करते रहते हैं, वही सुपुत्र इस प्रकार सदा कल्याण कामना करने वाले माता–पिता की आशा को सफल करते हैं। महाभारतकार का कथन जो माता–पिता गुरु की सेवा करते हैं। माता–पिता गुरु सदा पुत्र, शिष्य का हित चिन्तन करते हुए उन्हें धर्म के मार्ग पर ही तो जाने का प्रयत्न करते हैं।**

यज्ञ

भारतीय संस्कृति यज्ञ प्रधान संस्कृति है। मानव आदिकाल से ही शान्तिप्रिय रहा है। सुख–शान्ति के लिए मानव यज्ञ करता है जिससे परिवार समाज में शान्ति हो सके। लेकिन गृहस्थियों को भी यज्ञ करना चाहिए। महाभारत में बताया गया है कि सहज ही मानव यज्ञ कर सकता है, महाभारतकार के अनुसार यज्ञ करने से सुख, शान्ति की प्राप्ति होती है।

महाभारत के अनुसार – "यज्ञ वह प्रक्रिया है जिसमें सारे विकर्म नष्ट हो जाते हैं।''

टिप्पणी

ब्रह्मार्पण ब्रह्महविर ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिन।।

अर्थात् यही ज्ञान यज्ञ परमेश्वर को अर्पित होता है। इस यज्ञ में पांच विकार योग अग्नि से अग्नि में अर्पित होते हैं। यह यज्ञ स्वयं परब्रह्म (ब्रह्म में रहने वाले) परमात्मा के द्वारा रचा गया यज्ञ है। इस यज्ञ को ज्ञान यज्ञ कहते हैं। ज्ञान यज्ञ की साधना करने वाले को परमात्मा की प्राप्ति सहज ही हो जाती है क्योंकि वह ज्ञान के आधार पर सहज रूप से परमात्मा जैसा है, उस रूप को समझकर बताये गए नियमों के अनुसार परमात्मा याद करते हैं। इसलिए गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बताया है कि हे अर्जुन! द्रव्य (सामग्री) यज्ञ की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है। ज्ञान प्राप्त होने पर सम्पूर्ण कर्म ज्ञान में समाहित हो जाते हैं। अतः ज्ञानियों के पास जाकर उस ज्ञान को समझ, विनम्र भाव, सेवाभाव में सरलतापूर्वक प्रश्न करने से ज्ञानी ज्ञान का उपदेश देंगे।

श्री कृष्ण यज्ञ के बारे में अर्जुन को बताते हुए कहते हैं कि यज्ञ तीन प्रकार के होते हैं जो इस प्रकार हैं–

1. सात्विक यज्ञ

जो यज्ञ परमात्मा की बताई हुई विधि के अनुसार कर्तव्य समझकर फल की चाह ना रखने वाले पुरुषों द्वारा किया गया है वह सात्विक यज्ञ है।

2. राजसी यज्ञ

जो यज्ञ नाम, मान, शान के लिए किया जाता है वह राजसी यज्ञ है, इसमें प्रशंसा की आकांक्षा रहती है।

3. तापसी यज्ञ

जो विधि रहित बिना श्रद्धा के किया जाता है वह तामसी यज्ञ है। यह अनुष्ठान इच्छा के बिना अन्न से रहित बिना दक्षिणा के, समर्पण रहित किया जाता है।

इस प्रकार यज्ञ के भिन्न–भिन्न रूपों का वर्णन किया गया है, यह बताया गया है कि सात्विक यज्ञ करना चाहिए जिससे सुख, शान्ति की प्राप्ति स्वयं को भी मिले तथा दूसरों को भी मिले। गीता में बताया गया है कि यज्ञ से ज्ञान की प्राप्ति होती है और मन की स्थिति भी परिवर्तन वाली होती है। इसके लिए बताया गया है कि कर्म करते हुए कर्मफल में आसक्ति न रखना। दूसरी बात यह बताई है संयमित मन और बुद्धि से शरीर निर्वाह अर्थ कार्य करना परमात्मा से सर्व प्राप्ति का अनुभव करना है। आशारहित, ईर्ष्यारहित, संतुष्ट सिद्धि, असिद्धि में समान रहना।

श्रीकृष्ण ने द्रव्ययज्ञ की अपेक्षा ज्ञान यज्ञ का महत्व अधिक बताया है। उनका कहना है कि जिस प्रकार द्रव्य यज्ञ में हर प्रकार के पदार्थों को निःस्वार्थ भाव से सेवा में लगाते हैं अर्थात् यज्ञ के अन्त में सम्पूर्ण सामग्री डालते है, यज्ञ को सम्पन्न करते हैं, इसी प्रकार ज्ञान में अपने आप को आत्मा समझकर परमात्मनुभूति करना, ज्ञान को समझकर पांच विकारों को स्वाहा करना। इसलिए श्री कृष्ण ने ज्ञानयज्ञ को श्रेष्ठ बताया है।

टिप्पणी

आध्यात्मिक मूल्य

भारतीय संस्कृति की जड़े प्राचीन काल से ही आध्यात्मिक रही हैं। आध्यात्मिकता मनुष्य की अन्तर्निहित चेतना के मूल स्रोत का अनुभव कराकर जीवन में दिव्यगुणों और नैतिक मूल्यों को जागृत करती है। आध्यात्मिक मूल्य ही व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान की कुंजी है क्योंकि यह स्वयं के यथार्थ अस्तित्व का अनुभव कराकर मन को समस्या उत्पन्न करने वाली बुराईयों से मुक्त करती है। जीवन में सकारात्मक चिंतन और दृष्टिकोण का विकास करके मनुष्य को कर्म एवं कर्तव्य के प्रति जागरूक, कर्मठ और सत्यनिष्ठ बनाती है। जीवन में सत्यता, प्रेम, सहानुभूति इत्यादि मानवीय गुणों का विकास होता है जिससे मानवीय सम्बन्ध श्रेष्ठ बनते है। आध्यात्मिक ज्ञान सर्व धर्मों के ज्ञान का सार तत्व है। वर्तमान संसार राजनीतिक एवं दार्शनिक विचारधाराओं में बंटा हुआ है और संसार में समस्या बढ़ती जा रही है। प्रत्येक विचारधारा समय के अनुसार बदल जाती है। इसलिए वह पूर्णतः सत्य नहीं होती है। यही वैचारिकता कई प्रश्नचिह्न उत्पन्न करती है। परन्तु आध्यात्मिक ज्ञान हमें संसार के और स्वयं के बारे में एक सार्वभौमिक सत्य ज्ञान का अनुभव कराता है। सत्य को समझने की शक्ति देता है। इससे सभी मत–मतान्तर समाप्त हो सकते हैं। इसलिए आध्यात्मिकता मानव को देहभाव और इस पर आधारित धार्मिक, सांस्कृतिक एवं भिन्नता की सीमाओं से ऊपर उठाकर एक दैवीय संस्कृति की पुर्नस्थापना का मार्ग प्रशस्त करता है।

''मनुष्य सदैव उच्चतर लक्ष्य की और उन्मुख रहा है। वह जितना आगे बढ़ा है उसका चरम लक्ष्य व्यापक, गहन, विस्तृत आंतरिक और सूक्ष्म हो गया है। वह भौतिक मूल्यों का अतिक्रमण करके आध्यात्मिक परम श्रेयस की ओर अग्रसर हुआ है।'' महाभारत के अनुसार– ''आत्म तत्व को जानना और परम सत्य परमात्मा को पहचानना यही आध्यात्मिक ज्ञान है और जो इसके विपरीत है, वह सब अज्ञान है ''इस प्रकार आध्यात्मिक शक्ति से परमात्मा की प्राप्ति होती है।

ईश्वर

प्राचीन काल से हम धर्म स्थापकों, धर्म ग्रंथों, धर्मपिताओं, दर्शनों आदि के माध्यम से ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग तलाश करते रहे है। इसमें से कुछ धर्म ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं और कुछ मत ईश्वर के अस्तित्व को नकारते हैं। सामान्य विवेक कहता है कि परमात्मा है क्योंकि यह सृष्टि है इसका संचालक जरूर होगा। इसलिए आस्तिकों के सामने ईश्वर का विषय गहन श्रद्धा व विश्वास का रहा हैं। जब चारों तरफ नैतिकता का ह्रास होते हुए देखते है तो तब मानव के अन्दर की नैतिक चेतना जागृत होती है, सत्य–असत्य को जानने के बारे।

प्रायः देखा गया है कि ईश्वर के उद्‌गम उसके स्वरूप और उसे पाने की विधियों में भले अंतर हो, लेकिन एक बात सभी ईश्वरवादी धर्मों में समान रूप से पाई जाती है कि ईश्वर ही सत्य है, कल्याणकारी है, मार्गदर्शक है, एक वही बुराईयों व दुःखों से रक्षा कर सकता है। ये ऐसे ''सार्वभौमिक मानक'' हैं।

इसका भाव यह है कि परमात्मा है तथा उसके आने का भी समय होता है, उसका रूप भी है, रहने का स्थान भी हैं। इसका विवेचन ग्रन्थों एक महाकाव्य में दिया गया है।

टिप्पणी

महाभारत के भीष्मपर्व (श्रीमद्भगवदगीता) में अर्जुन भगवान् से कहते हैं– हे परमात्मा, तुम यह ज्ञानकर्म पुनः कब बताओगे। इस पर भगवान् अपने इस सृष्टि पर आने तथा ज्ञान देने के लिए कहते है कि जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती हैं, तब मैं आत्माओं को गुणों से सम्पन्न बनाने के लिए इस धरा पर अवतरित होता हूं। भाव यह कि परमात्मा की ज्योति सारे संसार से अज्ञान अंधकार को दूर करती है। जीव–आत्मायें उसको बुद्धि से याद करते हैं। इस प्रकार परमात्मा ने अपने दिव्य, अलौकिक जन्म के बारे में बताया है तथा अपना निवास स्थान बताया है। इससे यही प्रमाणित होता है कि परमात्मा है तथा जब धर्म की अति ग्लानि होती है तब वे पुनः ज्ञान देने के लिए इस सृष्टि पर अवतरित होते हैं। इसलिए गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है कि हे अर्जुन! ये ज्ञान मैंने पहले दिया था और पुनः फिर तुझे सुना रहा हूँ। अतः परमात्मा नैतिक मूल्यों के प्राप्त करने का स्रोत है। एक ज्योति पुंज है।

आत्मा

मानव जीवन इस धरा पर श्रेष्ठ जीवन है। मानव सदैव अपने बारे में, सृष्टि के बारे में जानने को इच्छुक रहता है कि वास्तव में वह क्या है ''मैं'' यह शरीर हूँ या कुछ और हूँ।

श्रीमद्भगवद् गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को युद्ध के मैदान में आत्मा के बारे में उपदेश देते हुए कहते हैं हे अर्जुन! ऐसा कभी नहीं हुआ है कि तुम नही हो अथवा समस्त राजा न रहे हों और न ऐसा है कि भविष्य में हम लोग नहीं रहेंगे। भाव यह है कि प्रत्येक जीव में एक व्यष्टि आत्मा है वह अपना शरीर बदलता है। जिस प्रकार शरीरधारी आत्मा वर्तमान में बाल्यावस्था से तरूणावस्था तथा फिर वृद्धावस्था में निरन्तर अग्रसर रहता है, उसी प्रकार मृत्यु होने पर आत्मा दूसरे शरीर में चली जाती है। अतः हे अर्जुन! न भीष्म, न ही द्रोण के लिए शोक करने का कोई कारण था। अपितु तुझे प्रसन्न होना चाहिए था कि वे अपने पुराने शरीरों को बदलकर नये शरीर ग्रहण करेंगे और इस तरह वे नई शक्ति प्राप्त करेंगे। श्रीकृष्ण के कहने का भाव यह है कि आत्मा, अजर, अमर अविनाशी है, एक शक्ति है जो शरीर का संचालन करती है। इस प्रकार हे अर्जुन! तुम सभी को आत्मा देखो आत्मा ही सारे शरीर को प्रकाशित करती है। जो यह एक अणु के समान है। न इस आत्मा को कोई हथियार काट सकता है तथा न ही अग्नि जला सकती है इस प्रकार प्रकृति तथा आत्मा अनादि अविनाशी है, जब आत्मा शरीर में प्रवेश करती है तभी सतोगुण, रजो गुण भी उत्पन्न होते हैं। आत्मा परमधाम में गुणातीत स्थिति में रहती है। आत्मा, प्रकृति के सम्पर्क में आकर कर्म करती है। गुणों के प्रभाव से ही जीवात्मा को ऊँच या नीच जन्म मिलता है। जीवात्मा तीन प्रकार के गुण धारण करती है– सत्, रज, तम। इस प्रकार श्रीकृष्ण अर्जुन को आत्मा का ज्ञान देते हैं और कहते हैं तुम इन्हें शरीर नहीं समझों आत्मा समझो आत्म भाव से देखो। अगर इसी आत्मभाव के मूल्य को समझा

जाए तो सम्पूर्ण विश्व में सुख शान्ति हो सकती है। वस्तुतः नैतिक मूल्यों को जीवन में धारण करने का स्रोत आत्मतत्त्व ही है।

टिप्पणी

आत्मसंयम

आत्म संयम को सबसे बड़ा धर्म कहा गया है। आत्म संयम ही परम कल्याण का साधक है। जो मनुष्य इस संसार में आत्म संयम से सम्पन्न है वही दान, क्षमता और सब प्रकार की सिद्धियों का यथार्थ लाभ प्राप्त करता है। आत्म संयम, आत्म कल्याण का पवित्र एवं उत्तम साधन है। आत्मा की प्रकृति के ऊपर शरीर की प्रकृति निर्भर करती है। यदि आत्मा के ऊपर हमारा संयम है तो हम सन्तुष्ट व प्रसन्न रहते हैं क्योंकि आत्मभाव से एक दूसरे से व्यवहार करते है तो आत्म भाव पैदा होता है जिससे मन पर संयम रहता है। यही आत्मभाव रखने से आत्म उन्नति होती है। मनुष्य दुर्गुणों से मुक्त रहता है।

संसार में संयम ही सुखकारी है। संयमी मनुष्य से सबको स्नेह रहता है और वे उसका सम्मान करते हैं। असंयमी पुरुषों से सदा भय बना रहता है। इसलिए संयम की श्रेष्ठता बताते हुए विदुर जी ने दुर्योधन से कहा कि ''सिद्धान्त के जानने वाले वृद्ध पुरुष कहते हैं कि इस संसार में संयम ही कल्याण का परम साधन है। ब्राह्मण के लिए तो विशेष रूप से वही सनातन धर्म है। संयम तेज की वृद्धि करता है। संयम पवित्र एवं उत्तम साधन है। आत्मा की पवित्रता, यह आत्म संयमी पुरुष का लक्षण है। युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, द्रोणाचार्य, भीष्म, विदुर, कुन्ती, गान्धारी आदि भारतीय संस्कृति में हीरे के समान आत्म संयम के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। महाभारत में बताया गया है कि जिसने मन और इन्द्रियों का दमन (जीत लिया) कर दिया है, उसमें गुरुजनों के प्रति आदर का भाव व समस्त प्राणियों के प्रति दया उत्पन्न हो जाती है।

भीष्म पितामह ने संयम की विशेषता बताते हुए कहा है कि ''संयम'' से तेज की वृद्धि होती है। संयम पवित्र साधन है। संयम से पापरहित हुआ व्यक्ति तेजस्वी पुरुष परमपद को प्राप्त कर लेता है। उनका कहना है कि संयम से अपने शुद्ध कर्मो की यथावत् सिद्धि प्राप्त होती है, संयम उसके लिए दान, यज्ञ, और स्वाध्याय से भी बढ़कर है। इस प्रकार भीष्म पितामह ने संयम को पवित्र बताया है, पवित्रता से उनका भाव शुद्ध संकल्पों से हैं। यदि इस संयम पर ध्यान दिया जाए तो वर्तमान में मानसिक अपवित्रता को समाप्त किया जा सकता है।

संयम के बारे में श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं कि वह अपनी इन्द्रियों को आत्मतुष्टि में न करके भगवान् की सेवा में लगाये। अपनी इन्द्रियों को योगी भगवान् की सेवा में लगाए रखें जिस प्रकार कछुवा अपने अंगों को संकुचित करके खोल कर भीतर कर लेता है, उसी तरह जो मनुष्य इंद्रियों को इन्द्रियविषयों से खींच लेता है, वह पूर्ण चेतना में दृढ़तापूर्वक स्थित होता है। जिससे उसकी चेतना स्थिर हो जाती है।

कर्म

क्रिया व प्रतिक्रिया के नियम को प्रायः कर्म के नियम के रूप में जाना जाता है। इसके अनुसार प्रत्येक क्रिया के लिए एक समान प्रतिक्रिया होती है। हम जो दूसरे को देते

है दूसरे व्यक्ति उसी मात्रा में हमें वापस लौटाते हैं। अगर हम दूसरों को प्रसन्नता प्रदान करेंगे तो हमें प्रसन्नता ही प्राप्त होगी। दुःख के साथ भी ऐसा ही होता है। इसलिए हम अपने कर्मों के परिणामों से न तो बच सकते हैं और न ही कहीं भाग सकते हैं। कर्म का नियम बहुत गहन है परन्तु यदि इसे गहराई से समझा जाए तो यह हमें उपयोगी अंतर्दृष्टि प्रदान करते हुए प्रत्येक विचार शब्द तथा कर्म के प्रति जागरूक कर सकता है।

कर्म हमारे मन में विचार के रूप में उत्पन्न होते हैं। विचार ही कर्म का बीज है। जैसा विचार होता है, वैसा ही परिणाम होता है। विचार कर्मों की तरह स्पंदन प्रसारित करते हैं और वातावरण को प्रभावित करते हैं। ये स्पंद ही सूक्ष्म कर्म कहलाते हैं।

भारतीय दर्शन की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि सत्य हमें पथ पर आगे बढ़ने हेतु प्रेरणा देता है। जब मानव किसी दुःख से पीड़ित होकर कर्म–पथ से भ्रष्ट हो जाता है तब कोई न कोई मनीषी (कृष्ण, व्यास, अन्य महर्षि) उस कर्म–भ्रष्ट मानव को सन्मार्ग पर लाने हेतु दार्शनिक उपदेशों का आश्रय देते हैं। महाभारत, गीता इसके प्रमाण हैं। प्रारम्भ में जहां श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्म के बारे में बताते हुए कहते हैं कि कौन से कर्म करने चाहिए कौन से कर्म नहीं करने चाहिए। इनके बारे में तुम्हें बताता हूं जो इस प्रकार हैं–

1. **सात्विक कर्म**– जो कर्म परमात्मा की आज्ञा अर्थात् उनके मत के अनुसार कर्मफल से रहित, बिना राग द्वेष से किया जाता है वह सात्विक कार्य है।
2. **राजस कर्म**– जो कर्म बहुत परिश्रम से फल की इच्छा से व अहंकार युक्त होकर किये जाते हैं, वह राजसी कर्म है।
3. **तामसिक कर्म**– जो कर्म परिणाम हानि, हिंसा व सामर्थ्य को न विचार करके केवल अज्ञान से आरंभ किया जाता है, वह तामसी कर्म है।

इस प्रकार श्री कृष्ण ने कर्मों के तीनों स्तरों के बारे में बताया है और हमें सात्त्विक कर्म करने की प्रेरणा मिलती है।

त्याग

भारतीय संस्कृति में त्याग का बहुत महत्व है। त्याग से ही मानव श्रेष्ठ पद को प्राप्त करता है। श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय में श्रीकृष्ण अर्जुन को त्याग के बारे में बताते हुए कहते हैं – हे पार्थ! इस जगत् में भिन्न–भिन्न प्रकार का त्याग है इसके बारे में तुम्हें बताता हूं। उनका कहना है कि सभी प्रकार के सकाम कर्म दोषयुक्त हैं उन्हें त्याग देना चाहिए। कर्मों के फल का त्याग ही वास्तविक त्याग है। त्याग के बारे में भगवान् का कहना है कि भौतिक इच्छा पर आधारित कर्मों के परित्याग को विद्वान् लोग संन्यास कहते हैं और समस्त कर्मों के फल–त्याग को बुद्धिमान लोग त्याग कहते हैं। इसका भाव यह कि कर्मफल की आकांक्षा से किए गए कर्म का त्याग कर देना चाहिए। लेकिन जिन कर्मों से उच्च आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त हो, उनका परित्याग नहीं करना चाहिए। यह भगवद्गीता का उपदेश है।

टिप्पणी

श्रीकृष्ण त्याग के बारे में कहते हैं कि त्याग तीन प्रकार का है जो इस प्रकार हैं–

1. **सात्विक त्याग**– निर्धारित कर्मों को कर्तव्य समझ कर करना, निस्वार्थ भाव से आसक्ति व फल का त्याग करना ही सात्विक त्याग है। भाव यह है कि जीवन में जितने सारे यज्ञ भौतिक उन्नति के लिए हैं, उनका परित्याग करना चाहिए। लेकिन जिन यज्ञों से मनुष्य का अस्तित्व शुद्ध हो और जो आध्यात्मिक स्तर तक उठाने वाले हों, उनका त्याग नहीं करना चाहिए।
2. **राजसी त्याग**– जो कर्म को दुख समझ कर शारीरिक कष्ट के भय से त्याग किया जाए वह मध्यम श्रेणी का रजोगुणी त्याग है। ऐसा करने से कभी त्याग का उच्चफल प्राप्त नहीं होता। राजसी कर्म का फल सदैव दुखद होता है। यदि कोई व्यक्ति इस भाव से कर्म त्याग करता है, तो उसे त्याग का फल नहीं मिल पाता।
3. **तामसी त्याग**– यदि कोई मोह वश, अपने नियत कर्मों का परित्याग कर देता है, तो ऐसे त्याग को तामसी त्याग कहा जाता है। तात्पर्य यह है जो कार्य भौतिक सन्तुष्टि के लिए किया जाता है उसे अवश्य ही त्याग दे, लेकिन जिन कार्यों से आध्यात्मिक उन्नति हो, जैसे भगवान् के लिए भोजन बनाना, भगवान् को भोग अर्पित करना, फिर प्रसाद ग्रहण करना, उसकी महिमा करना आदि हैं वे अत्याज्य हैं।

रामायण और महाभारत का तुलनात्मक अध्ययन

प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में वाल्मीकि आदि कवि और उनकी कृति रामायण आदि महाकाव्य के रूप में तो महाभारत विशाल इतिहास ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध है। तमसा के तट पर जाते हुए व्याध द्वारा मारे गये क्रौंच पक्षी के वियोग में विलाप करने वाली क्रौंची के करुण क्रन्दन से वाल्मीकि का शोक शापात्मक श्लोक के रूप में फूट पड़ा–

मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।

यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।।

यही अनुष्टुप् छंद और वाल्मीकि के मुख से निःसृत काव्यधारा आगामी काव्य – सरणि का उद्गम स्थल बनी। रामायण 7 काण्डों, पांच सौ सर्गों में विभक्त 24,000 श्लोकों की चतुर्विंशतिसाहस्त्री संहिता है, जिसमें जननायक मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र का काव्यमय वर्णन है। यह न केवल महाकाव्य है अपितु इसे संहिता, इतिहास, आख्यान, आर्षकाव्य, उपजीव्य काव्य और विकसनशील महाकाव्य के रूप में भी जाना जाता है। रामायण में समाज में व्याप्त बुराइयों, विकृतियों, सामन्तीय व्यवस्था की दुर्बलताओं का चित्रण करते हुए उन पर मानवीय विजय का आदर्श स्थापित किया गया है। हर सामाजिक, पारिवारिक एवं राष्ट्रीय चरित्र का सर्वोच्च आदर्श इसमें होने से ही यह ग्रन्थ युगों युगों तक महनीय एवं प्रेरणा स्रोत बन सका। डॉ. बलदेव उपाध्याय ने इसे गृहस्थाश्रम का महाकाव्य कहा है क्योंकि इसमें भारतीय गार्हस्थ्य

जीवन का समुज्ज्वल चित्रण मिलता हैं। एक गृहस्थ जीवन से सम्बन्ध रखने वाले माता–पिता, भाई, मित्र, पत्नी, सेवक तथा अन्य परिजन सभी का चरित्र आदर्शपूर्ण एवं भारतीय जीवन का प्रतीक है। डॉ. वचनदेव कुमार का कथन है कि ''इस महाकाव्य में भारत के महोच्च परिवार की त्याग कथा वर्णित है। पिता चक्रवर्ती सम्राट् दशरथ का पुत्र स्नेह के लिये तन त्याग, पुरुषोत्तम राम का पिता दशरथ एवं माता कैकेयी की इच्छा पूर्ति के लिये गृह–त्याग, पत्नी सीता द्वारा राजसी सुखों का त्याग तथा भाई भरत का अग्रज श्री राम के लिये राज्य त्याग स्नेह के कारण सम्पन्न हो पाया है। भारतीय संस्कृति के मूलाधार त्याग की उज्ज्वल गाथा है – रामायण, ऐसा निः संकोच कहा जा सकता है।''

दूसरी ओर महाभारत विश्व भर के साहित्य में सबसे विशालकाय महाकाव्य है। यह केवल दीर्घ कलेवर के कारण ही नहीं अपितु विषय वस्तु, चरित्र–चित्रण, नैतिक मूल्य, आदर्श, धर्म, राजनीति आचारादि की दृष्टि से भी संपूर्ण साहित्य की यह अमूल्य धरोहर है। यह हमारी परम्पराओं, सांस्कृतिक उपलब्धियों का विशद इतिहास प्रस्तुत करता है। विषयवस्तु की विविधता एवं विपुलता के कारण इसे भारतीय संस्कृति का विश्व कोष कहा जाता है। आख्यानों व उपाख्यानों का तो यह भंडार ही है। इसी ने विश्व को श्रीमद्भगवद्गीता का जैसा धर्म, दर्शन एवं अध्यात्म का दुर्लभ ग्रन्थ दिया है।

रामायण और महाभारत की उपजीव्यता

रामायण और महाभारत हमारी राष्ट्रीय चेतना एवं संस्कृति के परिचायक ऐसे बृहद् आकार ग्रन्थ हैं जिनसे परवर्ती युग के साहित्यकारों ने शताब्दियों तक स्फूर्ति और प्रेरणा ग्रहण की एवं उससे उनका रचना संसार अनुप्राणित रहा। इसीलिये इन्हें उपजीव्य काव्य कहा जाता है। अवान्तरकालीन समग्र भारतीय साहित्य पर इनका व्यापक प्रभाव पड़ा है। न केवल संस्कृत अपितु हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य के भी ये प्रेरणास्रोत रहे हैं। संस्कृत का तो कोई भी कवि ऐसा नहीं है जिस पर इन दोनों ग्रन्थों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव न पड़ा हो। न केवल विषय वस्तु या कथा की दृष्टि से ही ये परवर्ती साहित्य के मूल स्रोत रहे अपितु लौकिक संस्कृत साहित्य में काव्य का जो विकास हुआ, उसके भी ये मुख्य स्रोत रहे। छंदों का स्वरूप, महाकाव्य की अवधारणा, रस और अलंकारों के मानदंड इन्हीं दोनों महनीय ग्रन्थों की देन हैं। ऋषियों द्वारा प्रणीत ये दोनों आर्ष काव्य युगों – युगों तक भारतीय मनीषा को आलोड़ित, प्रकाशित एवं समृद्ध करने की सामर्थ्य रखते हैं।

महाभारत की उपजीव्यता

महाभारत के विषय में इसकी व्यापकता के विषय में कहा गया है, उससे स्वतः उसकी उपजीव्यता प्रमाणित होती है– **धर्मे च अर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।**

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।।
इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः।
इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते।।

टिप्पणी

भारतीय संस्कृति के इस विश्वकोष में संघर्ष संकुल भारतीय जीवन की यथार्थ कथा को कौरव–पांडव युद्ध कथा के माध्यम से दर्शाया गया है, जिसमें दो जीवन मूल्यों का चित्र उपस्थित करते हुए युगीन चेतना एवं विचार धाराओं को समेटने का महत् प्रयास किया गया है। समस्त परवर्ती साहित्य किसी न किसी रूप में इसका 'ऋणी है। इसीलिये, कहा जाता है कि **'यन्न भारते तन्न भारते।'**

संस्कृत का विश्वविश्रुत श्रेष्ठ नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' महाभारत के शाकुन्तलोपाख्यान पर आधारित है। भास के छह रूपक, भारवि का किरातार्जुनीय, भट्टनारायण का वेणीसंहार, राजशेखर का बालभारत, माघ का शिशुपालवध, श्रीहर्ष का नैषधीयचरित, त्रिविक्रमभट्ट का नलचम्पू जैसी प्रसिद्ध रचनाएं महाभारत को उपजीव्य बनाकर ही लिखी गयी। महाभारत के किसी कथांश या चरित्र या नीति वर्णन या आख्यान को लेकर भारतीय भाषाओं के अनेक साहित्यकारों ने सरस्वती के कोष को समृद्ध किया।

महाभारत रचयिता

महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास है, जो पराशर ऋषि तथा सत्यवती के पुत्र थे। इनका नाम कृष्णद्वैपायन भी है क्योंकि इनका जन्म एक द्वीप में हुआ था और इनका वर्ण कृष्ण था। ये ही अठारह पुराणों के रचयिता भी हैं। इन्होंने वेदों का विभाजन किया था। **विव्यास वेदान् यस्मात् स तस्मात् व्यास इति स्मृतः।** इसीलिये ये वेदव्यास कहलाए। ये स्वयं महाभारत के एक पात्र भी हैं और धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर इनकी ही नियोगज संतानें हैं। महाभारत में उसके रचयिता के विषय में कहा गया है –

त्रिभिर्वः सदोत्थाय कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमुत्तमम्।।

कृष्णद्वैपायन मुनि ने तीन वर्षों तक निरन्तर जागते रहकर महाभारत नामक आख्यान की रचना की। कुछ भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि महाभारत एक व्यक्ति की रचना नहीं है। लेकिन यह निश्चित है ऐसी कृति व्यास जैसे मेधा दृष्टि सम्पन्न प्रज्ञापुरूष की लेखनी से ही निःसृत हो सकती है। यह संभव है कि बाद के कवियों ने उसमें क्षेपक और प्रक्षिप्त अंश जोड़कर उसे विशाल आकार दे दिया हो।

विकास के तीन क्रमिक स्वरूप

महाभारत के रचयिता वेदव्यास हैं किंतु इसकी रचना एक बार में ही नहीं हुई है। प्रारम्भ में इसका स्वरूप संक्षिप्त एवं लघु था। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर विद्वानों का अनुमान है कि इसका तीन बार परिवर्धन व संशोधन किया गया और इसके वर्तमान स्वरूप में आने में कई शताब्दियां लगी। यह जय, भारत एवं महाभारत इन तीन सोपानों में विकसित हुआ।

जय– यह पहला संस्करण था और मूल महाभारत यही है जो व्यास ने लिखी। महाभारत में ही इसे जयसंहिता कहा गया है–

टिप्पणी

नारायणं नमस्कृत्य नरं चौव नरोत्तमम्।

देवी सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत।।

जय नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यं विजिगीषुणा।

महर्षि व्यास ने जय संहिता की रचना 8800 श्लोकों में की थी, जिसका प्रमाण महाभारत में ही मिलता है–

अष्टौ श्लोकसहस्त्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च।

अहं वेत्ति शुको वेत्ति संजयो वेत्ति वा न वा।।

व्यास ने अपनी यह रचना अपने शिष्य वैशंपायन को सुनाई। वैशंपायन ने राजा जनमेजय के नागयज्ञ के अवसर पर इस कथा का प्रवचन किया। जनमेजय ने जो शंकाएं या प्रश्न किये वे भी इसमें जोड़ दिये गये, इस प्रकार जय संहिता को विस्तृत रूप मिला और वह 24000 श्लोक वाला भारत बन गया।

भारत– **चतुर्विंशतिसाहस्री चक्रे भारतसंहिताम्।**

उपारख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः।।

भारत संस्करण में उपाख्यानों का समावेश नहीं किया गया था।

महाभारत – महाभारत का अंतिम संस्करण जिसमें 1 लाख श्लोक थे तब बना जब सौति ने नैमिषारण्य में शौनकादि ऋषियों को महाभारत सुनाया। तपस्वियों व अन्य श्रोताओं द्वारा उपस्थित प्रश्नों व उनके समाधानों से इसके कलेवर में वृद्धि हो गई। यह संस्करण उपाख्यानों से युक्त था।

इदं शतसहस्रं तु लोकानां पुण्यकर्मणाख्या।

उपाख्यानैः सह ज्ञेयमाद्यं भारतमुत्तमम।।

सौति ने इसमें हरिवंश नामक एक बृहत् परिशिष्ट भी जोड़ दिया। भारवृद्धि एवं महत्त्व वृद्धि हो जाने से इसे अब महाभारत कहा जाने लगा–

महत्त्वाद् भारवत्वाच्च महाभारतमुच्यते।

कुछ विद्वान् महाभारत के विकास के दो ही चरण स्वीकार करते हैं व 'जय' को 'भारत' से अलग नहीं मानते और 8800 श्लोकों को कूट पद्य मानते हैं। इसका विकास दो चरणों में हुआ हो या तीन चरणों में, यह तो निश्चित है कि यह क्रमिक विकास का परिणाम है, शतसाहस्री संहिता अनेक वर्षों में जाकर विकसित हुई है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. वानप्रस्थाः कस्मात् शरीराणि उद्वहन्ते?

   (क) दम्भात् (ख) रजोयोगात्

   (ग) सत्त्वयोगात् (घ) लब्धविश्रामात्

2. वानप्रस्थविधिना मुनयः कीदृशान् लोकान् जयेयुः?

   (क) परिव्राजकान् (ख) दुर्जयान्

   (ग) सूर्यान् (घ) नियतान्

2.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

टिप्पणी

1. (ग)
2. (ख)

2.5 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत सर्वप्रथम आपने महाभारत के शान्ति पर्व के अन्तर्गत एक सौ ब्यानवेवें अध्याय के मूल संस्कृत पाठ्यांश का सानुवाद अध्ययन किया। अध्याय का प्रारंभ तीन गद्यांशों से हुआ। ये तीनों गद्यांश तृतीय आश्रम 'वानप्रस्थ' के व्यवहार को प्रकाशित करते हैं। वानप्रस्थ आश्रम की जीवन शैली जिस वैराग्यमय एवं तपोमय जीवन का दर्शन कराती है उससे तितिक्षा के स्वरूप और महत्त्व को पहचाना जा सकता है। इसी अध्याय में भारद्वाज मुनि के प्रश्न के उत्तर में भृगु ऋषि एक ऐसे पुण्यलोक का परिचय देते हैं जो अत्यन्त पवित्र व कल्याणकारी है। इस वर्णन के अध्ययन से पवित्र आचरण की शिक्षा ग्रहण की जा सकती है। पाठ्यक्रम में निर्धारित इस अध्याय का सम्बन्ध मुख्यतः शान्ति पर्व तथा महाभारत से है। अतः इकाई में इन दो सन्दर्भों पर विशेष अवधान दिया गया है।

सर्वप्रथम तो वानप्रस्थियों की कठोर जीवनचर्या के अंतर्गत जाना गया कि किस प्रकार वानप्रस्थी महात्मा तपश्चर्या का अनुसरण करते हैं। इस तपश्चर्या के परिणामस्वरूप उन्हें अग्निहोत्रियों को प्राप्तव्य लोक की प्राप्ति होती है। तदनन्तर हिमालय के पास एक ऐसे अदृश्य लोक की चर्चा हुई जिसे एक आदर्श लोक कहा जा सकता है। उनके जीवन के सिद्धांतों का अनुसरण करने से धरती को ही स्वर्ग बनाया जा सकता है, ऐसा अध्ययन से सार प्राप्त होता है।

2.6 मुख्य शब्दावली

- **शार्दूल** – सिंह।
- **स्थानासनी** – भूमि पर बैठने वाला।
- **अस्कन्दितकाल** – समय का उल्लंघन न करने वाला।
- **परिव्राजक** – संन्यासी।
- **शुचि** – पवित्र।
- **स्वदारनिरत** – अपनी ही स्त्री के प्रति अनुराग रखने वाला।
- **क्षीणायुष** – जिनकी आयु समाप्त हो गई है।

2.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. वानप्रस्थियों की दिनचर्या का संक्षिप्त वर्णन लिखिए।
2. हिमालय के समीप आदर्श लोक के निवासियों के गुणों पर प्रकाश डालिए।

टिप्पणी

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. 'महाभारत' का सामान्य परिचय दीजिये।
2. 'महाभारत' में गर्भित सन्देश को समझाइये।
3. 'महाभारत एक विकासशील महाकाव्य है' इस कथन से आप कहाँ तक सहमत है।
4. धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के विषय में जो कुछ महाभारत में कहा गया है, वह अन्यत्र नहीं है, जो इसमें नहीं है, वो कही नहीं है। इस कथन से आप कहां तक सहमत है। तर्कपूर्ण उत्तर दीजिये।
5. महाभारत की प्रत्येक कथा या घटना का एक ही व्यापक सेतु है। इस कथन का तात्पर्य स्पष्ट कर उस हेतु का उल्लेख कीजिये।
6. रामायण और महाभारत की तुलना कीजिये।
7. महाभारत के शांति पर्व के 192वें अध्याय का सारांश लिखकर उसमे व्यक्त होने वाले प्रयोजन की समीक्षा कीजिये।
8. महाभारत का वैशिष्ट्य प्रतिपादित कीजिये।

2.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. *भविष्यपुराण,* हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद
2. *भविष्य पुराण,* श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1959
3. *मत्स्य पुराण,* श्रीराम शर्मा आचार्य, बरेली, 1970
4. *मानसार,* प्रसन्न कुमार आचार्य, इलाहाबाद, 1932 ई.
5. *मयमत,* अनुवाद ब्रुनो डेगन्स, पाण्डिचेरी, 1976, नई दिल्ली, 1994 (दो खण्ड)
6. *महाभारत,* गीताप्रेस गोरखपुर, सातवाँ संस्करण, 1990
7. महाभाष्य, पतंजलि, हरियाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर, रोहतक, 1973
8. महावंश, (अंग्रेजी अनुवाद) डब्ल्यू गाइगर, पालि टेक्स्ट सोसायटी, लुजाक एण्ड कम्पनी, लन्दन, 1964
9. *महावस्तु,* (अंग्रेजी अनुवाद) जे.जे. जॉय, भाग 1–3, सेक्रेड बुक ऑफ द बुद्धिस्ट, भाग 16, 18, 19, लुजाक एण्ड कम्पनी, लन्दन, 1949, 1952, 1956

इकाई 3 रघुवंशम् (प्रथम सर्ग)

टिप्पणी

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.3 रघुवंशम् (प्रथम सर्ग)
3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.5 सारांश
3.6 मुख्य शब्दावली
3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

पुस्तक की इस इकाई में

महाकवि कालिदास रचित सर्वप्रथम रघुवंशी राजाओं की विशेषताओं पर विशद प्रकाश डाला गया है तथा तत्पश्चात् सन्तति रहित महारानी सुदक्षिणा एवं राजा दिलीप के वसिष्ठ आश्रम गमन का वर्णन किया है। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि गुरुदेव की असीम कृपा से उन्हें मनोवाञ्छित समाधान प्राप्त हो जायेगा। वसिष्ठ के आश्रम तक जाने वाले मार्ग का वर्णन प्रकृति चित्रण तथा ग्रामवासियों के साथ संक्षिप्त वार्तालाप आदि के माध्यम से यह सर्ग अत्यन्त हृदयग्राही हो गया है। अतः इस इकाई में रघुवंश के प्रथम सर्ग के साथ ज्ञान सहित आप कालिदास की शैली से भली–भांति परिचित होंगे।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- रघुवंशम् के प्रथम सर्ग के समस्त श्लोकों के अन्वयों को समझेंगे;
- श्लोकार्थ व व्याख्या का अध्ययन करेंगे;
- श्लोकों में आए आवश्यक पदों का व्याकरण जानेंगे और
- रघुवंश से सम्बद्ध समालोचनात्मक ज्ञान को भी प्राप्त कर लेंगे।

3.2 रघुवंशम् (प्रथम सर्ग)

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।।1।।

अन्वय–(अहम्) वागर्थप्रतिपत्तये वागार्थाविव सम्पृक्तौ जगतः पितरौ पार्वतीपरमेश्वरौ वन्दे।

अनुवाद—मैं, (कालिदास) शब्द और अर्थ के सम्यक्—ज्ञान के लिए, शब्द और अर्थ के समान सदैव परस्पर मिले हुए संसार के माता—पिता पार्वती और भगवान् शिव की वन्दना करता हूँ।

टिप्पणी

व्याख्या—मैं अर्थात् कवि कालिदास शब्द और अर्थ के ज्ञान के लिए शब्द और अर्थ के नित्य सम्बन्ध की तरह शाश्वत् रूप से संयुक्त संसार के माता—पिता पार्वती और शिव की वन्दना करता हूँ। इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है। 'प्रस्फुटं सुन्दरं साम्यमुपमेत्यभिधीयते प्रस्तुत पद्य में पार्वती, शंकर की अभिन्नता शब्द और अर्थ के समान प्रदर्शित की गयी है, अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—संपृक्तौ—सम्.+ पृच् (सम्पर्के)+ क्त (द्वितीया द्वि.), वागर्थौ वाक् च अर्थः च (द्वन्द्व) तौ तयोः प्रतिपत्तिः वागर्थप्रतिपत्तिः (श. तत्पु.) तस्यै (चतुर्थी), पितरौ—माता च पिता च पिता च (एकशेष द्वन्द्व) तौ, जगतः—जगत्+ षष्ठी ए.व.।

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।।2।।

अन्वय—सूर्यप्रभवः वंशः क्व, अल्पविषया (मम) मतिः च क्व, (अहम्) मोहात् उडुपेन दुस्तरं सागरं तितीर्षुः अस्मि।

अनुवाद—कहाँ सूर्य से उत्पन्न होने वाला वंश और कहाँ मेरी अत्यन्त क्षुद्र बुद्धि (इनमें महान् अन्तर है इस अन्तर को जानते हुये भी मैं मूर्खतावश) उस वंश का वर्णन उसी प्रकार करने की इच्छा कर रहा हूँ जिस प्रकार कोई कठिनाई से पार करने योग्य अगाध समुद्र को छोटी नौका से पार करने की इच्छा करता है।

व्याख्या—कवि कहता है कि कहाँ तो सूर्य से उत्पन्न होने वाला वह वंश और कहाँ अल्प ज्ञान वाली मेरी बुद्धि। इनमें कहीं पर भी साम्य नहीं है। सूर्य वंशियों के उदात्त चरित्र का मेरे द्वारा वर्णन किया जाना, मेरी मूर्खतापूर्ण चेष्टा का प्रयास ही है जिस तरह मानों कोई अज्ञानी व्यक्ति अपनी छोटी सी नौका से विस्तृत समुद्र को पार करने की दुश्चेष्टा कर रहा हो। इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है। **"द्वौ क्व शब्दौ महदन्तरं सूचयथः"। (मल्लिनाथ)**

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—दुस्तरम् दुःखेन तरितुं (तरीतुं वा) शक्यम् (दुस+ तृ+ खल्), अल्पविषया—अल्पः विषयः यस्याः सा , सूर्य.—सूर्यः प्रभवः यस्य सः , तितीर्षुः—तरीतुम् इच्छति तितीर्षति (=तृ.+सन् + लट् प्रथमा ए.), तितीर्षति इति, अस्मि—अस् लट् उत्तम पु.ए.।

मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः।।3।।

अन्वय—मन्दः कवियशः प्रार्थी प्रांशुलभ्ये फले लोभात् उद्बाहुः वामनः इव उपहास्यताम् गमिष्यामि।

अनुवाद—मन्द बुद्धि वाला होता हुआ भी मैं महान् कवियों के यश को प्राप्त करने की इच्छा कर रहा हूँ। अतः मैं उसी प्रकार हँसी का पात्र बनूँगा जिस प्रकार लम्बे मनुष्य के हाथ से प्राप्त होने योग्य फल को बौना मनुष्य हाथ उठाकर प्राप्त करने की इच्छा

करता हुआ हँसी का पात्र बनता है। तात्पर्य यह है कि जिस फल को या वस्तु को लम्बा व्यक्ति प्राप्त कर सकता है, यदि उसे प्राप्त करने की इच्छा बौना व्यक्ति करे तो लोग उसकी हँसी उड़ाते हैं।

टिप्पणी

व्याख्या—कवि कहता है कि कवि होने के यश को प्राप्त करने की इच्छा वाला मैं उसी तरह विद्वान् व्यक्तियों की हंसी का पात्र बनूँगा, जिस तरह लम्बे कद वाले व्यक्ति के द्वारा प्राप्त की जा सकने वाली वस्तु को प्राप्त करने के लोभ से अपनी भुजाओं को ऊपर उठाकर प्रयास करने वाला बौना व्यक्ति हंसी का पात्र हुआ करता है। छन्द—अनुष्टुप, अलङ्कार—उत्प्रेक्षा है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—उपहास्यस्य भावः उपहास्यता, ताम् उपहास्यताम्, कवयन्ति इति कवयः, कवीनां यशः कवियशः, कवियशः प्रार्थयितुम् शीलम् अस्य इति कवियशः—प्रार्थी, लब्धुम् योग्यम् लभ्यम्, प्रांशुना लभ्यम् प्रांशुलभ्यम् तस्मिन् प्रांशुलभ्ये, उच्छ्रितौ बाहू यस्य स उद्बाहुः, बहुव्रीहिसमास।

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन्पूर्वसूरिभिः।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः।।4।।

अन्वय—अथवा पूर्वसूरिभिः कृतवाग्द्वारे अस्मिन् वंशे वज्रसमुत्कीर्णे मणौ सूत्रस्य इव मे गतिः अस्ति।

अनुवाद—अथवा (प्राचीन वाल्मीकि आदि) कवियों के द्वारा पहले से ही प्रवेश के लिए इस वंश का द्वार खोल दिया गया है अतः इस वंश के वर्णन में मेरी गति उसी प्रकार से सम्भव है, जैसे सुई से छिदे हुये हीरे की मणि में कोमल डोरे का प्रवेश हो जाता है।

व्याख्या—अथवा जिस तरह कठोर रत्न (मणि) में सुई जैसे यन्त्र के द्वारा एक बार छेद कर दिये जाने पर कोमल धागा सहज ही प्रवेश कर जाता है, उसी प्रकार पूर्ववर्ती विद्वान् कवियों वाल्मीकि आदि के द्वारा अपनी वाणी के द्वारा इस रघुवंश के वर्णन किये गये प्रवेश—द्वार में मेरी गति सहज सम्भाव्य है। छन्द—अनुष्टुप् , अलङ्कार—उत्प्रेक्षा है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—पूर्व.—सूते सूयते वा इति सूरिः, पूर्वे च ते सूरयः इति पूर्वसूरयः (कर्म.) तैः, कृत.—वाचि कृतं वाग्द्वारं यस्मिन् सः कृतवाग्द्वारः तस्मिन्, अस्ति—अस् लट् प्रथमा एकवचन।

सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम्।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम्।।5।।

अन्वय—सः अहम् आजन्मशुद्धानाम्, आफलोदयकर्मणाम्, आसमुद्रक्षितीशानाम्, आनाकरथवर्त्मनाम् (रघूणाम् अन्वयं वक्ष्ये)।

अनुवाद—वह मैं (कालिदास) जन्म से शुद्ध एवं सदाचारी, फल प्राप्ति पर्यन्त कार्य को करने वाले, समुद्र पर्यन्त पृथिवी का शासन करने वाले तथा स्वर्ग तक रथ यात्रा करने वाले रघुवंशियों के वंश का वर्णन करूँगा।

व्याख्या—कवि रघुवंशियों के उदात्त गुणों का वर्णन करता है और स्पष्ट करता है कि मैं कालिदास, जीवनभर शुद्ध आचरण करने वाले, फल की प्राप्ति तक निरन्तर कर्म करने वाले तथा जो सदैव अपने कर्मों के फल को प्राप्त करते थे क्योंकि वे कर्म निष्पादन

टिप्पणी

में मनसा, वाचा, कर्मणा निष्काम थे। वे सदैव अपने कार्य को पूर्ण करते थे, कार्य को अधूरा नहीं छोड़ते थे, समुद्र तक की सारी पृथ्वी के वे चक्रवर्ती शासक थे, उनके रथ की गति (पृथ्वी तक ही सीमित नहीं है) स्वर्ग तक थी अर्थात् रथ की अबाधित गति से वे सर्वत्र भ्रमण करते थे, इस तरह विशेष गुणों वाले रघुवंशियों के वंश का मैं वर्णन करता हूँ।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—आजन्म—जन्मनः आ (जन्मनः) जन्म अभिव्याप्य = जन्म से आरम्भ करके, आफलो.—फलस्य उदयः फलोदयः (ष. तत्पु.), फलोदयात् आ (फलोदयम् अभिव्याप्य = फल प्राप्त होने तक) , आसमुद्र.—समुद्रात् आ (=समुद्रमभिव्यापय समुद्र को शामिल करके अर्थात् समुद्र पर्यन्त, आनाक.—न अकं (दुःखं) अकं (नञ् तत्पु.) विद्यते यत्र सः नाकः (बहुव्री.) (यहाँ पर न को अन आदेश नहीं होता है), आजन्मनः—आङ् के साथ मर्यादा तथा अभिविधि अर्थों में पञ्चमी विभक्ति होती है और अव्ययीभाव समास होता है।

यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम्।
यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम्।।6।।

अन्वय—यथाविधिहुताग्नीनाम्, यथाकामार्चितार्थिनाम्, यथापराधदण्डानाम्, यथा—कालप्रबोधिनाम् (रघूणाम् अन्वयम् वक्ष्ये।)

अनुवाद—विधि विधान पूर्वक सम्यक् रीति से अग्नि में हवन करने वाले, याचकों को उनकी इच्छानुसार संतुष्ट करने वाले अपराधियों को उनके अपराध के अनुसार दण्ड देने वाले निरन्तर जागरूक रहने वाले अथवा समय आने पर सदैव कार्य करने के लिये तत्पर रहने वाले रघुवंशियों का मैं वर्णन करूँगा।

व्याख्या—रघुवंशी राजाओं के गुणों का उल्लेख करते हुए कवि कहता है कि मैं विधिपूर्वक हवन इत्यादि करने वाले, इच्छापूर्ति तक भिक्षुकों को दान देने वाले याचकों तथा आवश्यकता वालों की मनोरथ पूर्ण करने वाले, अपराध की गम्भीरता के अनुरूप ही अपराधियों को दण्ड देने वाले तथा समय के अनुसार ही जागरूक होकर अपने कर्तव्य पालन में प्रजापालन आदि में तत्पर रहने वाले रघुवंशियों के वंश का वर्णन करता हूँ।

प्रस्तुत श्लोक में प्रयुक्त चार विशेषण सूर्यवंशी राजाओं की चरित्र की चार विशेषताओं पर प्रकाश डालते हैं—वे अग्नि में आहुति डालकर देवताओं को संतुष्ट करते थे और वे देवभक्त थे, वे अतिथि पूजा कर मनुष्यों को प्रसन्न करते थे। वे न्याय कर प्रजा में आन्तरिक शान्ति स्थिर रखते थे और वे सदा ब्राह्ममुहूर्त में ही जाग जाते थे।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—यथाकामा.—काम अनतिक्रम्य यथाकामं (अव्यय.), यथाकामम् अर्चिताः यथा कामार्चिताः (सुप्सुपेति समासः), यथाकामार्चिताः अर्थिनः यैः ते यथाकामार्चितार्थिनः (ब.बी.) तेषाम्। यथाविधि.—विधिम् अनतिक्रम्य यथाविधि (अव्ययी), यथाविधि हुताः (अथवा यथाविधि हुत) (सुप्सुपेति समासः), यथाविधिहुताः अग्नयः यैः ते (अथवा यथाविधिहुतम् अग्निषु यैः ते) यथाविधि हुताग्नयः (ब.व्री.) तेषाम्। यथापराध. —अपराधम् अनतिक्रम्य यथापराधम् (अव्ययी.), यथाकाल.—कालम् अनतिक्रम्य यथाकालम् (अव्ययी.) यथाकालं प्रबोधिनः यथाकालप्रबोधिनः (सुप्सुपेति समासः) तेषाम्।

त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्।।7।।

टिप्पणी

अन्वय–त्यागाय संभृतार्थानाम्, सत्याय मितभाषिणाम, यशसे विजिगीषूणाम्, प्रजायै गृहमेधिनाम् (रघूणामन्वयं वक्ष्ये)।

अनुवाद–वे दान देने के निमित्त धन का संग्रह करने वाले थे, सदैव सत्य एवम् मधुर भाषण करने वाले तथा अल्प भाषण करने व सत्य की रक्षा के लिए सदैव अल्प भाषण करते थे, अधिक बोलने से कहीं असत्य भाषण न हो जाए। यश के लिये दिग्विजय की अभिलाषा रखने वाले तथा केवल सन्तान प्राप्ति के लिये ही विवाह करने वाले रघुवंशियों का मैं वर्णन करूँगा।

व्याख्या–कवि कहता है कि रघुवंश के राजा दान इत्यादि के लिए ही धन एकत्र करने वाले सत्य की रक्षा के लिए ही कम बोलने वाले (बारहवें सर्ग में सत्य के लिए दशरथ के प्राण–त्याग से सत्य–प्रेम की पराकाष्ठा का दिग्दर्शन हुआ है), यश–प्राप्ति के लिए ही दूसरे राजाओं के राज्यों पर विजय प्राप्त करने की इच्छा वाले तथा सन्तानोत्पत्ति के लिए ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाले रघुवंशियों के वंश का वर्णन करता हूँ।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–त्यागाय, सत्याय, यशसे तथा प्रजायै–चारों में तादर्थ्य (के वास्ते यश के निमित्त इस अर्थ में) चतुर्थी विभक्ति। सम्भृता.–सम्भृतः अर्थः यैः ते सम्भृतार्थाः (बहुव्रीहि) तेषाम्। मितभाषिणाम्–मितं भाषते तच्छीलाः मितभाषिणः (उपपद समास) तेषाम्। विजिगीषूणाम् विजेतुम् इच्छन्ति इति विजिगीषन्ति (वि+जि+सन्+लट् प्रथम ब.), विजिगीषन्ति इति विजिगीषवः (विजिगीश+उ) तेषाम्। गृहमेधिनाम् (1) गृहैः (=दारैः) गृहेण (जायया) वा मेधन्ते (=संगच्छन्ते) इति (उपपद समास), (2) गृहान् (=दारान्) गृहं (=जायां) वा मेधन्ते (सेवन्ते) इति (उपपद समास), (3) गृहमेधं (=विवाहः–) विद्यते येषां ते (गृहमेध+इन्) गृहमेधिनः तेषाम्।

विशेष–इन उपर्युक्त सभी विशेषणों के द्वारा रघुवंशी राजाओं का परोपकारित्व, सत्यवचनत्व, शुद्धत्व आदि व्यक्त किया गया है।

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्।।8।।

अन्वय–शैशवे अभ्यस्तविद्यानाम्, यौवने विषयैषिणाम् वार्द्धके मुनिवृत्तीनाम्, अन्ते योगेन तनुत्यजाम् (रघूणामन्वयं वक्ष्ये)।

अनुवाद–बाल्यकाल में ही समस्त विद्याओं का अभ्यास करने वाले, युवा अवस्था में विषय भोग की इच्छा करने वाले, वृद्धावस्था में मुनिवृत्ति को धारण करने वाले तथा अन्त में समाधि द्वारा शरीर छोड़ने वाले रघुवंशियों का मैं वर्णन करूँगा।

व्याख्या–कवि वर्णन करता है कि बाल्यावस्था में विद्याओं के अभ्यास में लगे रहने वाले, युवावस्था में विषयों के उपभोग में लगे रहने वाले, वृद्धावस्था में मुनिवृत्ति का आश्रय लेने वाले तथा अन्त में योग से सुखपूर्वक शरीर का त्याग करने वाले रघुवंशियों के वंश का वर्णन करता हूँ।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–यौवने–यूनः भावः यौवनं (युवन्+अण्) तस्मिन्। विषयै–विषयम् इच्छन्ति इति विषयैषिणः (उपपद.) तेषाम्। शैशवे–शिशोः भावः शैशवः (शिशु अण्)

तस्मिन्। अभ्यस्त.–अभ्यस्ताः विद्याः यैः ते अभ्यस्तविद्याः (ब.व्री.) तेषाम्। वार्द्धके–वृद्धस्य भावः वार्द्धकम् (वृद्ध+ वृञ् = अक) तस्मिन्। मुनि.–मुनीनां वृत्तिः इव वृत्तिः येषां ते मुनिवृत्तयः (मध्यपदलोपी ब.व्री.) तेषाम्।

टिप्पणी

रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन्।
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः।।9।।

अन्वय–तनुवाग्विभवेन अपि सन् तद्गुणैः कर्णम् आगत्य चापलाय प्रचोदितः अहम् रघूणाम् अन्वयम् वक्ष्ये।

अनुवाद–वाक्शक्ति की अल्पता होते हुए भी कान के निकट आकर रघुवंशियों के गुणों के द्वारा यह चपल कार्य करने के लिए प्रेरित कर दिया गया हूँ, अतः मैं उनके कुल का वर्णन करूँगा।

व्याख्या–वाणी की सामर्थ्य के कम होने पर भी मुझमें कवित्व शक्ति के सीमित होने पर भी, अपने पूर्ववर्ती विद्वानों द्वारा कथित कथाओं के माध्यम से अपने कानों से सुनकर विवेकहीन चंचल बुद्धि से प्रेरित होकर मैं कवि कालिदास रघुवंशियों के वंश का गुणगान करने के लिए तैयार हो गया हूँ।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–आगत्य आ+गम्+ल्यप्। तनु. वाचः विभवः वाग्विभवः (श. तत्पु.), तनुः वाग्विभवः यस्य सः तनुवाग्विभवः। सन–अस्+शतृ प्रथमा ए.। वाचां विभवः वाग्विभवः, तनुः, वाग्विभवः यस्य सः तनुवाग्विभवः। तद्गुणैः तेषां गुणाः तद्गुणाः (षष्ठी तत्पुरुष) तैः।

तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतवः।
हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा।।10।।

अन्वय–सद् असद् व्यक्तिहेतवः सन्तः तम् श्रोतुम् अर्हन्ति। हि हेम्नः विशुद्धिः अपि वा श्यामिका अग्नौ संलक्ष्यते।

अनुवाद–सत् असत् और गुण दोष आदि की परीक्षा करने वाले ही मेरी कविता को सुनने के योग्य हैं, क्योंकि वे सज्जन पुरुष अच्छे और बुरे का विवेचन करने में समर्थ हैं। जैसे सोने की शुद्धता और श्यामता की परीक्षा केवल आग में ही हो सकती है अन्यत्र नहीं, उसी प्रकार अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् ही मेरी कविता के सच्चे रूप में पारखी हो सकते हैं।

व्याख्या–गुण और अवगुण को अभिव्यक्त करने के हेतु सज्जन आलोचक ही होते हैं, अतः मेरे द्वारा रचित इस महाकाव्य को वे सुनने योग्य हैं, क्योंकि स्वर्ण की विशुद्धता और श्यामता खरा–खोटापन अग्नि से ही जाना जाता है। छन्द–अनुष्टप्, अलङ्कार–अर्थान्तरन्यास है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–सद.–सत् च असत् च सदसती (द्वन्द्व), तयोः व्यक्ति सदसद्व्यक्तिः (षष्ठी तत्पुरुष), तस्याः हेतवः सदसद्व्यक्तिहेतवः (श. तत्पु.)। सन्तः–अस्+शतृ (पु.)+ प्रथमा। श्रोतुम् श्रु. तुमुन्। अर्हन्ति–अर्ह+लट् प्रथम ए.व.।

वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम्।
आसीन्महीक्षितामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव।।11।।

अन्वय—मनीषिणाम् माननीयः वैवस्वतः नाम मनुः छन्दसां प्रणवः इव महीक्षिताम् आद्यः आसीत्।

अनुवाद—मनस्वी विद्वानों में अग्रगण्य वैवस्वत मनु नाम वाले राजा समस्त पृथ्वीपतियों में उसी प्रकार पूज्य तथा अग्रगण्य हुए जिस प्रकार वेदों में ओंकार अग्रगण्य तथा सर्वश्रेष्ठ होता है।

टिप्पणी

व्याख्या—वेदमंत्रों में ओंकार सदृश, पृथ्वी के राजाओं में प्रथम पूज्य तथा विद्वानों में सम्माननीय सूर्यपुत्र (वैवस्वत) मनु (रघुवंशियों में प्रथम महापुरुष) थे। छन्द—अनुष्टुप्, अलङ्कार—उपमा है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—मनीषिणाम—ईषा अस्य अस्ति इति ईषी, मनसः इषी मनीषी (श. तत्पु.)। तेषाम् (निर्धारणे षष्ठी)। माननीयः—मान् (चुरादि)+अनीयर। महीक्षिताम्—महीं क्षियन्ति (ईषते) मह्यां क्षिपन्ति (निवसन्ति) इति वा महीक्षितः (उपपद) तेषाम् (निर्धारणे षष्ठी)। आसीत्—अस् +लङ् प्रथम ए.व.।

तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतः शुद्धिमत्तरः।
दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुः क्षीरनिधाविव।।12।।

अन्वय—शुद्धिमति तदन्वये शुद्धिमत्तरः दिलीप इति राजेन्दुः क्षीरनिधौ इन्दु इव प्रसूतः।

अनुवाद—अत्यन्त पवित्र उस वंश में राजाओं में श्रेष्ठ चन्द्रमा के समान दिलीप नाम से एक राजा उत्पन्न हुआ, जो क्षीर समुन्द्र में चन्द्रमा के समान था।

व्याख्या—जिस तरह क्षीरसागर में चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, उसी की भाँति उस परम पवित्र (मनु) के उस वंश में बहुत अधिक विशुद्ध—पवित्र बुद्धि से युक्त राजाओं में चन्द्रमा सदृश राजा दिलीप उत्पन्न हुए। रघुवंश सूर्य से उत्पन्न है अतः अत्यधिक पवित्र है किन्तु राजा दिलीप उससे भी अधिक पवित्र हैं।

छन्द—अनुष्टुप् , अलङ्कार—उपमा हैं।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—तदन्वये तस्य अन्वयः (षष्ठी तत्पुरुष) तस्मिन्। शुद्धिमत्तरः अयम् अनयोः अतिशयेन, शुद्धिमान्—शुद्धिमत्+तरप् (प्रथमा ए.)। राजेन्दुः—राजा इन्दुः इव (कर्म)। क्षीरनिधौ—क्षीरस्य निधिः (षष्ठी तत्पुरुष) तस्मिन्। प्रसूतः—प्र+सू+क्त। शुद्धिमति—शुद्धः अस्य अस्ति इति शुद्धिमान् (शुद्धि +मत्) तस्मिन्।

व्यूढोरस्को वृषस्कन्धः शालप्रांशुर्महाभुजः।
आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः।।13।।

अन्वय—व्यूढोरस्कः वृषस्कन्धः शालप्रांशुः महाभुजः आत्मकर्मक्षमं देहम् आश्रितः क्षात्रः धर्मः इव।

अनुवाद—उस राजा दिलीप का वक्षः स्थल चौड़ा था तथा बैलों के कन्धों के समान उनके बलिष्ठ तथा चौड़े कन्धे थे, शालवृक्ष के समान उनकी भुजायें मोटी तथा लम्बी थीं, उन्हें देखकर ऐसा ज्ञात होता था मानो साक्षात् क्षात्र धर्म ने ही अपने कर्तव्य के अनुरूप देह को धारण कर लिया था।

व्याख्या—मनुपुत्र उस दिलीप का विशाल वक्ष था। वृषभ सदृश उसके कंधे थे। शालवृक्ष के समान मजबूत और उसकी दोनों भुजाएं लम्बी थी। अपने क्षत्रिय धर्म के निर्वाह करने

में समर्थ उसके शरीर का क्षात्र–धर्म ने ही मानो आश्रय लिया हुआ था अर्थात् दिलीप का शरीर ऐसा प्रतीत होता था मानो स्वयं क्षत्रिय धर्म (पराक्रम) ने ही साक्षात् शरीर धारण कर लिया है।

टिप्पणी

छन्द–अनुष्टुप्, अलङ्कार–उत्प्रेक्षा।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–वृषस्कन्धः वृषस्य स्कन्धः इवः स्कन्धौ यस्य सः (बहु.) शालप्रांशुः–शाल इव प्रांशुः (कर्म.) महाभुजः–महान्तौ (जानुपर्यन्तौ) भुजौ यस्य सः (ब.व्री.)। आत्म.–आत्मनः कर्म आत्मकर्म (ष. तत्पु.) तस्मिन् क्षमः आत्मकर्मक्षमः (स. तत्पु.) तम् आश्रितः–आ +श्रि+क्त। क्षात्रः–क्षतात् त्रायते इति क्षात्र, क्षत्रस्य अयम् (क्षत्र+अण्)।

सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोभिभाविना।
स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वी क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना।।14।।

अन्वयः–सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोऽभिभाविना सर्वोन्नतेन आत्मना मेरुः इव उर्वीम् क्रान्त्वा स्थितः।

अनुवाद–समस्त लोगों से अधिक बलशाली होने के कारण, समस्त लोगों से अधिक तेजस्वी होने के कारण और सबसे अधिक उन्नत होने के कारण ऐसे राजा दिलीप समस्त पृथ्वी को अपने अधिकार में करके उसी प्रकार स्थित थे जैसे समस्त पृथ्वी को आक्रान्त करके सुमेरु पर्वत स्थित है।

व्याख्या–अन्य सभी प्राणियों की अपेक्षा अत्यधिक शक्तिशाली होने से, सभी प्राणियों को अपने तेज से तिरस्कृत सा करके, सभी प्राणियों की अपेक्षा अधिक ऊँचा होने से वह सारी पृथ्वी को घेर कर सुमेरू पर्वत के समान खड़ा था। सुमेरू पर्वत की उपमा द्वारा राजा दिलीप की देहयष्टि की देदीप्यमानता एवं सर्वातिशयिता का वर्णन किया गया है।

छन्द–अनुष्टुप्, अलङ्कार–उपमा है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–सर्वाति.–सर्वेषाम् अतिरिक्ततरः सर्वातिरिक्ताः (श. तपु.), तादृषः यस्य सः (अथवा सर्वेभ्यः अतिरिक्तः सर्वातिरिक्तः (श. तत्पु.), तादृशः सारः यस्य सः) सर्वातिरिक्तसारः (ब.व्री.) तेन। सर्व.–सर्वाणि (भूतानि) तेजसा अभिभवति इति अथवा सर्वेशां तेजः (षष्ठी तत्पुरुष) तत् अभिभवति इति सर्वतेजोभिभावी (उपपद)। सर्वो.–सर्वेभ्यः उन्नतः सर्वोन्नतः (षष्ठी तत्पुरुष) तेन। क्रान्त्वा–क्रम्+क्त्वा। स्थितः–स्था+क्त।

आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः।
आगमैः सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदयः।15।।

अन्वय–आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः, आगमैः सदृशारम्भः, आरम्भ सदृशोदयः (स आसीत्)।

अनुवाद–राजा दिलीप का जैसा शरीर था उसी प्रकार उनकी विशाल बुद्धि भी थी और जैसी उनकी बुद्धि थी उसी प्रकार उन्हें शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान भी था, जिस प्रकार का उन्हें शास्त्रों का ज्ञान था उसी प्रकार वे उद्योग भी किया करते थे और जैसे उनके उद्योग होते थे उनको उसी प्रकार सफलता भी प्राप्त होती थी।

व्याख्या–महाराज दिलीप शरीर से ही न केवल बलशाली थे वरन् शरीर के अनुरूप ही उनमें विशिष्ट बुद्धि थी। उनमें जिस तरह विशेष बुद्धि थी, उसी के अनुरूप ही वे

अध्यवसायी थे। इस तरह ये बुद्धिमान् और परिश्रमी थे। विवेक से सश्रम कार्य करने में लगे रहते थे। सोच विचार कर ही वे कार्य करने में प्रवृत्त होते थे। विवेक पूर्ण कार्य शैली अपनाने से उसके अनुरूप ही कृतकार्य का फल प्राप्त होता था। इस प्रकार दिलीप प्रतिभावान्, परिश्रमी, विवेकशील तथा किये गये कार्य के सुफल का उपभोग करने वाले थे। छन्द–अनुष्टुप् , अलङ्कार मालोपमा है।

टिप्पणी

व्याकरणगत प्रमुख शब्द दृ आकार–आकारेण सदृषी आकारसदृषी (तृ.तत्पु.), आकारसदृषी प्रज्ञा यस्य सः (ब.वी.)। सदृषागमः–सदृष आगमः यस्य सः, सदृषारम्भः–सदृषः आरम्भ यस्य स , आरम्भ आरम्भेण सदृषः आरम्भसदृषः , तादृषः उदयः यस्य सः।

भीमकान्तैनृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम्।
अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः।।16।।

अन्वय–भीमकान्तैः नृपगुणैः स उपजीविनाम् यादोरत्नैः अर्णव इव अधृष्यः च अभिगम्यः च बभूव।

अनुवाद–भयंकर (तेज, प्रताप आदि) और मनोहर (दया, दाक्षिण्य आदि) राजगुणों के कारण वे राजा दिलीप समुद्र के समान थे जैसे समुद्री जलजीवों के भय से लोग समुद्र के निकट जाने का साहस नहीं करते परन्तु रत्नों को प्राप्त करने की इच्छा से उसका आश्रय भी लेते हैं। इसी प्रकार दिलीप के शौर्य–तेज आदि गुणों के कारण प्रजा उनसे डरती भी थी और उनकी कोमलता आदि के कारण उनसे प्रीति भी करती थी।

व्याख्या–जिस प्रकार समुद्र का जल समुद्री जीवों के कारण भयभीत बनाने वाला होता है और बहुमूल्य रत्नों के कारण सेवन करने योग्य बना रहता है उसी प्रकार दिलीप के कुछ भयंकर गुणों (तेज, बल और दण्ड आदि) के कारण सम्पर्क में आने वाले लोगों के लिए भयंकर बना हुआ था परन्तु अपने कमनीय गुणों (उदारता, दयालुता आदि) के कारण वह अपने आश्रितों के लिए समादरणीय भी था। छन्द–अनुष्टुप् , अलङ्कार–उपमा हैं।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द – अधृष्यः–धर्शितुं योग्यः (धृश् +य) धृश्यः, न धृश्यः अधृश्यः (नञ् तत्पु.)। अभिगम्यः–अभिगन्तुं योग्यः (अभि+ गम्+य) , भीमकान्तैः–भीमाः च कान्ताः च भीमकान्ताः (द्वन्द्व) तैः। नृपगुणैः–नृपाणां गुणाः नृपगुणाः (षष्ठी तत्पुरुष) तैः , यादोरत्नैः–यादांसि च रत्नानि च यादोरत्नानि (द्वन्द्व) तैः।

रेखामात्रमपि क्षुण्णादामनोर्वर्त्मनः परम्।
न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नेमिवृत्तयः।।17।।

अन्वय–नियन्तुः तस्य नेमिवृत्तयः प्रजाः आ मनोः क्षुण्णात् वर्त्मनः परम् रेखामात्रम् अपि न व्यतीयुः।

अनुवाद–शिक्षक तथा शासन करने वाले महाराज दिलीप की प्रजा मनु के बताये हुए आचार मार्ग का उसी प्रकार रंचमात्र उल्लंघन नहीं करती थी, जिस प्रकार अच्छे सुयोग्य सारथी के द्वारा हाँके जाते हुए रथ के पिछले पहिये अगले पहिये के बने हुए मार्ग का अतिक्रमण नहीं करते।

व्याख्या–जिस प्रकार कुशल सारथी के द्वारा सञ्चालित रथ का पिछला पहिया आगे के पहिये की लीक का अनुसरण करता है, थोड़ा भी इधर–उधर नहीं हटता उसी प्रकार

राजा दिलीप के कुशल शासन में उसकी प्रजा मनु से लेकर दिलीप के शासनकाल तक अभ्यस्त मार्ग से थोड़ा भी बिना हटे, उसका अनुसरण कर रही थी।

टिप्पणी

व्याकरणगत प्रमुख शब्द : नियन्तुः–(नि+रम्+ तृ) इति नियन्ता तस्य। नेमि.–नेमीनां वृत्तिनां इव वृत्तिः यासां ताः (ब.वी.)। आमनो :–(=मनुम् आरभ्य इति अभिविधिः) अभिविधि अर्थ में आ के योग में मनु से पंचमी, समास वैकल्पिक इसलिए समास नहीं। क्षुण्णात्–क्षुद+क्त पंचमी ए.। वर्त्मनः–वर्त्मन्+पंचमी ए.। रेखामात्रम्–रेखा प्रमाणम् अस्य (रेखा+मात्रम) इति। व्यतीयुः–वि+अति+ इ+ लिट् प्रथम ब.।

प्रजानामेव भूत्यर्थे स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।।18।।

अन्वय–सः प्रजानाम् भूत्यर्थम् एव ताभ्यः बलिम् अग्रहीत्, हि रविः सहस्रगुणम् उत्स्रष्टुम् रसम् आदत्ते।

अनुवाद–वह राजा दिलीप प्रजा के कल्याण के लिये ही उनसे कर लिया करता था और जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी से कर रूप में जल लेकर सहस्र गुणा बढ़ाकर वर्षा रूप में पृथ्वी को देकर उसे धान्यसम्पत्ति से पूर्ण कर देता है, उसी प्रकार वे राजा भी अधिक से अधिक प्रजा को सुख पहुँचाते थे।

व्याख्या–जिस तरह सूर्य वर्षा के रूप में हजार गुना जल लौटाने के लिए ही पृथ्वी से जल को भाप के रूप में ग्रहण करता है, उसी प्रकार राजा दिलीप अपने प्रजाजनों के ही कल्याण के लिए उनसे कर ग्रहण करते थे। छन्द–अनुष्टुप् अलङ्कार–अर्थान्तरन्यास हैं।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द : भूत्यर्थम् भूत्यै इदं (च.तत्पु. अर्थेन नित्य समासो विशेष्यलिङ्गता च, इस सूत्र से यह नित्य समास है।) अग्रहीत्ग्रह् +लङ् प्रथम ए.। सहस्रगुणम्सहस्रं गुणाः यस्मिन् कर्मणि तत् यथा स्यात तथा (ब.व्री.,क्रि.वि.)। आदत्ते व्री दा. लट प्रथम ए.।

सेना परिच्छदस्तस्य द्वयमेवार्थसाधनम्।
शास्त्रेष्वकुण्ठिता बुद्धिर्मौर्वी धनुषि चातता।।19।।

अन्वय–सेना तस्य परिच्छदः (आसीत्) शास्त्रेषु अकुण्ठिता बुद्धिः धनुषि आतता मौर्वी च (एतत्) द्वयम् एव अर्थसाधनम् (बभूव)।

अनुवाद–उस राजा दिलीप की सेना तो केवल उपकरण मात्र थी अर्थात् राजसी शोभा हेतु वे सेना रखते थे, अर्थसाधन हेतु तो उनके केवल दो ही साधन थे एक तो शास्त्रों में प्रवेश करने वाली प्रखर उनकी बुद्धि दूसरे उनके धनुष पर चढ़ी हुई प्रत्यञ्चा।

व्याख्या–दिलीप की सेना प्रदर्शन के निमित्त उपकरण मात्र थी। परन्तु उनके अभीष्ट उद्देश्य को प्राप्त करने के तो दो ही साधन थे 1. शास्त्रों में प्रखर उनकी बुद्धि तथा 2. धनुष पर उनके द्वारा प्रत्यञ्चा को निरन्तर चढ़ाये रखना।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द : अर्थसाधनम्–अर्थस्य साधनं (षष्ठी तत्पुरुष) द्वयम्–द्वौ अवयवौ अस्य (द्वि.+ अयच्) इति। अकुण्ठिता–न कुण्ठिता (नञ् तत्पु.)। आतता–आ+ तन+ क्त+टाप् (स्त्री.)।

तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च।
फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव।।20।।

टिप्पणी

अन्वय–संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च तस्य प्रारम्भाः प्राक्तनाः संस्काराः इव फलानुमेयाः(आसन्)।

अनुवाद–जिस प्रकार वर्तमान कालिक फलों को देखकर मनुष्य के पूर्व जन्म के संस्कारों का अनुमान किया जाता है उसी प्रकार विचार, आकार तथा चेष्टा को गुप्त रखने वाले दिलीप राजा के कार्य सिद्ध हो जाने पर ही लोगों के द्वारा जाने जाते थे कि राजा ने इस कार्य को प्रारम्भ किया था।

व्याख्या–जिस तरह मनुष्यों को पूर्व जन्म में किये गये कर्मों के फलों की संस्कार की भांति अनुभूति होती है (सुख और दुःख के फल भोगने के बाद अपने द्वारा पूर्व जन्म में किये गये कर्मों के विषय में अनुमान लगा लेता है), उसी प्रकार गुप्त विचारधारा वाले एवं मुखाकृति से प्रकट किये बिना ही कार्य के निष्पन्न हो जाने पर ही अन्य लोगों द्वारा कार्य के प्रारंभ होने का अनुमान लगाया जा सकता था।

छन्द–अनुष्टुप, अलङ्कार–उपमा हैं।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द दृ फलानुमेयाः–अनुमातुं योग्याः (अनु + मा+ यत) अनुमेयाः फलेन अनुमेयाः (तृ. तत्पु.), संवृत.–संवृतः मन्त्रः यस्य सः संवृतमन्त्रः तस्य। प्रारम्भः–प्रारभ्यन्ते इति (प्र+आ+रभ+अ)। प्राक्तन–(प्राक+तन+टच् = प्राक्+तन)।

जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः।
अगृध्नुराददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत्।।21।।

अन्वय–सः अत्रस्तः आत्मानम् जुगोप। अनातुरः धर्मं भेजे, अगृध्नुः अर्थम् आददे, असक्तः सुखम् अन्वभूत्।

अनुवाद–वह राजा दिलीप निर्भय होते हुए भी अपनी रक्षा किया करते थे। नीरोग अर्थात् संकट रहित होते हुए भी वह निरन्तर धर्माचरण किया करते थे। लोभरहित होते हुए भी धनसंग्रह किया करते थे। आसक्तिरहित होकर वे सुखों का उपभोग किया करते थे।

व्याख्या–वह राजा दिलीप निर्भीक होकर अपने शरीर की रक्षा करता था। सहज भाव एवं स्वास्थ्य के नियम तथा नीति के अनुसार वह अपने शरीर की रक्षा में तत्पर रहता था। मानसिक क्लेश से रहित होकर उद्विग्न हुए बिना ही वह अपने धर्म का उत्तरदायित्व का पालन करता था। निर्लोभ होकर वह धन का संचय करता था तथा आसक्ति भाव से रहित होकर वह सभी राजसी सुखों का उपभोग किया करता था।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–जुगोप–गुप्+ लिट् प्रथम ए., अनातुरः–न आतुरः (नञ् तत्पु.) भेजे–भज् (आत्मने.) लिट् प्रथम ए., अगृध्नुः–न गृध्नुः (नञ् तत्पु.), गृध्नुः गर्धनशीलः (गृध्+नु) आददे–आ. दा. लिट् प्रथम ए., असक्तः–न सक्तः (नञ् तत्पु.)। सक्तः–सज्+क्त, अन्वभूत्–अनु.+ भू +लुङ् प्रथम ए., अत्रस्तः–न त्रस्तः (नञ् तत्पु.)।

ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः।
गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य सप्रसवा इव।।22।।

अन्वय—ज्ञाने मौनं, शक्तौ क्षमा, त्यागे श्लाघाविपर्ययः, (इत्थम्) तस्य गुणा गुणाऽनुबन्धित्वात् सप्रसवा इव (अभूवन्)।

टिप्पणी

अनुवाद—विद्वान् होते हुए भी मौन रहना, शक्ति सम्पन्न होते हुए भी अपकारी को क्षमादान करना, दानी होते हुए भी अभिमान न करना इत्यादि उस राजा दिलीप के ज्ञान आदि गुण अपने—अपने विरोधी गुणों के साथ रहते हुए सहोदर भाई के समान प्रतीत होते थे।

व्याख्या—राजा दिलीप विविध शास्त्रों के ज्ञान से सम्पन्न थे परन्तु उनमें आत्मविज्ञापन भाव बिल्कुल भी नहीं था। राजा दिलीप शक्ति सम्पन्न होते हुए भी क्षमावान थे अर्थात् अपराधियों को दण्ड देने, अपकार का प्रतिकार करने तथा राज्य के अन्तर्गत व्यवस्था स्थापन में पूर्णतः समर्थ एवं शक्ति सम्पन्न थे परन्तु अपनी शक्ति का वे दुरुपयोग नहीं करते थे। शरण में आये हुए के लिए क्षमावान थे। राजा दिलीप दानी और उदार थे लेकिन उनमें आत्म—प्रशंसा का भाव नहीं था। इस प्रकार राजा दिलीप में ये परस्पर विरोधी गुण—ज्ञान—मौन, शक्ति और क्षमा, त्याग और श्लाघा (प्रशंसा प्राप्त करने के भाव) का अभाव दिलीप के चरित्र में व्याप्त थे। दिलीप में इन गुणों की सहस्थिति का भाव यह प्रकट करता है कि मानों वे दोनों ही एक माता के दो बेटे (सहोदर) हों अर्थात् दिलीप में विरोधी गुणों की स्थिति सहोदरवत् थी।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द : श्लाघायाः विपर्ययः (षष्ठी तत्पुरुष)। गुणा—अनुबध्नन्ति इति (अनु.+बन्ध+ इन) अनुबन्धिनः, तेषां भावः (अनुबन्धिन्+त्व) अनुबन्धित्वम्, गुणैः अनुबन्धित्वं (तृ.तत्पु.) तस्मात्। सप्रसवाः—समानः प्रसवः येषां ते। छन्द—अनुष्टुप्, अलंकार—उपमा।

अनाकृष्टस्य विषयैर्विद्यानां पारदृश्वनः।
तस्य धर्मरतेरासीद् वृद्धत्वं जरसा विना।।23।।

अन्वय—विषयैः अनाकृश्टस्य विद्यानाम् पारदृष्वनः धर्मरतेः तस्य जरसा विना वृद्धत्वम् आसीत्।

अनुवाद—वे राजा दिलीप विषयों द्वारा आकृष्ट नहीं हुए, उन्होंने समस्त विद्याओं को पार तक देख लिया था अर्थात् सम्पूर्ण विद्याओं में प्रवीणता को प्राप्त कर चुके थे। धर्म में उनकी बहुत अभिरुचि रहा करती थी इस कारण वृद्धावस्था को प्राप्त किये बिना ही ज्ञान के कारण उन्होंने वृद्धत्व को प्राप्त कर लिया था।

व्याख्या—राजा दिलीप पूर्ण युवावस्था को प्राप्त थे परन्तु उनमें विषयों के प्रति आसक्ति नहीं थी। सभी विद्याओं वेदादि शास्त्रों में पारंगत होने से ज्ञानवृद्ध थे। उनमें धर्म के आचरण में विशेष अभिरुचि थी अर्थात् वे धर्मवृद्ध थे। इस प्रकार उनमें वृद्धावस्था के बिना ही वृद्धत्व प्राप्त था अर्थात् वे वैराग्यवृद्ध, ज्ञानवृद्ध तथा धर्मवृद्ध थे। उनमें युवावस्था के अवगुणों का परिहार सर्वथा हो चुका था। वृद्धावस्था के प्रौढ़भाव युवावस्था में ही जागृत हो चुके थे।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द : पार—दृश्वनः पारं दृष्टवान् इति पारदृश्वा (उपपद.) तस्य, अनाकृष्टस्य—न, आकृष्टः—अनाकृष्टः—(नञ् तत्पु.) तस्य , धर्मरतेः—धर्मे रतिः यस्य सः ध र्मरतिः (ब.व्री.) तस्य ,जरसा—जरा + तृतीया ए. (जरायाः जरसादेशः), वृद्धत्वम्—वृद्धस्य भावः कर्म वा (वृद्ध +त्व), छन्द—अनुष्टुप्।

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः।।24।।

टिप्पणी

अन्वय–प्रजानाम् विनयाधानात्, रक्षणात्, भरणात्, अपि सः (तासाम्)पिता (आसीत्), तासां पितरः केवलं जन्महेतवः (आसन्)।

अनुवाद–समस्त प्रजावर्ग को नीतिशास्त्र आदि की शिक्षा देने के कारण, रक्षा करने के कारण, भरण–पोषण करने के कारण वस्तुतः वे राजा दिलीप ही उनके (पालनकर्ता) पिता थे और उन प्रजाओं के पिता तो केवल जन्म देने वाले मात्र थे।

व्याख्या–उसने (राजा दिलीप) ने अपने प्रजाजनों में विनय आदि गुण पैदा करने के लिए उनके शिक्षण की व्यवस्था की। उनकी रक्षा करने का दायित्व भी ग्रहण किया। अपने प्रजाजनों के भरण–पोषण के उत्तरदायित्व का निर्वाह किया। इस कारण वह अपनी प्रजा का वास्तव में पिता था। उनके प्रजाजनों के माता–पिता तो केवल जन्म देने के कारण ही माता–पिता (जनक) बने हुए थे।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–प्रजानाम–प्रकर्षेण जायन्ते इति (प्र+जन+ ड) प्रजाः तासाम्, विनयस्य आधानं विनयाधानं (षष्ठी तत्पुरुष) तस्मात् , पिता–पाति इति (पा+ तृ), जन्महेतवः–जन्मनः हेतवः (षष्ठी तत्पुरुष), छन्द–अनुष्टुप्।

स्थित्यै दण्डयतो दण्ड्यान्परिणेतुः प्रसूतये।
अप्यर्थकामौ तस्यास्तां धर्म एव मनीषिणः।।25।।

अन्वय–स्थित्यै दण्ड्यान् दण्डयतः, प्रसूयते परिणेतुः तस्य मनीषिणः अर्थकामौ अपि धर्म एव आस्ताम्।

अनुवाद–वह, राजा दिलीप केवल शान्ति रखने के लिये ही अपराधियों को दण्ड देते थे, केवल पितृ–ऋण से मुक्त कराने वाली सन्तान की प्राप्ति हेतु उन्होंने विवाह किया था, इस प्रकार उस मनीषी राजा के अर्थ और काम भी धर्म ही थे।

व्याख्या–राजा दिलीप के द्वारा अपने शासन की स्थिति ठीक बनाये रखने के लिए राज्य में लोक मर्यादा स्थापित करने के लिए दण्डित किये जाने योग्य अपराधियों को दण्ड देना तथा सन्तान उत्पत्ति के लिए पत्नी का परिग्रहण करना प्रमाणित करते हैं कि बुद्धिमान के लिए अर्थ और काम भी धर्म के ही कार्य थे। लोक व्यवस्था को सुचारु रखने के लिए ही राजा दिलीप अपराधियों को दण्ड देता था, अपने किसी अधिकार प्रदर्शन अथवा मिथ्या दम्भवश उन्हें दण्डित नहीं करता था। यदि वह अपराधियों को दण्डित नहीं करता, तो निश्चय ही लोक व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो जाती और अराजकता, अशान्ति और असन्तोष पैदा हो जाता। ताकि राजवंश अविच्छिन्न बना रहे–काम अर्थात् विवाहादि कार्य सन्तानोत्पत्ति के लिए प्रवृत्त होता था। अतः उसके दोनों ही अर्थपरक और कामपरक कार्य कर्त्तव्य पालन के रूप में उसके लिए धर्म का ही रूप था। कवि का कथन है कि अपराध के अनुसार दण्ड आदि की व्यवस्था करना धर्म है। श्राद्ध–तर्पण आदि क्रियाओं की पूर्ति के लिये पुत्रोत्पादन करना धर्म है। इस प्रकार राजा दिलीप के अर्थ और काम रूपी पुरुषार्थ भी धर्ममूलक ही थे। इस कारण वह राजा धर्मोत्तर था जैसा कि महर्षि गौतम ने बताया है "न पूर्वाह्णमध्यंदिनापराणानफलान्कुर्यात् यथाशक्ति धर्मार्थकामेभ्यस्तेषु धर्मोत्तरः स्यात्।" इति।

टिप्पणी

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—परिणेतुः—परिणयति (पति पत्नी को अग्नि के चारों ओर ले जाता है) इति (परि + नी+ तृ) परिणेता तस्य मनीषिणः—ईशाः अस्य अस्ति इति (ईशा इन्) ईशी, मनसः ईशिणः मनीशिणः (षष्ठी तत्पुरुष) (पृश्षोदरादि होने के कारण अस् का लोप) अर्थकामौ—अर्थः चः कामः च (द्वन्द्व), आस्ताम्—अस्+लङ् प्रथम. द्वि., दण्डयान् = दण्डम् अर्हन्ति इति (दण्ड् + य) दण्ड्याः तान् , दण्डयतः—दण्ड्. णिच् + शतृ षष्ठी एकवचन, छन्द—अनुष्टुप्।

दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मघवा दिवम्।
सम्पद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम्।।26।।

अन्वय—स यज्ञाय गां दुदोह, मघवा सस्याय दिवम् (दुदोह) (एवम्) उभौ सम्पद्विनिमयेन भुवनद्वयम् दधतुः।

अनुवाद—राजा दिलीप ने यज्ञ करने के लिये पृथ्वी का दोहन किया तथा इन्द्र ने धान्य के लिए आकाश का दोहन किया। इस प्रकार राजा दिलीप तथा राजा इन्द्र ये दोनों अपनी—अपनी सम्पत्ति का विनिमय करके दोनों लोकों का पालन करते थे।

व्याख्या—राजा ने यज्ञ के लिए पृथ्वी का दोहन किया। राजा दिलीप ने अपनी प्रजा से कर के रूप में संगृहीत धन को यज्ञकार्यों, भलाई के कार्यों में लगाकर, पृथ्वी से अर्थ का दोहन किया। दूसरी तरफ इन्द्र ने यज्ञ—याग आदि से प्रसन्न होकर आकाश को दुहा। इस प्रकार इन दोनों के द्वारा ही अपने—अपने लोक की सम्पत्ति का आदान—प्रदान करके दोनों लोकों का भली—भांति पोषण होने लगा। देवों को हवि और दिलीप की प्रजा को वर्षा का जल प्राप्त हुआ।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द : दुदोह—दुह्+लिट् प्रथम एकवचन, सम्पद्विनिमयेन—सम्पदः विनिमयः सम्पद्विनिमयः (षष्ठी तत्पुरुष) तेन , भुवनद्वयम्—द्वौ अवयवौ अस्य इति (द्वि+अयच्) द्वयम्, भुवनयोः = द्वयं (षष्ठी तत्पुरूश), दधतुः—धा+लिट् प्रथम पु. द्विवचन, यज्ञाय (यज्ञं कर्तुम्) तथा सस्याय (सस्यं वर्धयितुम्)—अप्रयुज्यमान तुमुन्नन्त के कर्म में चतुर्थी। गाम्—गो+ द्वितीया एकवचन, छन्दः—अनुष्टुप्।

न किलानुययुस्तस्य राजानो रक्षितुर्यशः।
व्यावृत्ता यत्परस्वेभ्यः श्रुतौ तस्करता स्थिता।।।27।।

अन्वय—राजानः रक्षितुः तस्य यशः न अनुययुः किल यत् तस्करता परस्वेभ्यः व्यावृत्ता श्रुतौ स्थिता (बभूव)।

अनुवाद—अन्य राजागण रक्षा करने वाले उस राजा दिलीप के यश का अनुकरण न कर सके क्योंकि राजा दिलीप के राज्य में चोरी दूसरों के धन से हट कर केवल सुनने में ही रह गई थी।

व्याख्या—अन्य देशों के राजा इस रक्षक के यश को प्राप्त नहीं कर सके थे, उस राजा दिलीप ने दूसरों के धन की चोरी करना नितान्त समाप्त कर दिया था। तस्करी (चोरी) तो मात्र कानों से सुनने तक ही रह गयी थी।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द : रक्षितुः—रक्षति इति (रक्ष् +तृ) रक्षिता तस्य , अनुययुः—अनु +या + लिट् प्रथम पु. ब., तस्करता—तस्करस्य भावः कर्म वा (तस्कर+तल्)—परस्वेभ्यः—परेषां स्वानि (षष्ठी तत्पुरुष) तेभ्यः , व्यावृत्ता—वि + आ वृ.+ क्त + टाप् (स्त्री), छन्दः—अनुष्टुप्।

द्वेष्योऽपि सम्मतः शिष्टस्तस्यार्तस्य यथौषधम्।
त्याज्यो दुष्टः प्रियोऽप्यासीदंगुलीवोरगक्षता। 128।।

अन्वय–शिष्टः द्वेष्यः अपि आर्तस्य यथा औषधं तस्य सम्मतः (आसीत्) दुष्टः प्रियः अपि उरगक्षता अंगुली इव (तस्य) त्याज्यः (अभूत्)।

अनुवाद–सज्जन पुरुष शत्रु होते हुए भी राजा दिलीप को उसी प्रकार प्रिय था जिस प्रकार औषधि कड़वी होते हुए भी रोगी को प्रिय होती है तथा कोई प्रिय व्यक्ति यदि दुष्ट होता था तो राजा उसे उसी प्रकार दूर कर देता था, जिस प्रकार विषधर साँप के द्वारा काट लिये जाने पर अंगुली को लोग काटकर फेंक देते हैं, दूर कर देते हैं।

व्याख्या–जिस तरह रोग से पीड़ित व्यक्ति के द्वारा औषधि (कटु होने पर भी) सेवन किये जाने योग्य होती है, उसी तरह उसके द्वारा सज्जन दुष्टता से युक्त होने पर भी सम्मान किये जाने योग्य होता था परन्तु सर्पदंश से दूषित बनी हुई विषयुक्त अंगुली की तरह दुष्ट व्यक्ति समाज को दूषित करने वाला व्यक्ति प्रिय होने पर उसके द्वारा त्यागने योग्य होता था।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–शिष्ट = शास् . क्त, द्वेष्यः–द्वेष्टुं योग्यः (द्विश्, य), आर्तस्य–आ .+ ऋ़+क्त (षष्ठी एक.) औषधम्–औषधिः एव (औषधि . (स्वार्थे) अण), सम्मतः–सम्. मन्. क्त , उरगक्षता–उरसा गच्छति इति उरगः (उपपद.), क्षण् (हिंसायां) + क्त टाप् क्षता, उरगेण क्षता (तृ. तत्पु.) त्याज्यः–त्यक्तुं योग्यः (त्यज्+ ण्यत्)।

तं वेधा विधे नूनं महाभूतसमाधिना।
तथाहि सर्वे तस्यासन्परार्थैकफला गुणाः।।29।।

अन्वय–नूनम् वेधाः तम् महाभूतसमाधिना विदधे, तथाहि तस्य सर्वे गुणाः परार्थैकफलाः आसन्।

अनुवाद–निश्चय ही ब्रह्मा ने जिस सामग्री से पंचमहाभूतों का निर्माण किया, उसी सामग्री से राजा दिलीप को बनाया था। यही कारण है कि उसके सम्पूर्ण गुणों का फल परोपकार के लिये ही था।

व्याख्या–कवि वर्णन करता है कि विधाता ने उसे उस राजा दिलीप को पंचमहाभूत के निर्माण में प्रयुक्त की जाने वाली विशेष सामग्री से निश्चय ही बनाया था क्योंकि उसके सभी गुण उसी प्रकार दूसरों की भलाई के निमित्त ही थे जैसे पंचमहाभूत परोपकार्थ होते हैं अर्थात् अपने सभी साधनों में अपनी सभी सम्पत्ति से, सभी गुणों से और सभी पदार्थों से प्रजारंजन प्राप्त करना ही उनका सफल उपयोग और परोपकार ही वह मानता था।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–वेधा–विदधाति इति, महाभूतसमाधिना–महान्ति भूतानि महाभूतानि (कर्म.) तेषां समाधिः महाभूतसमाधिः (षष्ठी तत्पुरुष) तेन , समाधिः–समाधीयते इति (सम्+ आ+धा+कि) (अच्छी प्रकार मिलाना, समाधीयते अनेन इति वा (कारण सामग्री), विदधे–वि़+धा (आत्मने.) + लिट् प्रथम ए., परार्थे.–परस्य अर्थः परार्थः (षष्ठी तत्पुरुष) एकं फलम्–एकफलं (कर्म.), परार्थः एव एकफलं येषां ते (ब. व्री.), छन्द–अनुष्टुप्, अलंकार–उपमा।

स वेलावप्रवलायां परिखीकृतसागराम्।
अनन्यशासनामुर्वीं शशासैकपुरीमिव।।30।।

टिप्पणी

अन्वय—सः वेलावप्रवलयाम् परिखीकृतसागराम् अनन्यशासनाम् उर्वीम् एकपुरीम् इव शशास।

अनुवाद—वह राजा दिलीप समुद्रतट रूपी रक्षा की दीवार से युक्त समुद्ररूपी परिखा से घिरी हुई, किसी दूसरे द्वारा शासन न की जाती हुई पृथ्वी को एक नगरी के समान शासित करता था।

टिप्पणी

व्याख्या—समुद्र तक विस्तृत और समुद्र द्वारा बनायी गई खाई से युक्त एवं अन्य किसी व्यक्ति द्वारा शासन न की जाती हुई सम्पूर्ण पृथ्वी पर एक नगर के शासन की भाँति वह दिलीप एक छत्र शासन करता था अर्थात् सारे भू—भाग पर राजा दिलीप सुविधापूर्वक आसानी से एक छत्र शासन करता था। मानो वह एक नगरी का ही शासन कर रहा हो। उसके शासित क्षेत्र में पूर्णतः शान्ति एवं सुव्यवस्था थी। कहीं भी अनुशासनहीनता एवं नियम कानून का उल्लंघन दिखाई नहीं देता था।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—परिखी.—परितः खाताः (परि + खन् ड) परिखा, परिखाः सम्पद्यमानाः कृताः इति परिखीकृताः (परिखा च्वि+ कृ + क्त परिखीकृताः सागराः यस्याः सा परिखीकृतसागराः (ब.व्री.) ताम्, अन्यस्य शासनम् अन्यशासनम् न विद्यते अन्यशासनम् यस्याः सा अनन्यशासना, ताम् अनन्यशासनाम्, वेलावप्राणि एव वलयः (वप्राणि वलयाः एव वा) इति वप्रवलयाः यस्या (कम.), वेलाः एव वप्रवलया सा वेलावप्रवलया (ब.वी.) ताम्, एका च असौ पुरी एकपुरी ताम् एकपुरीम, छन्द—अनुष्टुप्।

तस्य दाक्षिण्यरूढेन नाम्ना मगधवंशजा।
पत्नी सुदक्षिणेत्यासीदध्वरस्येव दक्षिणा।।31।।

अन्वय —मगधवंशजा दाक्षिण्यरूढेन नाम्ना अध्वरस्य दक्षिणा इव सुदक्षिणा इति तस्य पत्नी आसीत्।

अनुवाद—उसकी (उन राजा दिलीप की) पत्नी दक्षिणा के समान मगध वंश में उत्पन्न दया दाक्षिण्य आदि के कारण प्रसिद्ध सुदक्षिणा नाम वाली पत्नी थी।

व्याख्या—उस राजा दिलीप की पत्नी मगध कुल में उत्पन्न हुई थी। यज्ञ की पत्नी दक्षिणा अपने दक्षिणा गुण विशेष के कारण प्रसिद्ध है, उसी की भांति राजा दिलीप की पत्नी का नाम सुदक्षिणा प्रसिद्ध था।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—दाक्षिण्यरूढेन—दक्षिणस्य भावः दाक्षिण्यं (दक्षिण + श्यन्), तेन रूढं दाक्षिण्यरूढं (त. तेन), मगधवंशजा—मगधानां वंशः (षष्ठी तत्पुरुष), तस्मिन् जाता (उपपद.), छन्द—अनुष्टुप्, अलङ्कार—उपमा।

कलत्रवन्तमात्मानमवरोधे महत्यपि।
तया मेने मनस्विन्या लक्ष्म्या च वसुधाधिपः।।32।।

अन्वय —वसुधाधिपः महति अवरोधे (सति) अपि मनस्विन्या तया, लक्ष्म्या च आत्मानं कलत्रवन्तं मेने।

अनुवाद—वह राजा दिलीप निवास में अनेक रानियों के होते हुए भी उस मनस्विनी सुदक्षिणा तथा राज्य—लक्ष्मी के द्वारा ही अपने को स्त्री वाला समझता था।

व्याख्या—राजा दिलीप अपने अन्तःपुर वर्ग में अनेक सुन्दरियों के होने पर भी उस स्वाभिमानिनी सुदक्षिणा राज्यलक्ष्मी के द्वारा ही अपने आप को पत्नी से संयुक्त मानते

थे। तात्पर्य यह है कि राजा दिलीप के अंतःपुर में अन्य अनेक सुन्दरियाँ थीं, परन्तु वह उन्हें पत्नी रूप में मान्यता नहीं देता था वह राज्य लक्ष्मी तथा सुदक्षिणा को ही अपनी पत्नी रूप में अपनाने उसका पति कहलाने में गौरव का अनुभव करता था।

टिप्पणी

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–वसुधाऽधिपः वसूनि दधाति इति वसुधा (उपपद.), अधिकं पाति इति अधिपः (प्रादि) वसुधायाः अधिपः (ष. तत्पु.), अवरोधे–अवरुध्यन्ते अत्र (जहाँ स्त्रियाँ, सुरक्षित रूप में रोकी जाती हैं।) मनस्विन्या–प्रशस्तं मनः अस्या अस्ति इति मनस्विनी (मनन् + विन् + ङीप्) तया, कलत्रवन्तम्–कलत्रम् अस्य इति कलत्रवान् (कलत्र + मत्) तम् , मेने–मन् + लिट् प्रथम ए., छन्द–अनुष्टुप्।

तस्यामात्मानुरूपायामात्मजन्मसमुत्सुकः।
विलम्बितफलैः कालं स निनाय मनोरथैः।।33।।

अन्वय –सः आत्मानुरूपायाम् तस्याम् (सुदक्षिणायाम्) आत्मजन्मसमुत्सुकः (सन्) विलम्बितफलैः मनोरथैः कालम् निनाय।

अनुवाद–राजा दिलीप ने स्वानुरूप पत्नी सुदक्षिणा में अपने समान पुत्र की अभिलाषा करते हुये देर से मिलने वाले फल वाले मनोरथों से युक्त समय को व्यतीत किया।

व्याख्या–अपने ही रूप और गुण सम्पदा से संयुक्त उस सुदक्षिणा से पुत्र–उत्पत्ति रूपी फल प्राप्ति के मनोरथ से उत्सुकतापूर्वक उस राजा दिलीप ने बहुत समय व्यतीत किया।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–आत्मानुरूपायाम्–अनुगतं रूपं यस्याः सा अनुरूपा (ब.व्री.), आत्मनः अनुरूपा आत्मानुरूपा (षष्ठी तत्पुरुष), तस्याम्, आत्म.–आत्मनः (=स्वस्य) जन्म आत्मजन्म (षष्ठी तत्पुरुष), (पुत्ररूपेण) आत्मजन्मनि समुत्सकः (स.तत्पु.) (2) आत्मनः (=स्वस्मात्) जन्म यस्य असौ आत्मजन्मा (=पुत्रः) (ब.व्री.), जन्मनि (=पुत्रे) समुत्सुक (स. तत्पु.), विलम्बितः–विलम्बः संजातः अस्य इति विलम्बितं (विलम्बितं) (विलम्ब + इतच्), विलम्बितं फलं येषां ते विलम्बितफलाः (ब.व्री.) तैः , मनोरथैः मनसः रथाः मनोरथाः (ष. तत्पु.), तैः, छन्द–अनुष्टुप्।

संतानार्थाय विधये स्वभुजादवतारिता।
तेन धूर्जगतो गुर्वी सचिवेषु निचिक्षिपे।।34।।

अन्वय–तेन सन्तानार्थाय विधये स्वभुजात् अवतारिता जगतः गुर्वी धूः सचिवेषु निचिक्षिपे।

अनुवाद–उन राजा दिलीप ने सन्तान–प्राप्ति के लिये अनुष्ठान करने हेतु पृथ्वी का भारी बोझ अपनी भुजाओं से उतार कर मन्त्रियों को सौंप दिया गया अर्थात् मन्त्रियों ने कार्यभार ग्रहण किया।

व्याख्या–उस राजा दिलीप ने सन्तान प्राप्त करने के लिए यज्ञयागादि का अनुष्ठान इत्यादि का सम्पादन के लिए अपने कंधे से उतार कर संसार के शासन करने के भारी उत्तरदायित्व को मंत्रियों को सौंप दिया।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–विधये विधीयते इति (वि+धा+किः) विधये विधिं कर्तुम्। यहाँ अप्रयुज्यमान अतुमुन्नन्त के कर्म में चतुर्थी) स्वभुजात्–स्वस्य भुजः स्वभुजः (श. तत्पु.) तस्मात् , अवतारिता अव + तृ+ णिच् + क्त (स्त्री), सन्तानार्थाय (1) सन्तानस्य अर्थः संतानार्थः (षष्ठी तत्पुरुष) तस्मै, (2) सन्तानः अर्थः यस्य–सन्तानार्थः (ब.व्री.) तस्मै (यहाँ पर विधि का विशेषण है), गुर्वीगुरु + ङीश्, छन्द–अनुष्टुप्।

अथाभ्यर्च्य विधातारं प्रयतौ पुत्रकाम्यया।
तौ दम्पती वसिष्ठस्य गुरोर्जग्मतुराश्रमम्।।35।।

टिप्पणी

अन्वय–अथ प्रयतौ दम्पती पुत्रकाम्यया विधातारम् अभ्यर्च्य गुरोः वसिष्ठस्य आश्रमम् जग्मतुः।

अनुवाद–इसके अनन्तर वे दोनों पवित्रात्मा पति–पत्नी राजा दिलीप तथा रानी सुदक्षिणा, पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से ब्रह्मा की विधिवत् पूजा करके, कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में गये।

व्याख्या–इसके बाद राज्य भार को मंत्रियों को सौंपकर पवित्र आत्मा चरित्र वाले दोनों पति और पत्नी राजा दिलीप व महारानी सुदक्षिणा पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से ब्रह्मा जी की पूजा–अर्चना करके कुल–गुरु के आश्रम को गये।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–विधातारम्–विदधाति इति (वि + धा + तृ) विधाता तम् , अभ्यर्च्य–अभि + अर्च् + ल्यप् , प्रयतौ–प्र + यम् + क्त प्रथमा द्वि, तौ–सः च सा च (एकषेशद्वन्द्व)। दम्पती–जाया च पतिः इति जायापती, दम्पती वा (द्वन्द्व) (यहाँ पर जाया को जम् या दम् आदेश हो जाता है। इसमें पति का पहले प्रयोग होना चाहिए किन्तु राजदन्त आदि शब्दों में परिगणित होने के कारण जाया का प्रयोग पहले होता है। दम्पती की व्युत्पत्ति दम (=गृह) तथा पति से की जा सकती है। तब इसका अर्थ होगा घर का मालिक। वेद में इस का एकवचन में प्रयोग होता है किंतु साहित्य में इसका प्रयोग द्विवचन में ही होता है। तब इसका अर्थ होगा घर के दो मालिक अर्थात् पति और पत्नी पुत्रकाम्यया (1) पुत्रस्य काम्या (श. तत्पु.) तया, (2) पुत्रम् आत्मनः इच्छति इति पुत्रकाम्यति (पुत्र + काम्यच्), 'पुत्रकाम्य (नामधातु) + (भावे) अ' इति पुत्रकाम्या, तया, छन्द–अनुष्टुप्।

स्निग्धगम्भीरनिर्घोषमेकं स्यन्दनमास्थितौ।
प्रावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावताविव।।36।।

अन्वय–स्निग्धगम्भीरनिर्घोशम् एकम् स्यन्दनम् आस्थितौ तौ प्रावृषेण्यम् पयोवाहम् विद्युदैरावतौ इव (जग्मतुः)।

अनुवाद–वे दोनों राजा दिलीप तथा रानी सुदक्षिणा मधुर और गम्भीर शब्द करने वाले एक रथ पर आरूढ़ होकर चले, तो ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो वर्षा ऋतु के मेघ पर बिजली के साथ ऐरावत आरूढ़ होकर जा रहा हो।

व्याख्या–वे दोनों सुदक्षिणा और दिलीप प्रिय और मधुर मंद ध्वनि करने वाले रथ पर एक साथ ही वर्षा काल वाले मेघ पर विद्युत् और ऐरावत की भांति संग–संग विराजमान थे।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–स्यन्दनः–स्यन्दते इति (तेजी से चलता है), प्रावृषेण्यम्–प्रावृशि (वर्शर्तौ) भवः (प्रावृश् + एण्य) तम्, पयोवाहम्–पयांसि वहति इति पयोवाह (उपपद.) तम्, विद्युदै.–विशेषेण द्योतते इति विद्युत् (प्रादि तत्पु.), इराः (जलानि) सन्ति अस्मिन् इति इरावान् (इरा + मतुप्), इरावति, वः ऐरावतः (इरावत् + अण्), विद्युत् च ऐरावतः च विद्युदैरावतौ (द्वन्द्व)। स्निग्धगम्भीरनिर्घोशम्–स्निग्धः च असौ गम्भीरः च स्निग्धगम्भीरः तम् (कर्म.), तादृशः निर्घोषः यस्य सः स्निग्धगम्भीरनिर्घोषः (ब.व्री.) तम्, **छन्द**–अनुष्टुप्, अलंकार–उपमा।

मा भूदाश्रमपीडेति परिमेयपुरःसरौ।
अनुभावविशेषात्तु सेनापरिवृताविव।।37।।

टिप्पणी

अन्वय—(पुनः कथम्भूतौ तौ?) आश्रमपीडा मा भूत् इति (हेतोः) परिमेयपुरःसरौ तु अनुभावविशेषात् सेनापरिवृतौ इव (स्थितौ)।

अनुवाद—आश्रम में किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित न हो इस कारण राजा दिलीप थोड़े से अनुचरों को साथ में लिये हुए थे परन्तु वे अपने अलौकिक तेज के कारण सेना में घिरे हुये से प्रतीत होते थे।

व्याख्या—आश्रमवासियों को किसी भी भांति पीड़ा न हो, इस विचार से बहुत ही कम संख्या में (सीमित संख्या) में सेवकों को उन्होंने सुदक्षिणा और राजा दिलीप ने अपने साथ लिया। परन्तु यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि उनके साथ आने वाले कम संख्या वाले सेवक होने पर भी उनकी तेजस्विता से उस राज—परिवार को चारों ओर से घेरे हुए सेना जैसे लग रहे थे।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द : परिमेयपुरःसरौ—परिमायितुं योग्याः इति (परि+मा+यत्) परिमेयाः, पुरः सरन्ति इति पुरःसरा (गति तत्पु.), परिमेयाः पुरस्सराः ययोः तौ (ब.व्री.)। अनुभाव.—विशेषः च असौ अनुभावः अनुभावविशेषः (कर्म.) अनुभावस्य विशेषः (अतिषयः) अनुभावविशेषः (षष्ठी तत्पुरुष) तस्मात्, सेनापरिवृत्तौ—परितः वृतः परिवृतः (परि +वृ + क्त), आश्रमपीडा—आश्रमस्य पीड़ा (षष्ठी तत्पुरुष), मा भूत—मा + भू (आषीरर्थ) लुङ् प्रथम ए.व. (माङ् के योग में आषी के अर्थ में लुङ् लकार होता है और अट् नहीं होता), सेनया परिवृतः सेनापरिवृतः (तृ.तत्पु.) तौ, छन्द—अनुश्टुप् ,अलङ्कार—उत्प्रेक्षा।

सेव्यमानौ सुखस्पर्शः शालनिर्यासगन्धिभिः।
पुष्परेणूत्किरैर्वातैराधूतवनराजिभिः।।38।।

अन्वय —(पुनः कथम्भूतौ तौ?) सुखस्पर्शैः शालनिर्यासगन्धिभिः पुश्परेणूत्किरैः आधूतवनराजिभिः वातैः सेव्यमानौ (जग्मतुः)।

अनुवाद—स्पर्श मात्र से ही सुख प्रदान करने वाली, शालवृक्षों की गोंद से सुगन्धित तथा पुष्पों के पराग से परिपूर्ण और वनवृक्षों को धीरे—धीरे हिलाने वाली वायु ने जाते हुए राजा—रानी की मार्ग में सेवा की।

व्याख्या—कुलगुरु वसिष्ठ के आश्रम को जाते हुए सुदक्षिणा और दिलीप सुखस्पर्श वाली शालवृक्षों की गंध से सुगन्ध युक्त पुष्पों के पराग कणों को बिखेरने वाली तथा वनराजियों को मन्द कम्पन देने वाली वायु के द्वारा सुसेवित थे।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—सुखः (शीतलत्वात् प्रियः) स्पर्शः येषां ते सुखस्पर्शाः (ब.व्री.) तैः , पुष्प. त्र पुष्पाणां रेणवः पुष्परेणवः (श. तत्पु), तान् उत्किरन्ति (=क्षिपन्ति) इति पुष्परेणूत्किराः (उपपद.) तैः, शाल.—शालेभ्यः निर्यासाः शालनिर्यासाः (षष्ठी तत्पुरुष), तेषां गन्धः शालनिर्यासगन्धः (षष्ठी तत्पुरुष) सः अस्ति येषु ते शालनिर्यासगन्धिनः (शालनिर्यागसन्ध + इन्) तैः, आधूत.—ईषद् धूताः (प्रादि तत्पु.), वनस्य राजयः वनराजयः (षष्ठी तत्पुरुष) आधूताः वनराजयः यैः ते आधूतवनराजयः (ब.व्री.) तैः, सेव्यमानौ—सेव् + (कर्मणि) यक् = शानच् प्रथम द्वि., छन्द—अनुष्टुप्।

मनोभिरामाः शृण्वन्तौ रथनेमिस्वनोन्मुखैः।
भाड्जसंवादिनीः केका द्विधा भिन्नाः शिखण्डिभिः।।39।।

टिप्पणी

अन्वय—(पुनः कथम्भूतौ तौ?) रथनेमिस्वनोन्मुखैः शिखण्डिभिः द्विधा भिन्ना षड्जसंवादिनीः मनोभिरामाः केकाः शृण्वन्तौ (तौ जग्मतुः)।

अनुवाद—रथ के पहियों से निकलते हुए गम्भीर शब्द को मेघ—ध्वनि समझते हुए ऊपर को मुख उठाये हुए मयूरों की षड्ज स्वर के समान गम्भीर एवं मनोहर (केका) वाणी को सुनते हुए वे दोनों मार्ग में चले जा रहे थे।

व्याख्या—रथ की नेमि से उत्पन्न ध्वनि को सुनकर ऊपर को अपने सिर को उठाये हुए मयूरों के द्वारा शुद्ध और अशुद्ध (स्पष्ट तथा अस्पष्ट) दो रूप वाली छः स्थानों से उत्पन्न होने वाली एवं मन को आकर्षित करने वाली, मोर के कण्ठ से उत्पन्न वाणी को सुनते हुए वे दोनों सुदक्षिणा और दिलीप वसिष्ठ के आश्रम की ओर गये।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—पिषिखण्डिभिः—षिखण्डः (मयूरमुच्छ) अस्ति अस्य सः षिखण्डी (षिखण्डः + इन्) तैः, द्विधा—द्वि. (रिधार्थ) धा, भिन्नाः—भिद् + क्त द्वितीया ब, मनोऽभिरामाः—अभिरमतो मनो यासु ताः अभिरामाः मनसः अभिरामाः (षष्ठी तत्पुरुष), षड्ज.—षड्भ्यः (स्थानेभ्यः) जातः षड्जः (उपपद.) संवदितुं शीलम् अस्ति आसाम् इति संवादिन्यः षड्जेन संवादिन्यः षड्जसंवादिन्य (तृ. तत्पु.) ताः, केकाः—के (—मूर्धनि) कायन्ति (ध्वनन्ति) इति (उपपद.), शृण्वन्तौ—श्रु+शतृ प्रथमा द्वि., रथनेमिस्वनोन्मुखैः—रथस्य नेमी (—चक्रप्रान्तौ) रथनेमी (षष्ठी तत्पुरुष), तयोः स्वनः रथनेमिस्वनः (षष्ठी तत्पुरुष) तेन उद्गतं मुखं येषां ते उन्मुखाः (ब.व्री.), रथनेमिस्वनेन (हेतौ तृतीया) उन्मुखाः रथनेमिस्वनोन्मुखाः (तृ.तत्पु.) तैः, छन्द—अनुष्टुप्।

परस्पराक्षिसादृश्यमदूरोज्झितवर्त्मसु।
मृगद्वन्द्वेषु पश्यन्तौ स्यन्दनाबद्धदृष्टिषु।।40।।

अन्वय—(पुनः कथम्भूतौ तौ?) मयूरोज्झितवर्त्मसु स्यन्दनाबद्धदृष्टिशु मृगद्वन्द्वेषु परस्पराक्षिसादृश्यम् पश्यन्तौ (जग्मतुः)।

अनुवाद—मार्ग से थोड़ी दूर पर स्थित रहने वाले, रथ पर टकटकी लगाकर देखने वाले हरिणों के जोड़ों में वे दोनों एक दूसरे के नेत्र की समानता देखते हुए चले जा रहे थे।

व्याख्या—समीप आकर और मार्ग के निकट महारानी सुदक्षिणा और राजा दिलीप के रथ पर दृष्टि गढ़ा कर देखने वाले मृग—मृगी के मिथुन जोड़े के नेत्रों में अपने (एक दूसरे के नेत्रों में रूप सादृश्य को देखते हुए वे दोनों सुदक्षिणा और दिलीप मुनि वसिष्ठ के आश्रम को चले जा रहे थे।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—अदूरोज्झितवर्मसु—न दूरम् अदूरम् (नञ् तत्पु.), अदूरं यथा स्यात् तथा उज्झितम् अदूरोज्झितं (कर्म.) अदूरोज्झितं वर्त्म यैः तानि अदूरोज्झितवर्त्मानि (ब.व्री.) तेषु, स्यन्दना.—आ समन्तात् बद्धाः आबद्धाः (प्रादि.), स्यन्दने आबद्धाः (स. तत्पु.), स्यन्दनाबद्धाः दृष्टयः यैः तानि स्यन्दनाबद्धदृष्टयः (ब.वी.) तेशु , मृगद्वन्द्वेषु—मृग्यः च मृगाः च इति मृगा (एकषेश.), तेषां द्वन्द्वानि (षष्ठी तत्पुरुष समास) तेषु , परस्परा.—सदृशस्य भावः सादृश्यम्, अक्ष्णः सादृश्यम् अक्षिसादृश्यं (षष्ठी तत्पुरुष), (कर्मव्यतिहारे द्योत्ये) परः पर इति परस्परः तस्य परस्परस्य, परस्परस्य अक्षिसादृश्यं परस्पराक्षिसादृष्यं (श्यं.तत्पु, षष्ठी तत्पुरुष), पश्यन्तौ—दृष् + शतृ प्रथमा द्वि., छन्द—अनुष्टुप्।

श्रेणीबन्धाद्वितन्वद्भिरस्तम्भां तोरणस्रजम्।
सारसैः कलनिर्ह्रादैः क्वचिदुन्नमिताननौ।।41।।

अन्वय—(पुनः कथम्भूतौ तौ?) श्रेणीबन्धात् अस्तम्भाम् तोरणस्रजम् वितन्वद्भिः कलनिर्ह्रादैः सारसैः क्वचित् उन्नमिताननौ (जग्मतुः)।

अनुवाद—पंक्ति बाँध कर सुन्दर शब्द करते हुए तथा आकाशमार्ग से उड़ते हुए सारस पक्षियों को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो वे बिना खम्भे के सजी हुई वन्दनमालाएं हों जिन्हें देखने के लिये ऊपर की ओर मुख किये हुए वे दोनों चले जा रहे थे।

व्याख्या—पंक्तिबद्ध आधार—रहित तोरण—माला सी बनाये हुये अव्यक्त मधुर स्वर करने वाले सारस पक्षियों को जहाँ—तहाँ मार्ग में ऊपर को मुख उठाकर देखते हुए महारानी सुदक्षिणा और राजा दिलीप वसिष्ठ के आश्रम को चले जा रहे थे। साधारणतया यह परम्परा है कि किसी विशिष्ट व्यक्ति के आने पर वन्दन वार सजाये जाते हैं, स्तम्भों में मालायें आदि लगा कर बहिद्वार का निर्माण किया जाता है। यहाँ पर कवि उत्प्रेक्षा करते हैं कि राजा के आने पर पंक्तिबद्ध होकर उड़ते हुए सारस पक्षी ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो उनके स्वागत में बिना खम्भों के बने हुए द्वार पर मालायें लटक रही हैं।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—श्रेणी.—श्रेण्याः बन्धः श्रेणीबन्धः (षष्ठी तत्पुरुष.) तस्मात् (हेतौ पंचमी) , अस्तम्भाम्—न विद्यन्ते स्तम्भाः यस्याः सा अस्तम्भा (ब.व्री.) ताम् ,तोरण. —तोरणस्य स्रक् तोरणस्रक (षष्ठी तत्पुरुष) ताम् , वितन्वद्भिः—वि + तन् + शतृ तृतीया व. , कलनिर्ह्रादैः—कलः निर्ह्रादः येषां ते कलानिर्ह्रादाः (ब.वी.) तैः , क्व (कस्मिन् इति अर्थे) किम् + सप्तमी = क्व अत्, सारसैः—करण में तृतीया , उन्नमिता.—उन्नमिते आनने ययोः तौ (ब.व्री.), छन्द—अनुष्टुप्। यहाँ पर व्यञ्जक शब्द के अभाव में भी उत्प्रेक्षा मानने के कारण गम्योत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

पवनस्यानुकूलत्वात्प्रार्थनासिद्धिशंसिनः।
रजोभिस्तुरगोत्कीर्णैरस्पृष्टालकवेष्टनौ।।42।।

अन्वय—(पुनः कथम्भूतौ तौ?) प्रार्थनासिद्धिषंसिनः पवनस्य अनुकूलत्वात् तुरगोत्कीर्णैः रजोभिः अस्पृष्टालकवेष्टनौ (जग्मतुः)।

अनुवाद—प्रार्थना की सफलता को सूचित करने वाली वायु की गति अनुकूल होने के कारण घोड़े के खुरों के द्वारा उठाई गई धूलि, रानी सुदक्षिणा के बालों तथा राजा दिलीप की पगड़ी को स्पर्श न कर सकी।

व्याख्या—मनोरथ की सिद्धि पूर्ण होने की सूचक पवन के अनुकूल दिशा में बहने के कारण घोड़े के पैरों की गति से उठी हुई धूल के कण महारानी सुदक्षिणा के कण तथा राजा दिलीप की शिरस्त्राण पगड़ी इत्यादि स्पर्श नहीं पा रहे थे, धूल से गंदे नहीं हो रहे थे। पवन का अनुकूल होना राजा के मनोरथ सिद्धि की सूचना दे रहा है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—प्रार्थना—प्रार्थनायाः सिद्धिः प्रार्थनासिद्धिः (षष्ठी तत्पुरुष) (षष्ठी तत्पुरुष) तां शंसितुं शीलम् यस्य तस्य, प्रार्थनासिद्धिषंसी (उपपद.) तस्य ,तुरगो. —तुरगैः उत्कीर्णानि तुरगोत्कीर्णानि (तृतत्पु.) तैः, उत्कीर्ण—उत् + कृ + क्त, अस्पृष्टा.—न स्पृष्टम् अस्पृष्टम् (नञ् तत्पु.) अलकाः च वेष्टनं च (द्वन्द्व) अस्पृष्टम् अलकावेष्टनं ययोः तौ (ब.वी.), अनुकूलत्वात्—अनुकूलस्य भाव अनुकूलत्वं (अनुकूल + त्व) तस्मात्, छन्द—अनुष्टुप्।

टिप्पणी

सरसीष्वरविन्दानां वीचिविक्षोभशीतलम्।

आमोदमुपजिघ्रन्तौ स्वनिःश्वासानुकारिणम्।।43।।

टिप्पणी

अन्वय—(पुनः कथम्भूतौ तौ?) सरसीषु वीचिविक्षोभशीतलम् स्वनिःश्वासानुकारिणम् अरविन्दानाम् आमोदम् उपजिघ्रन्तौ (जग्मतुः)।

अनुवाद—सरोवरों की लहरों के सम्पर्क से शीतल अपने निःश्वास का अनुकरण करने वाले कमलों की सुगन्ध को सूंघते हुए वे दोनों चले जा रहे थे।

व्याख्या—(वसिष्ठ के आश्रम को जाने वाले मार्गों के प्रान्तर में स्थित) सरोवरों में तरंगों के स्पर्श से शीतल बनी हुई परस्पर एक दूसरे (सुदक्षिणा और दिलीप) की निःश्वास का अनुकरण करने वाली कमलों की सुगन्ध को सूंघते हुए (सुदक्षिणा और राजा दिलीप) (वशिष्ठ के आश्रम की ओर चले जा रहे थे)।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—वीचिविक्षोभशीतलम्—वीचीनां विक्षोभः वीचिविक्षोभः , श्वासानुकारी (उपपद.) तम्, स्वनिःश्वासाः—स्वस्य निःश्वासः, स्वनिःश्वासः (श.तत्पु.) तम् अनुकर्तुं, उपजिघ्रन्तौ—उप. शतृ प्रथम द्वि., छन्द—अनुष्टुप्।

ग्रामेष्वात्मविसृष्टेषु यूपचिह्नेषु यज्वनाम्।

अमोघाः प्रतिगृह्णन्तावर्घ्यानुपदमाशिषः।।44।।

अन्वय—आत्मविसृष्टेशु यूपचिह्नेषु ग्रामेषु यज्वनाम् अमोघाः आशिषः अनुपदम् प्रतिगृह्णन्तौ (तौ जग्मतुः)।

अनुवाद—स्वयं दान में दिये हुए यज्ञ के खंभों से चिह्नित गाँवों में अर्घ्य प्राप्त करने के अनन्तर यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणों के असफल न होने वाले आशीर्वादों को लेते हुए वे दोनों चले जा रहे थे।

व्याख्या—यूप चिह्न से युक्त यज्ञानुष्ठान के उपरान्त दान में दिये गये ग्रामों के ब्राह्मणों के शुभ आशीष वचनों से अभिनन्दित होते हुए अर्घ्य आदि द्वारा आदर सत्कार ग्रहण करते हुए वे दोनों (रानी सुदक्षिणा और राजा दिलीप) अपने कुलगुरु वसिष्ठ के आश्रम को चले जा रहे थे।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—यूपचिह्नेषु—यूपाः एव चिह्नानि येषां ते ते यूपचिह्नाः (ब.व्री.) तेशु, यज्वनाम्—विधिना इश्ट्वान् (यज्—वनिप्) इति यज्वा तेषाम्, अमोघाः—न मोघाः (नञ् तत्पु.), आत्मविसृष्टेषु—आत्मना विसृष्टाः आत्मविसृष्टाः (तृ.तत्पु.) तेषु, छन्द—अनुष्टुप्।

हैयङ्गवीनमादाय घोषवृद्धानुपस्थितान्।

नामधेयानि पृच्छन्तौ वन्यानां मार्गशाखिनाम्।।45।।

अन्वय —हैयङ्गवीनम् आदाय च उपस्थितान् घोषवृद्धान् वन्यानाम् मार्गशाखिनाम् नामधेयानि पष्च्छन्तौ (तौ जग्मतुः)।

अनुवाद—स्वच्छ नवीन मक्खन को लेकर आये हुए गाँव के वृद्ध गोपों से मार्ग में पड़ने वाले जगंली वृक्षों के नाम पूछते हुए, वे दोनों चले जा रहे थे।

व्याख्या—सद्योनिर्मित मक्खन लेकर उपस्थित होने वाले बड़े—बूढ़े ग्वालों से वन में मार्ग के आस—पास उगने वाले वृक्षों के नाम पूछते हुए महारानी सुदक्षिणा और राजा दिलीप वशिष्ठ के आश्रम को चले जा रहे थे।

टिप्पणी

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–हैयङ्गवीनम्–दुह्यते इति दोहः (दुग्धम्), गवाम् दोहः गोदोहः (श.तत्पु.), ह्यः (पूर्वेद्युः) भवः ह्यस्तन, ह्यस्तनः गोदोहः ह्यस्तनगोदोहः ह्योगोदोहः वा (कर्म, मध्यमपदलोपी कर्मत्र वा.), ह्यस्तनगोदोहस्य ह्योगोदोहस्य, विकारः ह्यस्तनगोदोह अथवा ह्योगोदोह + निपातन से ह्यस्तनगोदोह को या ह्योगोदोह को हियङ्गु आदेश हुआ और हैयङ्गवीन रूप बना, आदाय–आ + दा + ल्यप् ।छन्द–अनुष्टुप्।

काप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतोः शुद्धवेषयोः।
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव।। 46।।

अन्वय–व्रजतोः शुद्धवेषयोः तयोः हिमनिर्मुक्तयोः चित्राचन्द्रमसोः इव योगे (सति) काऽपि अभिख्या आसीत्।

अनुवाद–जाते हुए शुद्ध सुन्दर श्वेत वस्त्रों से सुसज्जित उन राजा दिलीप तथा रानी सुदक्षिणा की हेमन्त ऋतु के समाप्त हो जाने के अनन्तर चित्रा नक्षत्र तथा चन्द्रमा के योग होने पर जैसी शोभा प्रतीत होती है, ऐसी मार्ग में उन दोनों की भी शोभा प्रतीत हो रही थी।

व्याख्या–शुद्ध वेश धारण करने वाले एवं वसिष्ठाश्रम को जाने वाले उन दोनों (सुदक्षिणा और राजा दिलीप) की शोभा कोहरे से मुक्त हुए चित्रा नक्षत्र और चन्द्रमा के संयोग से उत्पन्न शोभा के समान अकथनीय थी।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–व्रजतोः–वृज् + शतृ + षष्ठी द्वि., योगे–युग + भावे घञ् सप्तमी ए., शुद्धवेषयोः–शुद्धः वेषः ययोः शुद्धवेषौ (ब.व्री.) तयोः , तयोः–सा च सः च तौ (एकषेश) तयोः , हिमेन निर्मुक्तौ हिमनिर्मुक्तौ तयोः हिमनिर्मुक्तयोः, चित्रा च चन्द्रमाः च चित्राचन्द्रमसौ तयोः चित्राचन्द्रमसोः, छन्द–अनुप्, अलङ्कार–उपमा।

तत्तद्भूमिपतिः पत्न्यै दर्शयन्प्रियदर्शनः।
अपि लङ्घितमध्वानं बुबुधे न बुधोपमः।।47।।

अन्वय –बुधोपमः प्रियदर्शनः भूमिपतिः पत्न्यै तत् तत् दर्शयन् लङ्घितम् अपि अध्वानम् न बुबुधे।

अनुवाद–विद्वान् एवम् प्रियदर्शन राजा दिलीप अपनी पत्नी को मार्ग की भिन्न–भिन्न वस्तुएं दिखलाते हुए पीछे छोड़े हुए मार्ग को भी न जान सके।

व्याख्या–विद्वानों के समान सुन्दर आकृति वाले राजा को अपनी पत्नी सुदक्षिणा को मार्ग के पेड़–पौधे सरोवर के कमल तथा पशु–पक्षी आदि को दिखाते हुए (इन सबका वर्णन करते हुए) मार्ग की यात्रा पूर्ण करते हुए भी उन्हें मालूम नहीं हो सकी।

कहने का तात्पर्य यह है कि वशिष्ठाश्रम तक के मार्ग की यात्रा में उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ। मार्ग कैसे बीत गया, यह पता ही नहीं चला। मार्ग के सभी प्राकृतिक उपादानों का वर्णन करते हुए यात्रा सुखद थी।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–प्रियम् दर्शनम् यस्य सः प्रियदर्शनः, बुधोपमः–बुधः उपमा यस्य सः (ब.व्री.), भूमिपतिः–भूमेः पति (ष. तत्पु.), दर्शयन्दृश् + णिच् + शतृ + प्रथम ए., छन्द–अनुष्टुप्, अलंकार–उपमा।

स दुष्प्रापयशाः प्रापदाश्रमं श्रान्तवाहनः।
सायं संयमिनस्तस्य महर्षेर्महिषीसखः।।48।।

टिप्पणी

अन्वय—दुष्प्रापयशाः श्रान्तवाहनः महिषीसखः सः सायं तस्य संयमिनः महर्षेः आश्रमम् प्रापत्।

अनुवाद—दुर्लभ यश वाले तथा थके हुए घोड़ों वाले राजा दिलीप पत्नी सुदक्षिणा के साथ सायंकाल संयमी महर्षि वसिष्ठ के आश्रम पर पहुंचे।

व्याख्या—दुर्लभ कीर्तिवाले एवं थके हुए घोड़ों वाले महारानी सुदक्षिणा सहित वे राजा दिलीप नियम संयम से रहने वाले उस ऋषिश्रेष्ठ के आश्रम में सायंकाल में पहुँचे।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—दुष्प्रापयशाः—दुःखेन प्राप्तुं शक्यं दुष्प्राप्यं (दुस + प्र आप् + खल्), दुष्प्रापं यशः यस्य सः (ब.व्री.)। श्रान्त—श्रम् + क्त। श्रान्त.—वाहयति इति वाहनं (वह्+णिच्+ल्युट्), श्रान्तानि वाहनानि यस्य सः (ब.व्री.)। महिषीसखः—महिष्याः सखा (श.तत्पु.)। संयमिनः—संयमः अस्य अस्ति इति संयमी (संयम + इन्) तस्य। महर्षेः—महान् च असौ ऋषिः च महर्षिः (कर्म.) तस्य। प्रापत्—प्र + आप् + लुङ् प्रथम ए.। छन्द—अनुष्टुप्।

वनान्तरादुपावृत्तैः समित्कुशफलाहरैः।
पूर्यमाणमदृश्याग्निप्रत्युद्यातैस्तपस्विभिः।।49।।

अन्वय —वनान्तरात् उपावृत्तैः समित्कुशफलाहारैः अदृश्याग्निप्रत्युद्यातैः तपस्विभिः पूर्यमाणम्(इत्थम्भूतम् आश्रमम्)।

अनुवाद—दूसरे—दूसरे वनों के मध्य से लौटते हुए समिधा, कुश और फल लिये हुए अदृश्य अग्नि से स्वागत किये जाते हुए तपस्वियों से वह वसिष्ठ का आश्रम पूर्ण हो रहा था।

व्याख्या—अन्य—अन्य वनों से लौटकर आने वाले समिधा, कुश और फल इत्यादि लाने वाले यज्ञ की अदृश्य अग्नियों के द्वारा आनन्दित तपस्वियों से महर्षि वसिष्ठ का आश्रम भरा जा रहा था।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—समिधश्च कुशाश्च फलानि च समित्कुशफलानि, समित्कुशफलानि आहर्तुम् शीलम् येषाम् ते समित्कुषफलाहराः, तैः समित्कुषफलाहरैः। न द्रष्टुम् योग्याः, न दृश्याः अदृश्याः अदृश्याष्च ते अग्नयः अदृश्याग्न्यः, अदृश्याग्निभिः प्रत्युद्याताः इति अदृश्याग्निप्रत्युद्याता, तैः अदृष्याग्निप्रत्युद्यातैः। तपः अस्ति येषाम् ते तपस्विनः तैः तपस्विभि। वनान्तरात् अन्यत् वनं वनान्तरं (कर्म.) तस्मात् (यह मयूर—व्यंस्क आदि की तरह का नित्य समास है। नित्यसमास का विग्रह नहीं होता। उसका तथा कथित विग्रह केवल भाषान्तर होता है। अन्तर शब्द भिन्न अर्थ को प्रकट करता है।) उपावृत्त—उप + धा + वृत्त + क्त। छन्द—अनुष्टुप्।

आकीर्णमृषिपत्नीनामुटजद्वाररोधिभिः।
अपत्यैरिव नीवारभागधेयोचितैर्मृगैः।।50।।

अन्वयः —(पुनः किम्भूतम् आश्रमम्?) नीवारभागधेयोचितैः उटजद्वाररोधिभिः (अत एव) ऋषिपत्नीनाम् अपत्यैः इव मृगैः आकीर्णम्।

अनुवाद.—नीवार नामक धान्य के भाग को पाने वाले ऋषियों की कुटियों का द्वार रोकने वाले ऋषिपत्नियों द्वारा पुत्रों के समान पाले गये मृगों से वह आश्रम भरा हुआ था।

टिप्पणी

व्याख्या—नीवार के जंगली सवां के दानों के भाग को प्राप्त करने के अभ्यस्त एवं पर्ण कुटीर के द्वार पर ही ऋषि पत्नियों के द्वारा अपनी सन्तान की भांति पाले—पोशे मृगों से व्याप्त उस वसिष्ठ ऋषि के आश्रम को देखा।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द : नीवारभागधेयोचितैः भागः एव भागधेयः (भाग + (स्वार्थ) धेय—भाग, रूप तथा नाम से स्वार्थ में धेय प्रत्यय होता है अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता), नीवाराणां भागधेयः नीवारभागधेयः (ष.तत्पु.), तस्य उचिताः नीवारभागधेयोचिताः (श.तत्पु.) तैः। उटज—उटजानां द्वाराणि उटजद्वाराणि (ष.तत्पु.), तानि रोद्धुं शीलम् येषां ते उटजद्वाररोधिनः, (उपपद.) तैः। ऋषि.—ऋषीणां पत्न्यः ऋषिपत्न्यः (ष.तत्पु.) तासाम्। आकीर्ण—आ + कृ+ क्त। छन्द—अनुष्टुप्। **अपत्यैरिव**—अलंकार—उत्प्रेक्षा।

सेकान्ते मुनिकन्याभिस्तत्क्षणोज्झितवृक्षकम्।
विश्वासाय विहङ्गानामालवालाम्बुपायिनाम्।।51।।

अन्वय —आलवालाम्बुपायिनाम् विहङ्गानाम् विश्वासाय मुनिकन्याभिः सेकान्ते तत्क्षणोज्झितवृक्षकम् (आश्रमं प्रापत्)।

अनुवाद—क्यारी (थांवलों) के पानी को पीने वाले पक्षियों के विश्वास के लिए सींचने के अनन्तर मुनिकन्याओं के द्वारा तत्क्षण छोड़े गये वृक्षों वाले आश्रम में राजा दिलीप रानी सुदक्षिणा सहित पहुंचे।

व्याख्या—महारानी सुदक्षिणा और दिलीप ने उस आश्रम को देखा जिसमें मुनिकन्याओं ने सिंचाई के उपरान्त आल—वाल पर स्थित जल बिन्दुओं को पीने वाले पक्षियों के विश्वास के लिए उसी समय पेड़—पौधों की समीपता छोड़ दी थी।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—सः चासौ क्षणश्च तत्क्षणः तत्क्षणे उज्झिता इति तत्क्षणोज्झिताः, तत्क्षणोज्झिताः वृक्षकाः येषु सः तत्क्षणोज्झितवृक्षकः तम् तत्क्षणोज्झितवृक्षकम्। आलवाला. —आ (समन्तात्) लवं (जललवं) आलाति (गृह्णाति) इति आलवाल (आ + लव + ला + क) (उपपद.), तेषु अम्बु आलवालाम्बु (स.तत्पु.) तत् पातुं शीलम् येषां ते आलवालाम्बुपायिनः (उपपद.) तेषाम्। विहङ्गानाम्—विहायसा विहायसि वा गच्छति (खच् प्रत्यय विहायस् को विह तथा उपपद समास) इति विहंगाः तेषाम्। छन्द—अनुष्टुप्।

आतपात्ययसंक्षिप्तनीवारासु निषादिभिः।
मृगैर्वर्तितरोमन्थमुटजाङ्गणभूमिषु।।52।।

अन्वय—आतपात्ययसंक्षिप्तनीवारासु उटजाङ्गणभूमिषु निशादिभिः मृगैः वर्तितरोमन्थम् (आश्रमं प्रापत्)।

अनुवाद—धूप के चले जाने पर एकत्रित करके रखे गये नीवार धान्यों वाले कुटियों के आँगन प्रदेश में बैठे हुए मृगों द्वारा पागुर किये जाते हुए वशिष्ठ के आश्रम को पहुंचे।

व्याख्या—सूर्यास्त पर जहाँ नीवार धान्यों को एक स्थान पर एकत्र कर दिया गया है तथा पर्ण कुटीरों के आंगन की भूमि पर बैठे हुए हिरणों के द्वारा जुगाली की जा रही है, ऐसे वसिष्ठ (महर्षि के आश्रम में वे दोनों पहुंचे।

टिप्पणी

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—उटजानाम् अङ्गणभूमयः इति, उटजाङ्गणभूमयः, तासु उटजाङ्गणभूमिषु। वर्तितः रोमन्थः यस्मिन् सः वर्तितरोमन्थः तम् वर्तितरोमन्थम्। आतपा.—आ (समन्तात्) तापयति इति आतपः (प्रादि समास), तस्य अत्ययः आतपात्ययः (ष. तत्पु.) तस्मिन् संक्षिप्ताः (स.तत्पु.), तादृशाः नीवारा यासुः ताः आतपात्ययसंक्षिप्तनीवाराः (ब.व्री.)। छन्द—अनुष्टुप्।

अभ्युत्थिताग्निपिशुनैरतिथीनाश्रमोन्मुखान्।
पुनानं पवनोद्भूतैर्धूमैराहुतिगन्धिभिः।।53।।

अन्वय—अभ्युत्थिताग्निपिशुनैः पवनोद्भूतैः आहुतिगन्धिभिः धूमैः आश्रमोन्मुखान् अतिथीन् पुनानम्।

अनुवाद—प्रज्वलित अग्नि की सूचना देने वाले, हवा के द्वारा उड़ाये जाते हुए आहुति गन्ध वाले धुएँ से आश्रम की ओर आने वाले अतिथियों को पवित्र करने वाले आश्रम में वे दोनों पहुंचे।

व्याख्या—प्रज्वलित अग्नियों के सूचक वायु के द्वारा चारों ओर फैलायी हुई यज्ञ की आहुतियों की सुगन्ध से युक्त धुएँ के द्वारा आश्रम की ओर आने वाले अतिथियों को पवित्र करने वाले आश्रम में वे दोनों पहुंचे।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—आहुतेः गन्धः आहुतिगन्धः, सः एषाम् अस्ति इति आहुति गन्धिनः, तैः, आहुतिगन्धिभिः। उद्गतं मुखं येषां, ते उन्मुखाः, आश्रमस्य उन्मुखाः इति आश्रमोन्मुखाः, तान् आश्रमोन्मुखान्। अभ्यु.—अभितः उत्थिताः अभ्युत्थिता (प्रादि.), अभ्युत्थिताः च ते अग्नयः अभ्युत्थिताग्नयः (कर्म.), तेशां पिशुनाः अभ्युत्थिताग्निपिशुनाः (श.तत्पु.) तैः। पवनो.—पवनेन उद्भूताः पवनोद्भूताः (तृ.तत्पु.) तैः। छन्द—अनुष्टुप्।

अथ यन्तारमादिश्य धुर्यान्विश्रामयेति सः।
तामवारोहयत्पत्नीं रथादवततार च।।54।।

अन्वय —अथ सः यन्तारम् 'धुर्यान् विश्रामय' इति आदिश्य, ताम् पत्नीम् रथात् अवारोहयत् च अवततार।

अनुवाद—इसके अनन्तर राजा दिलीप—घोड़ों को विश्राम कराओ, ऐसा सारथी को आदेश देकर स्वयम् रथ से उतरे तथा पत्नी सुदक्षिणा को भी उतारा।

व्याख्या—इसके बाद दिलीप ने 'घोड़ों को विश्राम कराओ' ऐसा सारथी को आदेश देकर उस अपनी पत्नी सुदक्षिणा को रथ से उतारा और वे स्वयं भी उतरे।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—धुर्यान्—धुरं वहन्ति इति धुर्याः (धुर् + यत्) तान्। विश्रामय—(विश्रमय वा = विनीतश्रमान् कुरु) = वि श्रम् + णिच् + लोट् मध्यम ए. (यहां पर 'मिताह्रस्वः' से ह्रस्व विकल्प से होगा)। यन्तारम्—(यम् + तृच्) तम्। आदिश्य—आ + दिश् + ल्यप्। छन्द—अनुष्टुप्।

तस्मै सभ्याः सभार्याय गोप्त्रे गुप्ततमेन्द्रियाः।
अर्हणामर्हते चक्रुर्मुनयो नयचक्षुषे।।55।।

अन्वय—सभ्याः गुप्ततमेन्द्रियाः मुनयः सभार्याय गोप्त्रे अर्हते नयचक्षुषे तस्मै अर्हणाम् चक्रुः।

अनुवाद—सज्जन तथा जितेन्द्रिय मुनियों ने प्रजा की रक्षा करने वाले, योग्य तथा नीतिशास्त्र रूपी चक्षु वाले उस राजा दिलीप का पत्नी सहित स्वागत किया।

व्याख्या—आश्रमवासी श्रेष्ठ आचरणशील एवं इन्द्रियसंयमी मुनियों, तपस्विजनों ने धर्म की रक्षा करने वाले एवं अपनी योग्यता से पूजनीय नीतिज्ञ उस राजा दिलीप का उनकी पत्नी सहित सम्मान किया। श्लोक में प्रयुक्त 'सभ्याः' विशेषण मुनिजनों के लोक व्यवहार के ज्ञान को सूचित करता है।

टिप्पणी

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—सभ्याः—सभायां साधवः (सभा + य)। गुप्त.—इमानि एषाम् अतिशयेन गुप्तानि गुप्ततमानि (गुप्त + तम) तादृशानि इन्द्रियाणि येषां ते गुप्ततमेन्द्रियाः (ब.व्री.)। सभार्याय—भार्यया सह वर्तमानः सभार्यः (ब.व्री.) तस्मै। छन्द —अनुष्टुप्।

विधेः सायंतनस्यान्ते स ददर्श तपोनिधिम्।
अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम्।।56।।

अन्वय —सः सायन्तनस्य विधेः अन्ते स्वाहया (अन्वासितः) हविर्भुजम् इव अरुन्धत्या अन्वासितम् तपोनिधिम् ददर्श।

अनुवाद—उस राजा दिलीप ने सायंकालिक विधि के अनन्तर स्वाहा से युक्त अग्नि के समान अरुधन्ती के साथ बैठे हुए तपोनिधि महर्षि वसिष्ठ का दर्शन किया।

व्याख्या—उसने (राजा दिलीप ने) सायंकाल में जाप यज्ञादि सम्पादित करने के अन्त में, पास में बैठी हुई, अरुन्धती सहित वसिष्ठ को बैठे हुए ठीक उसी प्रकार देखा जैसे यज्ञाग्नि के साथ (उसकी प्रिया) स्वाहा देवी शोभा दे रही हों। अग्नि एवं स्वाहा की उपमा से अरुन्धती का वसिष्ठ की नित्य अनुगामिनी होना तथा वसिष्ठ का अरुन्धती के बिना अपूर्ण होना द्योतित करता है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—हविः भुनक्ति इति हविर्भुक्, तम् हविर्भुजम्। सायन्तनस्य—सायम्भः इति (सायं + तुट + ट्युल्) इति सायन्तनः तस्य। अन्वासितम्—अनु + आस् + (कर्मणि) क्त। तपोनिधिम्—तपसां निधिः (ष.तत्पु.) तम्। छन्द—अनुष्टुप्।

तयोर्जगृहतुः पादान्राजा राज्ञी च मागधी।
तौ गुरुर्गुरुपत्नी च प्रीत्या प्रतिननन्दतुः।।57।।

अन्वय —मागधी राज्ञी राजा च तयोः पादान् जगृहतुः, गुरुपत्नी गुरुश्च तौ प्रीत्या प्रतिननन्दतुः।

अनुवाद—मगधराज पुत्री रानी सुदक्षिणा तथा राजा दिलीप ने उन दोनों के अर्थात् गुरु तथा गुरुपत्नी अरुन्धती के चरणों को स्पर्श किया और गुरु तथा गुरुपत्नी ने प्रसन्न होकर उन दोनों को आशीर्वाद दिया।

व्याख्या—मगध कुल में उत्पन्न होने वाली उस महारानी सुदक्षिणा और राजा दिलीप ने उन दोनों के अरुन्धती और वसिष्ठ के चरणों को स्पर्श किया। गुरु वसिष्ठ और गुरु पत्नी अरुन्धती ने तदुपरान्त प्रेमपूर्वक उन दोनों के प्रति अपने आशीष वचनों से अपने हृदय की प्रसन्नता को प्रकट किया।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—मागधी—मगधानां (देषविशेषाणां) राजा मागधः, तस्य अपत्यं स्त्री मागधी (मागध + ङीप्)। राज्ञी—राजन् = ङीप्। तयोः—सा (अरुन्धती) च सः (वसिष्ठः) च तौ (एक शे.) तयोः। जगृहतुः—गृह् + लिट् प्रथम द्वि.। छन्द—अनुष्टुप्।

तमातिथ्यक्रियाशान्तरथक्षोभपरिश्रमम्।
पप्रच्छ कुशलं राज्ये राज्याश्रममुनिं मुनिः।।58।।

टिप्पणी

अन्वय—मुनिः आतिथ्यक्रियाशान्त—रथक्षोभपरिश्रमम् राज्याश्रममुनिम् तम् राज्ये कुशलम् पप्रच्छ।

अनुवाद—महर्षि वसिष्ठ ने अतिथि सत्कार द्वारा रथ से उत्पन्न होने वाली थकावट को दूर करने के अनन्तर राज्यरूपी आश्रम के मुनि राजा दिलीप से राज्य का कुशल पूछा।

व्याख्या—मुनि वसिष्ठ के द्वारा किये गये अतिथि सत्कार से रथ के क्षोभ से उत्पन्न थकान के दूर हो जाने पर राज्य रूपी आश्रम के प्रबन्ध तथा व्यवस्था के कार्य को पवित्र कर्त्तव्य भावना से चलाने वाले तथा अनासक्त तथा उचित रूप देखने वाले मुनि तुल्य उस राजा दिलीप से राज्य की कुशल क्षेम का समाचार पूछा। एक राजा से उसके राज्य के विषय में सर्वप्रथम कुशल प्रश्न राजा के प्रधान उत्तरदायित्व को व्यंजित करता है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—आतिथ्यक्रियाशान्तः—न विद्यते तिथिः द्वितीया अस्य, अत्र एकरात्रम् एव अवस्थानात् इति अतिथिः (नञ् तत्पु.), तस्मै इदम् आतिथ्यं (अतिथि + श्यन्), तस्य क्रिया आतिथ्यक्रिया (श.तत्पु.) तथा शान्तः (तृतत्पु.), रथस्य क्षोभः रथक्षोभः (श.तत्पु.), तेन परिश्रमः रथक्षोभपरिश्रमः (तृ.तत्पु.), आतिथ्यक्रियाशान्तः रथक्षोभपरिश्रमः यस्य सः आतिथ्यक्रियाशान्तरथक्षोभपरिश्रमः (ब.व्री.) तम्। छन्द—अनुश्टुप्।

अथाथर्वनिधेस्तस्य विजितारिपुरः पुरः।
अर्थ्यामर्थपतिर्वाचमाददे वदतां वरः।।59।।

अन्वय—अथ विजितारिपुरः वदताम् वरः अर्थपतिः अथर्वनिधेः तस्य पुरः अर्थ्याम् वाचम् आददे।

अनुवाद—कुशल प्रश्न पूछने के अनन्तर शत्रुओं के नगर को जीतने वाले, वक्ताओं में सर्वश्रेष्ठ अर्थपति राजा दिलीप ने अथर्ववेद के ज्ञाता मुनि वसिष्ठ के समक्ष अर्थपूर्ण बात कहना प्रारम्भ किया।

व्याख्या—तदुपरान्त वशिष्ठ द्वारा कुशल प्रश्न पूछे जाने के अनन्तर शत्रु देशों के विजेता, श्रेष्ठ वचन बोलने में चतुर उस राजा दिलीप ने अथर्ववेद में पारंगत मुनि वशिष्ठ के सम्मुख अर्थ पूर्ण सोद्देष्य वाणी को धारण किया अर्थात् वे सार्थक और सोद्देष्यपूर्ण वचन बोले।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—विजित.—अरीणां पुराणि अरिपुराणि (ष.तत्पु.), विजितानि अरिपुराणि येन सः। वदताम्—वद् + शतृ षष्ठी ब.। वदतां वरः—निर्धारण में षष्ठी। अर्थपतिः—अर्थस्य पतिः (ष. तत्पु.)। **छन्द**—अनुष्टुप्।

उपपन्नं ननु शिवं सप्तस्वङ्गेषु यस्य मे।
दैवीनां मानुषीणां च प्रतिहर्ता त्वमापदाम्।।60।।

अन्वय—सप्तसु अङ्गेषु मे शिवम् उपपन्नम्। ननु यस्य मे दैवीनाम् मानुषीणाम् च आपदाम् त्वम् प्रतिहर्ता (असि)।

अनुवाद—हमारे राज्य के सातों अगों में कुशल क्यों न हो जब कि मेरी दैवी तथा मानुषी सभी प्रकार की आपत्तियों को नष्ट करने वाले आप स्वयम् विद्यमान हैं।

टिप्पणी

व्याख्या–वसिष्ठ के द्वारा कुशल क्षेम विषयक प्रश्न पूछ लिये जाने पर राजा दिलीप ने अति विनम्र धीर–गम्भीर वाणी में उत्तर दिया कि हे गुरु देव! मेरे राज्य के सात अंगों में निश्चय रूप से कुशल–मंगल स्पष्ट रूप से प्राप्त है क्योंकि मुझे दैवी (अकाल मृत्यु, अतिविशिष्ट, भूकम्प आदि) तथा मनुष्यों के द्वारा उत्पन्न संकटों (चोरी, डाका तथा रक्तपातादि) विपत्तियों से दूर रखने वाले आप हो।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–मे–'मम' तथा 'मह्यं' के स्थान पर 'मे का भी प्रयोग होता है'। 'मे' यह रूप वाक्य या श्लोक के चरण के आदि में और च, वा तथा ए के पूर्व में प्रयुक्त नहीं होता। उपपन्नम्–उप + पद + क्त। दैवीनाम्–देवेभ्यः आगताः देवः (देव + अण + ङीप्) तासाम्। मानुषीणाम्–मनुष्येभ्य आपदाः मानुष्यः (मनुष्य + अण् + ङीप्) तासाम् प्रतिहर्ता–(प्रतिहरति इति) (प्रति + हृ + तृच्)। छन्द–अनुष्टुप्।

तव मन्त्रकृतो मन्त्रैर्दूरात्प्रशमितारिभिः।
प्रत्यादिश्यन्त इव मे दृष्टलक्ष्यभिदः शराः।। 61।।

अन्वय–दूरात् प्रशमितारिभिः, मन्त्रकृतः, तव, मन्त्रैः, दृष्टलक्ष्यभिदः, मे शराः, प्रत्यादिश्यन्त इव।

अनुवाद–मन्त्र का प्रयोग करने वाले आपके मन्त्रों के द्वारा ही शत्रुओं का विनाश दूर से हो जाता है अतः आपके मन्त्रों के समक्ष केवल प्रत्यक्ष वस्तु का दान करने वाले हमारे बाण व्यर्थ से हो रहे हैं।

व्याख्या–हे मंत्रद्रष्टा गुरुवर! आपके द्वारा दूर से ही तथा परोक्ष रूप से ही शत्रुओं को नष्ट करने वाले प्रभावशाली मंत्रों ने मेरे स्पष्ट दिखायी देने वाले लक्ष्य का भेद करने वाले बाणों को निश्फल–सा बना दिया है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–दृष्टं च तत् लक्ष्यं (कर्मधारय), तत् भिदन्ति इति दृष्टलक्ष्यभिदः (उपपदसमास)। प्रत्यादिष्यन्ते–प्रति. आ. दिश्. (कर्मणि) यक् लट् प्रथमा बहुवचन। छन्द–अनुष्टप। अलङ्कार–उत्प्रेक्षा।

हविरावर्जितं होतस्त्वया विधिवदग्निषु।
वृष्टिर्भवति सस्यानामवग्रहविशोषिणाम्।।62।।

अन्वय–हे होतः! त्वया विधिवद् अग्निषु आवर्जितम् हविः अवग्रहविशोषिणाम् सस्यानाम् वृष्टिः भवति।

अनुवाद–हे यज्ञ करने वाले ! आपके द्वारा विधिवत् अग्नि में दी गई हवि ही वर्षा के बिना सूखते हुए अन्नों के लिये वृष्टि हो जाती है।

व्याख्या–यज्ञ यागादि करने वाले हे मेरे श्रेष्ठ गुरुदेव! आपके द्वारा यज्ञविधियों में नियमपूर्वक दी गई हवि ही अनावृष्टि काल में वर्षा के रूप को धारण करके धान्य के लिए, कृषि के लिए जल बरसा देती है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–आवर्जितं–आ +वृज्+णिच्+क्त। अवग्रह.–अवग्रहं (वृष्टिविघातः) एव अवग्रहः (अव+ग्रह+वर्ष+वि+शुष् प्रतिबन्धार्थे अव), अवग्रहेण शुष्यन्ति तच्छीलाः–अवग्रहशोषिणः (उपपदसमास) तेषाम्। सस्यानाम्–षष्ठी चतुर्थी के अर्थ में ('कृते' के अध्याहार सहित)। छन्द–अनुष्टुप्।

टिप्पणी

पुरुषायुषजीविन्यो निरातङ्का निरीतयः।
यन्मदीयाः प्रजास्तस्य हेतुस्त्वद्ब्रह्मवर्चसम्।।63।।

अन्वय—मदीयाः प्रजाः यत् पुरुषायुषजीविन्यः निरातङ्का निरीतयः (सन्ति) इति तस्य त्वद्ब्रह्मवर्चसम् हेतुः।

अनुवाद—हमारी प्रजाएं मनुष्य की आयु पर्यन्त जीने वाली, रोग रहित तथा ईतियों से रहित है इन सब का कारण आपका ब्रह्मतेज ही है।

व्याख्या—मेरी प्रजा के लोग जो पुरुष आयु के प्रमाण अर्थात् सौ वर्ष तक जीवन धारण करते हैं, वे किसी भी आतंक से रहित होकर रहते हैं। वे किसी भी दैवी संकट से मुक्त हैं। मेरी प्रजा को किसी के द्वारा धन चुराए जाने, भयंकर पशुओं के उत्पात आदि की कोई आशंका नहीं है अतः वे निर्भय जीवन व्यतीत करते हैं, मेरे राज्य में किसी भी प्रकार के दैवी उत्पात, दुर्भिक्ष, भूकम्प, उल्कापात आदि का भय नहीं है, इन सब का कारण आपका ब्रह्मतेज ही है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—मदीया,—मम इमाः (अस्मद् +छ)। प्रजाः—प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः(प्रादितत्पुरुष)। पुरुषा.—पुरुषस्य आयुः इति पुरुषायुषम् (षष्ठीतत्पुरुष) पुरुषायुषं जीवितुं शीलं यासां ताः पुरुषायुषजीविन्यः (उपपद.)। निरातङ्काः—निर्गतः आतङ्कः याभ्यः ताः निरातङ्काः (बहुव्रीहिसमास) निरीतयः—निष्क्रान्ताः ईतिभ्यः इति निरीतयः (प्रादि.) त्वद्ब्रह्म.—ब्रह्मणः वर्चः इति ब्रह्मवर्चसम् (षष्ठीतत्पुरुष), तव ब्रह्मवर्चसम् इति त्वद्ब्रह्मवर्चसम् (षष्ठीतत्पुरुष)। छन्द—अनुष्टुप्।

त्वयैवं चिन्त्यमानस्य गुरुणा ब्रह्मयोनिना।
सानुबन्धाः कथं न स्युः सम्पदो मे निरापदः।।64।।

अन्वय—ब्रह्मयोनिना गुरुणा त्वया एवं चिन्त्यमानस्य मे सम्पदः निरापदः सानुबन्धाः कथं न स्युः।

अनुवाद—ब्रह्मा के पुत्र तथा मेरे गुरु आपके द्वारा इस प्रकार कल्याण की चिन्ता किये जाते रहने पर मेरी सम्पदाएं विपत्ति रहित क्यों न हों, विघ्नबाधाओं से सदैव दूर क्यों न रहें।

व्याख्या—दिलीप आगे कहते हैं कि ब्रह्मा के पुत्र एवं मेरे गुरु आप के द्वारा इस प्रकार मेरे विषय में सदैव चिन्तन किया जाता रहा है, अतः मैं कष्टों से रहित, सम्पत्ति से युक्त तथा दुःखों से रहित क्यों न होऊँगा? अर्थात् जब आप जैसे महानुभाव मेरे ऊपर कृपालु हैं, सदैव मेरे हित—चिन्तन में लगे रहने वाले हो तो मेरे सुख और सम्पत्ति में वृद्धि अवश्य होगी तथा मेरे सभी विघ्न स्वतः ही शान्त हो जायेंगे।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—चिन्त्यमानय—चिन्त्य इति चिन्त्यमानः (चिन्त्+ णिच्+ कर्मणि यक्+शानच) तस्य। निरापदः—निर्गतः आपद्भयः इति निरापद् तस्य निरापदः(प्रादि तत्पुरुष)। छन्द—अनुष्टप।

किंतु वध्वां तवैतस्यामदृष्टसदृशप्रजम्।
न मामवति सद्वीपा रत्नसूरपि मेदिनी।।65।।

अन्वय—किन्तु तव एतस्याम् वध्वाम् अदृष्टसदृशप्रजम् माम् सद्वीपा रत्नसूः अपि मेदिनी न अवति।

अनुवाद–किन्तु आपकी इस वधू में अपने समान सन्तान होती न देखकर मुझको समस्त द्वीपों सहित अनेक रत्नों को उत्पन्न करने वाली होती हुई भी यह पृथ्वी अच्छी नहीं लगती।

टिप्पणी

व्याख्या–राजा दिलीप गुरुवर वशिष्ठ से कहते हैं कि आपकी कृपा से सब ठीक है परन्तु मेरे पास बैठी हुई आपकी इस वधू सुदक्षिणा से अपने अनुरूप पुत्र प्राप्त न करके अनेक द्वीपों वाली तथा रत्नों को जन्म देने वाली यह पृथ्वी भी मुझे कोई प्रसन्नता नहीं देती है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–तव–युष्मत् षष्ठी एकवचन। एतस्याम्–एतत् (स्त्री.), सप्तमी विभक्ति एकवचन। वध्वाम्–वधू सप्तमी एकवचनम। छन्द–अनुष्टुप।

नूनं मत्तः परं वंश्याः पिण्डविच्छेददर्शिनः।
न प्रकामभुजः श्राद्धे स्वधासङ्ग्रहतत्पराः।।66।।

अन्वय–नूनम, मत्तः, परम्, पिण्डविच्छेददर्शिनः, वंश्याः, स्वधासङ्ग्रहतत्पराः, सन्तः, श्राद्धे, प्रकामभुजः न (भविष्यन्ति)।

अनुवाद–निश्चय ही मेरे मरने के बाद पिण्ड दान का विच्छेद देखने वाले स्वधा को भविष्यत् काल के लिये एकत्र करने में तत्पर हमारे पूर्वज श्राद्ध के समय इच्छापूर्वक भोजन नहीं करते।

व्याख्या–राजा दिलीप ऋषि वसिष्ठ से अपने हृदयगत विक्षोभ को प्रकट करते हुए कहते हैं कि निश्चय ही मेरी मृत्यु के बाद सन्तान के अभाव के कारण पिण्डदान करने की परम्परा टूट जायेगी, इसे ध्यान में रखते हुए पितृभोज्य के संग्रह करने में ही लगे हुए पूर्वज–पितृगण श्राद्धकर्म में दिए गये भोज्य को तृप्तिपूर्वक ग्रहण नहीं करते होंगे।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–मत्तः–अस्मद्+तसिल् (पञ्चम्याम)। पिण्ड.–पिण्डस्य विच्छेदः पिण्डविच्छेदः (षष्ठीतत्पुरुष), तं पश्यन्ति इति पिण्डविच्छेददर्शिनः (उपपदसमासः)। वंश्याः–वंशे भवाः (वंश. यत)। छन्द–अनुष्टप्।

मत्परं दुर्लभं मत्वा नूनमावर्जितं मया।
पयः पूर्वैः स्वनिश्वासैः कवोष्णमुपभुज्यते।।67।।

अन्वय–मत् परम् दुर्लभम् मत्वा मया आवर्जितम् पयः पूर्वैः स्वनिश्वासैः नूनम् कवोष्णम् उपभुज्यते।

अनुवाद–मेरे मरने के अनन्तर दुर्लभ समझ करके मेरे द्वारा दिये गये जल को हमारे पूर्वज अपने शोक की श्वासों से निश्चित ही कुछ गरम कर पीते होंगे।

व्याख्या–राजा दिलीप कहता है कि मेरे बाद मेरी मृत्यु के बाद जलतर्पण क्रिया श्राद्ध मेरे पूर्वजों के लिए अप्राप्त होगी, ऐसा समझकर मेरे द्वारा अर्पित जल को भी मेरे पूर्वजों द्वारा जो स्वर्गस्थ हैं अपनी ही निःश्वासों से चिन्ता के कारण छोड़ी हुई उष्ण श्वास में थोड़ा–थोड़ा गर्म करके ग्रहण किया जाता होगा।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–मत्तपरम् : मत्तः परम् इति मत्परम् (पञ्चमीतत्पुरुष)। दुर्लभम्–दुःखेन लब्धुं शक्यं (दुर्+लभ+कृच्छ्रार्थे खल्)। मत्वा–मन्+क्त्वा। आवर्जितम्–आ+वृज्+ णिच् + क्त।छन्द–अनुष्टुप्। अलङ्कार–उत्प्रेक्षा।

सोऽहमिज्याविशुद्धात्मा प्रजालोपनिमीलितः।
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक इवाचलः।।68।।

टिप्पणी

अन्वय—इज्याविशुद्धात्मा प्रजालोपनिमीलितः सः अहम् लोकालोकः अचलः इव प्रकाशः च अप्रकाशः च।

अनुवाद—यज्ञ करने के कारण प्रसन्नचित्त वाला तथा पुत्र न होने के कारण शोक के अन्धकार में डूबा हुआ मैं इस समय लोकालोक पर्वत के समान प्रकाशमान तथा अप्रकाशमान हो रहा हूँ।

व्याख्या—राजा दिलीप अपनी स्थिति कुलगुरु वशिष्ठ के समक्ष स्पष्ट करते हैं कि यज्ञ—याग इत्यादि करने से शुद्ध आत्मावाला मैं लोकालोक पर्वत की भाँति प्रकाशवान् भी हूँ और अप्रकाशवान् भी हूँ। देव ऋण से मुक्ति प्राप्त करने के लिए मैं निरन्तर ही यज्ञ सम्पादन करता आया हूँ और उससे आत्मिक विशुद्धता प्राप्त की है। परन्तु पुत्र को प्राप्त किए बिना मेरी स्थिति लोकालोक पर्वत जैसी है जो एक साथ ही उजाले और अन्धकार में रहता है। लोक में स्थित होने से वह प्रकाशवान् है तथा अलोक की स्थिति से वह अन्धकार युक्त है। उसी लोका—लोक पर्वत जैसी मेरी दशा है। मैं सन्तान के अभाव के कारण अन्धकार में ढका हुआ स्वयं को मानता हूँ क्योंकि मैं पितृऋण से मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—इज्या.—इज्यया विशुद्धः इति इज्याविशुद्धः (तृतीयातत्पुरुष), तादृशः आत्मा यस्य सः इज्याविशुद्धात्मा (बहुव्रीही)। प्रजा.—प्रजायाः लोपः प्रजालोपः (षष्ठीतत्पुरुष) तेन निमीलितः इति प्रजालोपनिमीलितः (तृतीयातत्पुरुष)। लोकालोकः—लोक्यते इति लोकः (लोक+घञ्), न लोक्यते इति अलोकः (नञ् तत्पुरुष), लोकश्चासावलोकष्च इति लोकालोकः (कर्मधारय)। प्रकाशः—प्रकाशते इति(प्र+काश+अच)। छन्द—अनुष्टुप्। अलङ्कार—उपमा।

लोकान्तरसुखं पुण्यं तपोदानसमुद्भवम्।
संततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे।। 69।।

अन्वय—तपोदानसमुद्भवम् पुण्यम् लोकान्तरसुखम् (भवति) शुद्धवंश्या सन्ततिः हि परत्र इह च लोके शर्मणे (भवति)।

अनुवाद—तप और दान से उत्पन्न होने वाला सुख परलोक में सुख देने वाला होता है परन्तु शुद्धवंश की सन्तति इस लोक में तथा परलोक में सुख देने वाली होती है।

व्याख्या—तप और दान से उत्पन्न हुए सत्कर्म का फल तो परलोक में सुख देने वाला होता है परन्तु शुद्धवंश में उत्पन्न हुई सन्तान इस मृत्युलोक में और परलोक दोनों में कल्याण के लिए सुख के लिए हुआ करती है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द : तपो.—तपश्च तत् दानञ्च इति तपोदाने (द्वन्द्वतत्पुरुष), समुद्भवति अस्मात् इति समुद्भवः तपोदानात् समुद्भवः यस्य तत् तपोदानसमुद्भवम् (बहुव्रीहिसमास)। लोका.—अन्य—लोकः इति लोकान्तरम् (कर्मधारय), लोकान्तरे सुखम् इति लोकान्तर सुखम् (सप्तमी तत्पुरुष)। शुद्ध.—शुद्धश्चासौ वंशः इति शुद्धवंशः (कर्मधारय), तस्मिन् भवा इति शुद्धवंश्या (शुद्धवंश +य)। छन्द—अनुष्टप्। अलङ्कार— अर्थान्तरन्यास।

तया हीनं विधातर्मा कथं पश्यन्न दूयसे।
सिक्तं स्वयमिव स्नेहाद्वन्ध्यमाश्रमवृक्षकम्।। 70।।

अन्वय–हे विधातः तया हीनम् माम् स्नेहात् स्वयम् एव सिक्तम् वन्ध्यम् आश्रमवृक्षकम् इव पश्यन् कथम् न दूयसे।

अनुवाद–हे भगवन्! उस सन्तति से रहित अपने स्नेह से स्वयं सींचे गये फलरहित आश्रमवृक्ष के समान मुझको देखते हुए आपको व्यथा क्यों नहीं होती है।

व्याख्या–हे भाग्य निर्माता मेरे कुलगुरु वशिष्ठ! प्रेम से सींचे गए फलरहित आश्रम के वृक्ष के समान संतान से रहित मुझे यहाँ देखकर आप क्यों नहीं दुःखी होते?

व्याकरणगत प्रमुख शब्द : विधातः–विदधाति इति विधाता तस्य सम्बुद्धौ एकवचनम् (वि+धा+ तृच् सम्बुद्धि)। वृक्षकः–ह्रस्वः वृक्षः वृक्षक, (वृक्ष+ क), आश्रमस्य वृक्षकः (श. तत्पु.) तम्। दूयसे–दूङ्. लट् मध्यमपुरुष एकवचन। छन्द–अनुष्टप्। अलङ्कार–उत्प्रेक्षा।

असह्यपीडं भगवन्नृणमन्त्यमवेहि मे।
अरुन्तुदमिवालानमनिर्वाणस्य दन्तिनः।।71।।

अन्वय–हे भगवन्! अन्त्यम् ऋणम् अनिर्वाणस्य दन्तिनः अरुन्तुदम् आलानम् इव मे असह्यपीडम् अवेहि।

अनुवाद–हे भगवन्! जिस प्रकार नहाने के लिये व्याकुल हाथी अपने बन्धनस्तम्भ को असह्य कष्टजनक मानता है, उसी प्रकार पुत्र के अभाव में यह अन्तिम ऋण मुझे अत्यन्त दुःखदायी हो रहा है।

व्याख्या–हे मेरे स्वामी ! स्नानरहित हाथी के लिए उसका बन्धन–स्थल जिस तरह मर्मांतक पीडा देने वाला होता है, उसी की भाँति अवशिष्ट पितृऋण मुझे असहनीय कष्ट प्रदान कर रहा है, ऐसा समझिये।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द : अनिर्वाणस्य–न विद्यते निर्वाणं (निर्वृतिः गजमज्जनं वा) यस्य सः अनिर्वाणः (बहुव्रीहिसमास) तस्य। निर्वाणः–निर्+वा (गतिगन्धनयोः)+क्त। अरुन्तुदम्–अरुः (मर्म) तुदति इति अरुन्तुदः (उपपदसमास) तम्। अन्त्यम्–अन्ते भवं (अन्त+ य)। असह्य.–सोढुं योग्या सह्या (सह+य), न सह्या असह्या (नञ् तत्पुसमास), असह्या पीडा यस्मिन् तत् (ब.व्री.)। अवेहि–अव+ इ+ लोट् मध्यम एकवचन। छन्द–अनुष्टुप्। अलङ्कार–उपमा।

तस्मान्मुच्ये यथा तात संविधातुं तथार्हसि।
इक्ष्वाकूणां दुरापेऽर्थे त्वदधीना हि सिद्धयः।।72।।

अन्वय–हे तात! तस्मात् यथा मुच्ये तथा संविधातुम् त्वम् अर्हसि, हि इक्ष्वाकूणाम् दुरापे अर्थे सिद्धयः त्वदधीनाः।

अनुवाद–हे तात। इस महान् दुःख से जिस प्रकार मैं मुक्त हो सकता हूँ वह आप करने में समर्थ है, क्योंकि इक्ष्वाकुवंशी राजाओं के अत्यन्त कठिन कार्यों की सिद्धि आपके ही अधीन रहा करती है।

टिप्पणी

टिप्पणी

व्याख्या—हे पूज्य गुरूवर ! जिस तरह भी मैं उस पितृऋण से मुक्ति प्राप्त करूँ वैसा ही आप करने में समर्थ हो अर्थात् आप मुझे जिस किसी भी तरह पितृऋण से मुक्ति प्राप्त कराने में सामर्थ्यवान् हो। इक्ष्वाकुओं की दुर्लभ वस्तुओं को प्राप्त करने सम्बन्धी सफलता सिद्धि तो आपके ही अधीन है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—संविधातुम्—सम् + वि+धा+ तुमन्। इक्ष्वाकूणाम्—इक्ष्वाकोः अपत्यानि पुमांसः (इक्ष्वाकु. अञ् तथा अञ् का लोप) यहाँ पर कृद्योग के कारण षष्ठी नहीं होनी चाहिए। किन्तु यहाँ पर शेषे षष्ठी है। दुरापः—दुःखेन आप्तुं शक्यः अथवा दुःखेन आप्यते यः सः (दुर् +आप्+ खल्)। त्वद्धीनाः—तव अधीनाः (षष्ठीतत्पुरुष)। छन्द—अनुष्टुप्।

इति विज्ञापितो राजा ध्यानस्तिमितलोचनः।
क्षणमात्रमृषिस्तस्थौ सुप्तमीन इव ह्रदः।।73।।

अन्वय—इति राज्ञा विज्ञापितः ऋषिः ध्यानस्तिमितलोचनः सुप्तमीनः ह्रदः इव क्षणामात्रम् तस्थौ।

अनुवाद—इस प्रकार राजा दिलीप के द्वारा ऐसा कहे जाने के अनन्तर महर्षि वशिष्ठ ध्यान में आँखों को बन्द करके सोई हुई मछलियों वाले सरोवर के समान सुशोभित हुए।

व्याख्या—राजा दिलीप द्वारा इस तरह पूर्वोक्त प्रकार से निवेदन किये जाने पर ऋषि वसिष्ठ ध्यान में लीन होकर नेत्र बन्द कर के थोड़ी देर तक सोये हुए जलचरों से युक्त तालाब की तरह स्थित हो गये। जिस तरह किसी तालाब में उसके जलचरों के सो जाने से उसके जल में स्थिरता आ जाती है, उसी भाँति वशिष्ठ निश्चल और समाधिस्थ स्थिति को प्राप्त हो गये।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द : विज्ञापितः—वि+ ज्ञा+ णिच्+ क्त। स्तिमित—स्तिम्+क्त। ध्यान.—ध्यानेन स्तिमिते (तृत्पुरुष.) तादृषे लोचने यस्य सः ध्यानस्तिमितलोचनः (बहुव्रीहि)। क्षण.—क्षणम् एव (क्षण+ मात्रच्) क्रियाविशेषण। सुप्त—सुप्ताः (अत एव निश्चलाः) मीनाः यस्मिन् सः (बहुव्रीहि)। तस्थौ—स्था . लिट् प्रथमपुरुष एकवचन। छन्द—अनुष्टप्। अलङ्कार—उत्प्रेक्षा।

सोऽपश्यत्प्रणिधानेन संततेः स्तम्भकारणम्।
भावितात्मा भुवो भर्तुरथैनं प्रत्यबोधयत।। 74।।

अन्वय—भावितात्मा सः प्रणिधानेन भुवः भर्तुः सन्ततेः स्तम्भकारणम् अपश्यत् अथ एवम् प्रत्यबोधयत्।

अनुवाद—शुद्ध अन्तःकरण वाले उन महर्षि वशिष्ठ ने योग—बल से राजा के सन्तान न होने का कारण जाना और पुनः राजा को इस प्रकार बतलाना प्रारम्भ किया।

व्याख्या—शुद्ध अन्तःकरण (ह्रदय) वाले उस मुनि वसिष्ठ ने समाधिस्थ होकर पृथ्वी के पालन करने वाले राजा दिलीप के यहाँ घर में सन्तान के अवरोध के कारण को प्रत्यक्ष देख लिया और उसके बाद इस को राजा दिलीप को बताया।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—भाविता.—भावितः आत्मा यस्य सः (बहुव्रीहि)। भुवः—भू षष्ठी एकवचन। स्तम्भ.—स्तम्भस्य कारणं (षष्ठी तत्पुरुष) प्राणिधानेन—प्र+ नि+धा.+ ल्युट् तृतीया एकवचन। **छन्द**—अनुष्टुप्।

पुरा शक्रमुपस्थाय तवोर्वीं प्रति यास्यतः।
आसीत्कल्पतरुच्छायामाश्रिता सुरभिः पथि।। 75।।

टिप्पणी

अन्वय–पुरा शक्रम् उपस्थाय उर्वीम् प्रति यास्यतः तव पथि कल्पत्पतरुच्छायाम् आश्रिता सुरभिः आसीत्।

अनुवाद–पूर्व समय में अर्थात् आज से बहुत पहले जब आप इन्द्र की सेवा करके पृथ्वी की ओर आ रहे थे, तो उस समय आपके मार्ग में कल्पतरुवृक्ष की छाया में कामधेनु बैठी हुई थी।

व्याख्या–सन्तान के अवरोध के कारण को स्पष्ट करते हुए मुनि वशिष्ठ ने राजा दिलीप को बताया कि आज से बहुत पहले इन्द्र को अपनी सेवा में प्रसन्न करके जब तुम स्वर्गलोक में पृथ्वीलोक की ओर आने वाले मार्ग से आ रहे थे, तो तुम्हारे मार्ग में कल्पवृक्ष की छाया में कामधेनु बैठी हुई थी।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द : उपस्थाय–उप+ स्था+ ल्यप्। उर्वीम् प्रति–प्रति के योग में द्वितीया विभक्ति। यास्यतः–यास्यति इति (या+लृट+शतृ) तस्य। पथि–पथिन् सप्तमी ए.। कल्प.–कल्पतरोः छाया कल्पतरुच्छाया (श.तत्पु.)। ताम्। आश्रिता–आ. श्रि. क्त टाप्। छन्द–अनुष्टुप्।

धर्मलोपभयाद्राज्ञीमृतुस्नातामिमां स्मरन्।
प्रदक्षिणक्रियार्हायां तस्यां त्वं साधु नाचरः 76

अन्वय–ऋतुस्नाताम् इमाम् राज्ञीम् धर्मलोपभयात् स्मरन् प्रदक्षिणक्रियार्हायाम् तस्याम् त्वम् साधु न आचरः।

अनुवाद–ऋतु स्नान से निवृत्त हुई उस रानी सुदक्षिणा का धर्मलोप होने के भय से स्मरण करते हुए प्रदक्षिणा करने के योग्य उस कामधेनु का आपने सम्मान नहीं किया।

व्याख्या–ऋतुस्नाता (रजस्वला) इस रानी सुदक्षिणा को धर्म के लोप के भय से याद करते हुए प्रदक्षिणा करने योग्य इस कामधेनु के प्रति आप ने अच्छा (यथापेक्षित) आचरण नहीं किया। प्रदक्षिणा द्वारा उचित व्यवहार नहीं किया, यही आप का अपराध है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द : ऋतु.–ऋतुना स्ताना ऋतुस्नाता (तृतीया तत्पुरुष) ताम्। स्मरन्–स्मृ+ शतृ। प्रदक्षिण–प्रदक्षिणस्य क्रिया प्रदक्षिणक्रिया (षष्ठी तत्पुरुष) अर्हति–इति अर्हा, प्रदक्षिण–क्रियायाम् अर्हा इति प्रदक्षिणक्रियार्हा (सप्तमी तत्पुरुष) तस्याम। **छन्द**–अनुष्टुप्।

अवजानासि मां यस्मादतस्ते न भवि□यति।
मत्प्रसूतिमनाराध्य प्रजेति त्वां शशाप सा।। 77।।

अन्वय–यस्मात् माम, अवजानासि, अतः, मत्प्रसूतिम्, अनाराध्य, ते प्रजा, न भविष्यति, इति सा त्वां शशाप।

अनुवाद–जिस कारण से तुमने मेरा अनादर किया है इस कारण से मेरी सन्तति की आराधना किये बिना तुझे सन्तान की प्राप्ति नहीं होगी–ऐसा शाप उस कामधेनु ने दिया।

व्याख्या—सन्तान प्राप्ति के लिए ऋतुस्नाता अपनी पत्नी के प्रति भोग की इच्छा में लीन होने के कारण तुम ने मेरी आराधना किये बिना तुम्हें सन्तान नहीं होगी—इस प्रकार से उसने तुम्हें शाप दे दिया।

टिप्पणी

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—अवजानासि—अव. ज्ञा. लट् मध्यम एकवचन। मत्प्रसूतिम्—मम प्रसूतिः मत्प्रसूतिः (ष. तत्पु.) ताम्। अनाराध्य न आराध्य (आ. राध्. ल्यप्), शशाप शप् लिट् प्रथम एकवचन। छन्द—अनुष्टुप्।

स शापो न त्वया राजन् न च सारथिना श्रुतः।
नदत्याकाशगङ्गायाः स्रोतस्युद्दामदिग्गजे।। 78।।

अन्वय—हे राजन् आकाशगङ्गायाः उदामदिग्गजे स्रोतसि नदति (सति) सः शापः त्वया न श्रुतः न च सारथिना श्रुतः।

अनुवाद—हे राजन् ! उन्मुक्त स्वच्छन्द अर्थात् बन्धन—रहित दिग्गजों के आकाश गंगा के प्रवाह में जल—विहार करने के कारण शब्द करते रहने पर वह शाप न तो तुम्हारे द्वारा सुना गया और न तुम्हारे सारथि ने ही सुना।

व्याख्या—वसिष्ठ दिलीप को बताते हैं कि हे भूपेन्द्र! मद से अत्यधिक मतवाले बने हुए दिग्गजों के द्वारा आकाश गंगा के प्रवाह में तेज कोलाहल (ध्वनि) के उठने के कारण उस शाप को न तो तुमने ही सुना और न तुम्हारे सारथि के द्वारा सुना गया।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द : आकाश.—आकास्य गंगा आकाश गंगा (षष्ठी तत्पुरुषसमास) तस्याः। उद्दाम.—दाम्नः उद्गताः उद्दमानः (प्रादि.), दिशां गजाः दिग्गजाः (षष्ठी तत्पुरुष), उद्दामाः दिग्गजाः यस्मिन् तत् उद्दामदिग्गजं (बहुव्रीहिसमास) तस्मिन् नदति नद्—शतृ सप्तमी एकवचन। छन्द—अनुश्टप्।

ईप्सितं तदवज्ञानाद्विद्धि सार्गलमात्मनः।
प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः।। 79।।

अन्वय—तदवज्ञानात् आत्मनः ईप्सितम् सार्गलम् विद्धि, हि पूज्यपूजाव्यतिक्रमः श्रेयः प्रतिबध्नाति।

अनुवाद—उस (कामधेनु) का अपमान होने से आप अपना मनोरथ रुका हुआ जानें, क्योंकि पूजनीय लोगों की पूजा का उल्लंघन ही कल्याण को रोकने वाला हुआ करता है।

व्याख्या—वसिष्ठ कहते हैं कि उस कामधेनु के अपमान से अपने मनोरथ को बाधित (अवरोधपूर्ण) समझिये। वास्तव में यह एक सिद्धांत है कि सम्माननीय का सम्मान न करने से कल्याण में रुकावट खड़ी हो जाती है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—तद्—तस्याः अवज्ञानं (षष्ठीतत्पुरुष) तस्मात्। ईप्सितम्—आप्तुम् इष्टम् (आप्+ सन) (ईप्स)+ क्त, (सन्नन्त आप् से क्त और ईकारादेष)। सार्गलम्—अर्गलया सह वर्तमानः (बहुव्रीहिसमास)। विद्धि—विद्. लोट् मध्यम ए.। पूज्य.—पूजितुं योग्याः पूज्याः तेषां पूजा पूज्यपूजा (षष्ठीतत्पुरुष), तस्याः व्यतिक्रमः (षष्ठीतत्पुरुष) बध्नाति—बध् लट् प्रथम एकवचन। छन्द—अनुष्टुप्। लङ्कार—अर्थान्तरन्यास।

हविशे दीर्घसत्रस्य सा चेदानीं प्रचेतसः ।।
भुजंगपिहितद्वारं पातालमधितिश्ठति ।।80।।

अन्वय–सा च इदानीम् दीर्घसत्रस्य प्रचेतसः हविषे भुजङ्गपिहितद्वारम् पातालम् अधितिश्ठति।

अनुवाद–वह कामधेनु गाय इस समय बहुत दिनों से सम्पन्न होने वाले वरुण के यज्ञ में हवि आदि देने के लिये साँपों से अवरुद्ध मार्ग वाले पाताल लोक में स्थित है।

व्याख्या–वसिष्ठ राजा दिलीप को बताते हैं कि वह कामधेनु अब दीर्घकाल तक चलने वाले वरुण के यज्ञ में हवि के लिए अपेक्षित घृत आदि के लिए सर्पो द्वारा बन्द किये द्वार वाले पाताल लोक (वरुण लोक) को गई हुई है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द : दीर्घ–सत्र दीर्घ सत्रं यस्य सः दीर्घसत्रः (बहुव्रीहि) तस्य। भुजंग.–भुजङ्गैः पिहितं भुजङ्गपिहितं (तृतीयातत्पुरुष), तादृशं द्वारं यस्य तत् (बहुव्रीहि) अधितिष्ठति–अधि. स्था. लट् प्रथम एकवचन। पातालम्–अधितिष्ठति–क्योंकि यहाँ पर स्था का उपसर्ग अधि है, इसलिए अधितिष्ठति सकर्मक है और पाताल इसका कर्म है। छन्द–अनुष्टुप्।

सुतां तदीयां सुरभेः कृत्वा प्रतिनिधिं शुचिः।
आराधय सपत्नीकः प्रीता कामदुघा हि सा।। 81।।

अन्वय–तदीयाम् ताम् सुताम् सुरभेः प्रतिनिधिम् कृत्वा शुचिः सपत्नीकः आराधय हि सा प्रीता कामदुधा (भवति)।

अनुवाद–आप उस कामधेनु की पुत्री को उस कामधेनु की प्रतिनिधि मान कर पवित्र होकर पत्नी सहित आराधना कीजिए, क्योंकि प्रसन्न होने पर वह तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण कर सकती है।

व्याख्या–वसिष्ठ ऋषि राजा दिलीप को विश्वास के साथ बताते हैं कि इस नन्दिनी का प्रतिनिधि मानकर, पवित्र होकर अपनी पत्नी सहित आराधना करो क्योंकि निश्चय ही वह सुरभि की पुत्री नन्दिनी प्रसन्न होने पर कामनाओं को पूर्ण करेगी।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–सपत्नीकः–पत्न्या सह वर्तमानः (बहुव्रीहि)। आराधय–आ +राध्+ णिच् लोट् मध्यम एकवचन। प्रीता–प्री+ (कर्तरि) क्त स्त्री.। कामदुधा–कामान् दोग्धि इति (उपपद)–कप् प्रत्यय तथा ह को घ।

इति वादिन एवास्य होतुराहुतिसाधनम्।
अनिन्द्या नन्दिनी नाम धेनुरावव्रृते वनात्।।82।।

अन्वय–इति वादिनः एव होतुः अस्य (आहुति) साधनम् नन्दिनी नाम अनिन्द्या धेनुः वनात् आववृत्ते।

अनुवाद–उस होता मुनि वसिष्ठ के ऐसा कहते हुए ही यज्ञ के लिये घी आदि सामग्री देने वाली नन्दिनी नाम से अभिहित प्रशंसनीय गाय वन से लौट कर आ गई।

व्याख्या–तपोनिष्ठ वसिष्ठ मुनि दिलीप को नन्दिनी के विषय में उसकी आराधना करने की बात कह ही रहे थे कि इतने में ही उस हवनशील के द्वारा किये जाने वाले यज्ञ यागादि के निमित्त घृत आदि सामग्री का प्रबन्ध करने वाली नन्दिनी नामक प्रशंसनीय गाय वन से लौट आयी।

टिप्पणी

टिप्पणी

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—इति वदति तच्छीलः इति इतिवादी तस्य—यहाँ पर निरपेक्ष षष्ठी है क्योंकि इति के साथ कृदन्त का प्रयोग है, इसलिए कर्ता अप्रयुक्त है। यहाँ पर इतिवादिनः का सम्बन्ध 'अस्य होतुः' के साथ नहीं है। अस्य होतुः का सम्बन्ध आहुति साधन के साथ है। होतुः—जुहोति इति होता (हु तृच्) तस्य। आहुति.—आहुतीनां साधनं (षष्ठीतत्पुरुष)। नन्दिनी—नन्दयति इति सा (नन्द+ इन्+ ङीप् स्त्रियाम्)। अनिंद्या—निन्दितुं योग्या निन्द्या (निन्द्+ य), न निन्द्या (नञ् तत्पुरुषसमास) आववृते—आ+ वृत लिट् प्रथम एकवचन। छन्द—अनुष्टुप्।

ललाटोदयमाभुग्नं पल्लवस्निग्धपाटला।
बिभ्रती श्वेतरोमाङ्कं संध्येव शशिनं नवम्।। 83।।

अन्वय—पल्लवस्निग्धपाटला, ललाटोदयम्, आभुग्नम, श्वेतरोमाङ्कम्, बिभ्रती, नवम, शशिनम्, बिभ्रती, सन्ध्या इव (स्थिता)।

अनुवाद—वह नवीन पल्लवों के समान कोमल लाल रंग वाली, माथे पर कुछ—कुछ टेढ़े श्वेत बालों के चिह्न को धारण करने वाली नवीन चन्द्रमा को धारण करने वाली सन्ध्या के समान उपस्थित हो गई।

व्याख्या—नयी कोंपल के समान चिकने तथा पाटल रंग के मस्तक रूपी आकाश पर थोड़ी—सी टेढी आकृति वाले श्वेत बालों के चिह्न को वह नन्दिनी मानों नये चन्द्रमा को संन्ध्याकाल में धारण धारण किये हुए थी।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—ललाटोदयम्—ललाटे उदयः यस्यः सः ललाटोदयः (ब.व्री. /तम्। भुग्नम्—(भुजो (कौटिल्ये). क्त। आभुग्नम्—ईशद् भुग्नः तम्। बिभ्रतीः—भृ (जुहोत्यादि)+ शतृ स्त्री. प्रथमा ए.। पल्लव,—स्निग्धः च असौ पाटला च सिग्धपाटला (कर्मधारयसमास)। पल्लव इव—स्निग्धपाटला पल्लवस्निधपाटला (कर्मधारयसमास)। श्वेत.—श्वेतानि रोमाणि श्वेतरोमाणि (कर्मधारयसमास), छन्द—अनुष्टुप्। अलंकार—उत्प्रेक्षा।

भुवं कोष्णेन कुण्डोध्नी मेध्येनावभृथादपि।
प्रस्नवेनाभिवर्षन्ती वत्सालोकप्रवर्तिना।। 84।।

अन्वय—कोश्णेन अवभृथादपि मेध्येन, वत्सालोकप्रवर्तिना प्रस्नवेन भुवम् अभिवर्षन्ती कुण्डोध्नी।

अनुवाद—यज्ञ के अनन्तर होने वाले स्नान से भी अधिक पवित्र तथा बछड़े को देखने से अपने आप बहते हुए कुछ—कुछ गरम दूध से पृथ्वी की सींचती हुई नन्दिनी आ गई।

व्याख्या—उस नन्दिनी का थोड़ा—थोड़ा गरम दूध यज्ञ के अन्त में किए गये स्नान से भी अधिक पवित्र था। बछडे को देखने मात्र से ही अत्यधिक प्रेम होने से उसके स्तनों से दूध बहने लगता था। अपने दुग्ध के प्रवाह से पृथ्वी को स्नान—सा कराती थी। उसके स्तन मटके (घड़े) के समान थे। अर्थात् वह नन्दिनी अधिक दूध देने वा पवित्र एवं अपने बछड़े के प्रति अत्यधिक प्रेम करने के स्वभाव वाली थी।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द : कोश्णेन—ईशद् उष्णः कोष्णः (कर्मधारय) तत्। भुवम्—भू. द्वितीया एकवचन। अभिवर्षन्ती—अभि. वृश् शतृ ङीप् प्रथमा एकवचन। कुण्डोध्नी—कुण्डम् इव ऊधः यस्याः सा (बहुव्रीहि)। वत्सा.—वत्सस्य आलोकः वत्सालोकः (षष्ठीतत्पुरुष), तेन प्रवर्तते तच्छीलः इति वत्सालोक प्रवर्ती (उपपद.) तेन।छन्द—अनुष्टुप्।

रजःकणैः खुरोद्धूतैः स्पृशद्भिर्गात्रमन्तिकात्।
तीर्थाभिषेकजां शुद्धिमादधाना महीक्षितः।।85।।

अन्वय–खुरोधूतैः, अन्तिकात्, गात्रम्, स्पृशद्भिः, रजःकणैः, महीक्षितः तीर्थाभिषेकजाम् शुद्धिम् आदधाना।

अनुवाद–खुरों के द्वारा उड़ाये गये, समीप से राजा दिलीप के शरीर को स्पर्श करने वाले धूलि–कणों के द्वारा, राजा को मानो तीर्थाभिषेक से शुद्धि कराती हुई नन्दिनी आ गई।

व्याख्या–नन्दिनी के खुरों से उठने वाली धूल के निकट स्पर्श से राजा दिलीप के शरीर ने तीर्थों में स्नान करने से होने वाली शुद्धता को धारण सा कर लिया था।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–स्पृशद्भिः–स्पृश्. शतृ तृतीया बहुवचन। रजःकणैः–रजसां कणाः रजःकणाः (षष्ठीतत्पुरुष) तैः। आदधाना–आ +धा+ शानच् टाप् प्रथमा एकवचन। उद्धूत–उत् + धू+ क्त। खुरो.–खुरैः उद्धूता (तत्पुरुषसमास) तैः। अन्तिकात्–दूर और समीप अर्थ वाले शब्दों में द्वितीया तथा पञ्चमी विभक्ति होती है। महीक्षितः–महयाम् क्षयते ईष्टे इति महीक्षित् (उपपदसमास) तस्य। तीर्था.–तीर्थस्य अभिशेकः तीर्थाभिशेकः (षष्ठीतत्पुरुष) तेन जाता तीर्थाभिशेकजा (उपपदसमास) ताम्।छन्द–अनुश्टप्।

तां पुण्यदर्शनां दृष्ट्वा निमित्तज्ञस्तपोनिधिः।
याज्यमाशंसितावन्ध्यप्रार्थनं पुनरब्रवीत्।। 86।।

अन्वय–निमित्तज्ञः, तपोनिधिः पुण्यदर्शनम् ताम् दृष्ट्वा आशंसितवन्ध्यप्रार्थनम् याज्यम् पुनः अब्रवीत्।

अनुवाद–शकुनों को जानने वाले (निमित्तज्ञ) महर्षि वसिष्ठ ने पुण्य दर्शनों वाली उस नन्दिनी गाय को देख करके सफल मनोरथ की याचना करने वाले यजमान राजा दिलीप से पुनः कहा।

व्याख्या–पुण्यदर्शन वाली (दर्शन होने मात्र से ही पापों को समाप्त करने और पुण्यवृद्धि करने वाली) एवं प्रशंसनीय तथा व्यर्थ न जाने वाली प्रार्थना वाली उस नन्दिनी धेनु को देखकर शकुनशास्त्र के ज्ञाता कुलगुरु वसिष्ठ ने अपने यजमान दिलीप से तदनन्तर पुनः कहा–

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–दृष्ट्वा–दृष्+ क्त्वा। निमित्तज्ञः–निमित्तं जानाति इति निमित्तज्ञः (उपपदसमास)। आशंसितम्–आ = शंस् (भावे) क्त नपुं.। आशंसि.–न वन्ध्यम् अवन्ध्यं (नञ् तत्पुरुष), अवन्ध्यंप्रार्थनम् अवन्ध्यप्रार्थनं (कर्मधारय) आशंसिते अवन्ध्यप्रार्थनं यस्य सः आशंसितावन्ध्यप्रार्थनः (बहुव्रीहि) तम्। याज्यम्–याजयितुं योग्यः याज्यः (यज्+ णिच+ य) तम। तपोनिधिः–तपसां निधिः (षष्ठीतत्पुरुष)। पुण्यदर्शनाम्–पुण्यं दर्शनं यस्याः सा पुण्यदर्शना (ब.वी.) ताम्। अब्रवीत्–ब्रूञ् लङ् प्रथम एकवचन। छन्द–अनुष्टुप्।

अदूरवर्तिनीं सिद्धिं राजन्विगणयात्मनः।
उपस्थितेयं कल्याणी नाम्नि कीर्तित एव यत्।। 87।।

अन्वय–राजन् ! आत्मनः, सिद्धिम्, अदूरवर्तिनीम, विगणय, यत, नाम्नि, कीर्तिते, एव इयम्, कल्याणी उपस्थिता।

टिप्पणी

अनुवाद–हे राजन ! आप अपनी कामना को शीघ्र पूर्ण होने वाली समझो, क्योंकि नाम लेते ही यह कल्याणी नन्दिनी गाय उपस्थित हो गई है।

व्याख्या–गुरु वसिष्ठ ने राजा दिलीप से कहा हे राजन् ! तुम अपनी सफलता को समीप से ही प्राप्त हुई सी जानो, समझो क्योंकि नाम लेते ही यह कल्याणी उपस्थित हो गयी है।

टिप्पणी

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–कल्याणी–कल्याण+ङीष्। नाम्नि–नामन् .+सप्तमी ए. कीर्तिते–कृत (संशब्दने)+ क्त सप्तमी ए., नाम्नि कीर्तिते–सति सप्तमी। अदूरवर्तिनीम् न दूरम् अदूरं (नञ् तत्पु.) तस्मिन् वर्तितुं शीलम् अस्याः सा अदूरवर्तिनी (उपपदसमास) ताम् विगणय–वि+ गण्+लोट् मध्यम एकवचन। उपस्थिता–उप+ स्था+ क्त+टाप् छन्द–अनुष्टुप्।

वन्यवृत्तिरिमां शश्वदात्मानुगमनेन गाम्।
विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हसि।। 88।।

अन्वय–वन्यवृत्तिः शश्वत् आत्मानुगमनेन इमाम् गाम् अभ्यसनेन विद्याम् इव प्रसादयितुम् अर्हसि।

अनुवाद–आप वन के कन्द–मूल–फलों का आहार करते हुए निरन्तर इसके पीछे–पीछे चलते हुए इसको उसी प्रकार प्रसन्न करने में लगे रहो हो, जिस प्रकार अभ्यास से विद्या प्राप्त की जाती है।

व्याख्या–गुरु वसिष्ठ, राजा दिलीप को नन्दिनी गाय को प्रसन्न करने का उपाय बताते हुये कहते हैं कि हे राजन्! वन से प्राप्त कन्द–मूलादि के आहार को प्राप्त करते हुए निरन्तर स्वयं तुम इसका अनुसरण करते हुए इस गाय को ठीक उसी तरह प्रसन्न करने में लग जाओ, जिस तरह विद्यार्थी अपने अभ्यास से विद्या–देवी को प्रसन्न कर लेता है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–वन्यवृत्तिः–वने भवं वन्यं (कन्दमूलादिकं) वन. वन्यम् एव वृत्तिः (भोजन) यस्य असौ (बहुव्रीह)। आत्मा.–आत्मनः अनुगमनम् आत्मानुगमनं (षष्ठीतत्पुरुष) तेन। इमाम् इदम् स्त्री.द्वितीया एकवचन। गाम्–गो द्वितीया ए.। प्रसादयितुम्–प्र+ सद्+ णिच्+ तुमुन्।छन्द–अनुष्टुप्।अलङ्कार–उपमा।

प्रस्थितायां प्रतिष्ठेथाः स्थितायां स्थितिमाचरेः।
निषण्णायां निषीदास्यां पीताम्भसि पिबेरपः।। 89।।

अन्वय–अस्याम् प्रस्थितायाम् त्वम् प्रतिष्ठेथाः, स्थितायाम् स्थितिम् आचरेः, निषण्णायाम् निषीद, पीताम्भसि अपः पिबेः।

अनुवाद–इस नन्दिनी गाय के चलते रहने पर आप भी चलें, इसके खड़ी हो जाने पर आप भी खड़े हो जाएं। इसके बैठ जाने पर आप भी बैठ जाएं तथा जब यह जल पीने लगे तब ही आप भी जल पिया करें।

व्याख्या–वसिष्ठ ने नन्दिनी की सेवा करने की विधि का वर्णन करते हुए कहा कि इस गाय के प्रस्थान करने पर चल पड़ने पर तुम भी चल पड़ो। इसके रुक जाने पर तुम भी रुक जाओ। इसके बैठ जाने पर तुम भी बैठ जाओ। इसके द्वारा जल पीने पर ही तुम्हारे द्वारा भी जल पिया जाना चाहिये।

टिप्पणी

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–प्रस्थितायाम्–प्र +स्था+ क्त+ टाप् सप्तमी एकवचन। अस्यां, प्रस्थितायाम् (अस्यां) निषण्णायाम् तथा (अस्यां) पीताम्भसि–इन चारों में भावे सप्तमी है। स्थितिम्–स्था + क्तिन् द्वितीया एकवचन। आचरेः–आ+ चर्+ वि. लिङ् मध्यम एकवचन निष्ण्णायाम्–नि. सद्+ क्त सप्तमी एकवचन। निषीद–नि+ सद्–लोट् + टाप् मध्यम एकवचन। पीतम–पा+ क्त। पीता.–पीतम अम्भः यया सा पीताम्भाः (बहव्रीहि) तस्याम्।

वधूर्भक्तिमती चैनामर्चितामातपोवनात्।
प्रयता प्रातरन्वेतु सायं प्रत्युद्व्रजेदपि।।90।।

अन्वयः–वधूः भक्तिमती प्रयता च; सती अर्चिताम् एनां प्रातः आतपोवनात् अन्वेतु सायम् अपि प्रत्युद्व्रजेत्।

अनुवादः–वधू सुदक्षिणा भी भक्तिपूर्वक इसकी पूजा करके प्रतिदिन प्रातःकाल तपोवन की सीमा तक इसे पहुंचाने जाए तथा सायंकाल के समय भी तपोवन की सीमा पर पहुंचकर स्वागतपूर्वक इसे आश्रम में लाए।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–भक्तिमती–भक्ति विद्यते अस्याः इति भक्तिमती। भक्ति+मतुप्+ ङीप्।

इत्याप्रसादादस्यास्त्वं परिचर्यापरो भव।
अविघ्नमस्तु ते स्थेयाः पितेव धुरि पुत्रिणाम्।।91।।

अन्वयः–इति त्वं अस्याः आप्रसादात् परिचर्यापरः भव, ते अविघ्नम् अस्तु, पिता इव पुत्रिणाम् धुर स्थेयाः।

अनुवादः–इस प्रकार विधिवत प्रसन्न होने तक तुम इसकी सेवा करो। तुम्हारे विघ्न नष्ट हों। अपने पिता के समान तुम भी उत्तम पुत्रवालों में सबसे आगे श्रेष्ठ ठहरो; अर्थात् तुम्हारे जैसा ही तुम्हें पुत्र प्राप्त हो।

व्याख्या–श्लोक 89 तथा 90 में कही गई विधि के अनुसार पितेव स्थेयाः में–भाव यह है कि जिस प्रकार यशस्वी पुत्र के रूप में महाराज दिलीप को प्राप्त कर उनके पिता भाग्यवान् थे उसी प्रकार उन्हें भी अपने अनुरूप पुत्र को प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हो। अपने पिता के समान आपको भी श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त हो।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–परिचर्यापरः–परिचर्या एव परं (प्रधानं) यस्य सः। परिचर्या ही जिसका मूल व्रत है। पुत्रिणाम्–उनमें जिनके श्रेष्ठ पुत्र हैं, उत्तम पुत्रों वाले पिताओं में। स्थेयाः–धातु स्था आषीर्लिङ् मध्यम पुरुष, एकवचन। तुम भी श्रेष्ठ रहो, होओ। धुरि–उत्तम, श्रेष्ठ, आगे। अविघ्नम्–विघ्नस्य अभावः अव्ययीभाव अविघ्नम, निर्विघ्न।

तथेति प्रतिजग्राह प्रीतिमान्सपरिग्रहः।
आदेशं देशकालज्ञः शिष्यः शासितुरानतः।।92।।

अन्वयः–देषकालज्ञः सपरिग्रहः प्रीतिमान् शिष्यः आनतः शासितुः आदेशम् तथा इति प्रतिजग्राह।

अनुवादः–देश; अग्नि की सन्निधि और काल–अग्निहोत्र की समाप्ति के समय के महत्त्व को समझने वाले राजा दिलीप ने प्रसन्न होकर अपनी पत्नी सुदक्षिणा के साथ अत्यन्त विनीतभाव से अपने गुरुवर की आज्ञा को उसी रूप में स्वीकार किया।

टिप्पणी

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—देशकालज्ञः—देशश्च कालश्च इति देषकालौ द्वन्द्वः तौ जानाति इति ज्ञः देषकालयोः ज्ञः इति देषकालज्ञः षष्ठी तत्पुरुष—सपरिग्रहः—परिग्रहेण—पत्न्यी सह वर्तमानः बहुव्रीहि, आनतः—आ.धातु नम्, नम—झुका हुआ दिलीप। शासितुः;—आदेशम्—अपने धार्मिक गुरु की आज्ञा को 'शासितृ' शब्द का षष्ठी विभक्ति, एकवचनरूप।

अथ प्रदोषे दोषज्ञः संवेशाय विशांपतिम्।

सूनुः सुनृतवाक्स्रष्टुर्विससर्जोर्जितश्रियम्।।93।।

अन्वयः—अथ प्रदोषे दोषज्ञः सुनृतवाक् स्रष्टुः सूनुः ऊर्जितश्रियं विशांपतिम् संवेशाय विससर्ज।

अनुवादः—तब रात्रि के समय सत्यवादी तथा मधुर भाषी, ब्रह्मा के पुत्र, विद्वान् वसिष्ठ ने उत्तमलक्ष्मी से सम्पन्न, प्रजा के स्वामी राजा दिलीप को शयन के लिए आज्ञा दी।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—प्रदोषे—रात्रि के समय, प्रकृष्टदोषाः 'चौर्यादिभयानि' यस्मिन् काले सः प्रदोशः। दोषज्ञः बुद्धिमान—समझदार, विद्वान। देखिए—विद्वान् विपश्चिद्दोषज्ञः अमरकोष। अर्जितश्रियम अर्जिता श्री येन सः तम् बहुव्रीहि। जिसका सौभाग्य विशिष्ट था। संवेशाय—'सम्' उपसर्ग पूर्वक विष् धतु का अर्थ होता है—सोना अर्थात् सोने के लिए, निद्रा के लिए। विशाम्पतिम्—प्रजा के स्वामी दिलीप को। विशाम्—प्रजाओं के।

सत्यामपि तपःसिद्धौ नियमापेक्षया मुनिः।

कल्पवित्कल्पयामास वन्यामेवास्य संविधाम्।। 94।।

अन्वयः—तपःसिद्धौ सत्यामपि कल्पवित् मुनिः नियमापेक्षया अस्य राज्ञः वन्याम् एवं संविधां कल्पयामास।

अनुवादः—यद्यपि व्रत के प्रयोगों को जानने वाले मुनि वसिष्ठ को तप की सिद्धि थी; जिससे वे तपोवन में भी राजाओं के योग्य विलास—सामग्री उपस्थित कर देने की सामर्थ्य रखते थे, फिर भी उन्होंने दिलीप के लिए नन्दिनी की सेवारूपी व्रत का ध्यान रखते हुए वन में निवास करने वाले ऋषि—मुनियों के योग्य ही कुशाओं का बिछौना आदि सामग्री का आयोजन किया।

व्याख्या—सत्यामपि तपः सिद्धौ—यद्यपि महर्षि वसिठ तपोबल से आश्रम में दिलीप के लिए राजोचितसुख—सुविधा उपस्थित करने में समर्थ थे फिर भी उन्होंने राजा के लिए आश्रमोचित मुनिजनोचित सुख—सुविधा की ही सामग्री आयोजित की। भाव यह है कि तप से प्राप्त सिद्धि के कारण महर्षि वसिष्ठ सब प्रकार की सुख—सुविधएँ जुटा सकते थे, फिर भी उन्होंने राजा के शयन के लिए वैसी ही व्यवस्था की जैसी किसी आश्रम के तपस्वी के लिए की जाती है। सामर्थ्य होने पर भी राजोचित सुख—सुविधा प्रस्तुत न करने का कारण यह था कि वसिष्ठ चाहते थे कि पुत्र प्राप्ति के लिए उत्सुक राजा और रानी राजसी सुख—वैभव परित्यागकर तपस्वी के आचरण को अपनाएँ। नन्दिनी की सेवा का व्रत लेने पर उन्हें अब वन्यजीवन यापन करना पड़ेगा। अतः महर्षि वसिष्ठ ने इस नियम की अपेक्षा से ही राजदम्पती के लिए राजसी सुख—सुविध नहीं जुटाई।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द—नियमापेक्षया—नियमस्य अपेक्षा, तया। कल्पवित् (कल्प धर्मिक विधि् का क्रम या पद्धति को जानने वाला अर्थात् सिद्धिदायक व्रत के प्रयोगों को जानने वाले वसिष्ठ ऋषि) गुरु वसिष्ठ यज्ञयागादि के नियमों से पूर्णरूपेण परिचित थे

क्योंकि राजाने तपश्चर्या करनी थी अतः उन्हें मुनियों का सा जीवन व्यतीत करना चाहिए इसलिए गुरु वसिष्ठ ने उन्हें कुशासन तथा फल–मूलों का भोजन दिया। यह मुनिजनोचित सामग्री गोसेवारूपकल्प व्रत में सहायक होगी। संविधाम्–जीवनोचित्त सामग्री–जैसे कुशादि की शय्या, कन्दमूल आदि वन–फलों का भोजन आदि।

टिप्पणी

निर्दिष्टां कुलपतिना स पर्णशालामध्यास्य प्रयतपरिग्रहद्वितीयः।
तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानाम् संविष्टः कुशशयने निशां निनाय।।95।।

अन्वयः–प्रयतपरिग्रहद्वितीयः स ;राजा कुलपतिना निर्दिष्टां पर्णशालाम् अध्यास्य कुशशयने संविष्टः तच्छिष्याध्ययननिवेदितावसानां निशां निनाय।

अनुवादः–राजा दिलीप नियमों का पालन करने वाली जितेन्द्रिय अपनी पत्नी सुदक्षिणा के साथ कुलपति वसिष्ठ द्वारा बताई गई कुटिया में निवास कर कुशा के बिस्तर पर सोये और मुनि वसिष्ठ के शिष्यों के वेदपाठ के घोष द्वारा सूचित रात्रि की समाप्ति पर जाग गए। इस प्रकार उन्होंने रात बिताई।

व्याख्या–कुलपतिना–कुलपति द्वारा। प्राचीन भारत में भी अध्यापकों की कई श्रेणियाँ होती थी। जैसे गुरु, उपाध्याय, आचार्य, कुलपति आदि। इनमें कुलपति उसे कहते थे जो दस हजार '10,000' शिष्यों के भोजन तथा अध्ययन का प्रबन्ध करता था। मुनीनां दशसहस्राणां योऽन्नदानादिपोषणात्। अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः। वह राजा जिसके साथ उसकी जितेन्द्रिय पत्नी ही सहायक के रूप में है। इससे पूर्व तो राजा के साथ अनुचर भी थे। परन्तु नन्दिनी गौ की सेवा का व्रत लेने पर अब केवल उसकी पवित्र पत्नी सहायक रह गई थी।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द–अध्यास्य–'अधि' उपसर्ग पूर्वक 'आस' धातु के योग के कारण से ही 'पर्णशालाम्' में सप्तमी के स्थान पर द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त हुई है। नियम–'अधिशीङ्स्थासां कर्म'। प्रयत–प्रयतः परिग्रहः पत्नी प्रयतपरिग्रहः कर्मधारय, प्रयतपरिग्रहः एवं द्वितीयः यस्य सः बहुव्रीहि 'सः' का विशेषण है। अवसान–समाप्ति, अन्त, रात का बीत जाना। संविष्टः–सम्ु विष्। सोया हुआ। निनाय–धातु नि. लिट्, प्र. पुरुष, एकवचन।

विशेष–महाकाव्य की परिभाषा के अनुसार महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग होना चाहिए। परन्तु सर्ग के अन्तिम पद्य का छन्द पूर्व प्रयुक्त छन्द से भिन्न होना चाहिए। तदनुसार रघुवंश महाकाव्य के प्रथम सर्ग में 1 से 94 श्लोक तक एक ही छन्द श्लोक या अनुष्टुप् का प्रयोग हुआ है परन्तु इस सर्ग के अन्तिम श्लोक में छन्द प्रहर्षिणी है। इस प्रकार अन्तिम पद्य का छन्द सम्पूर्ण सर्ग में प्रयुक्त श्लोक छन्द से भिन्न है।इस प्रकार से कविकुल–गुरु उपमासम्राट् महाकवि कालिदास ने, जो कविता कामिनी के विलास हैं,अपने सार्वकालिक अमर महाकाव्य रघुवंशम् के इस प्रथम सर्ग में राम के पूर्वज राजा दिलीप के चरित्र के सभी आयामों को संक्षेप में बखान कर पुत्र–कामना हेतु उनके द्वारा किए जाने वाले व्रत का संवेदनापूर्ण रूपायन किया है।

3.3 रघुवंशम् व कालिदास

संस्कृत महाकवियों में कालिदास का अनुपम व्यक्तित्व एवं कृतित्व सर्वाधिक प्रशंसनीय है। रघुवंश महाकाव्य कालिदास की सर्वश्रेष्ठ कृति है अतएव कालिदास को रघुकार

टिप्पणी

नाम से भी व्यवहृत किया गया है। रघुवंश महाकाव्य की लोकप्रियता तथा व्यापकता का परिचय इस महाकाव्य पर लिखित टीकाओं के अस्तित्व से विधिवत् जाना जा सकता है। रघुवंश के प्रथम सर्ग का विधिवत् अध्ययन करवाना प्रमुख उद्देश्य है किन्तु इसके साथ–साथ महाकवि कालिदास की कविता में माधुर्य, प्रसाद पदों की सरसता अर्थ का सौष्ठव एवम् अलङ्कारों का मञ्जुल प्रयोग काव्य का हृदय पक्ष इस इकाई में टिप्पणियों द्वारा प्रकट हुआ है।

1. काव्य–परिचय

रघुवंश महकवि कालिदास का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। रघुवंश महाकाव्य 19 सर्गों में विभक्त है। इस काव्य में 1 से 9 सर्गों में दिलीप, रघु, अज और दशरथ का वर्णन है, राम की कथा 10 से 14 सर्गों में तथा 15 से 19 सर्गों में कुश, अतिथि और उनके उत्तराधिकारियों से लेकर अग्निवर्ण तक का वर्णन किया गया है। इस प्रकार रघुवंश महाकाव्य में तीन खण्ड हैं:–

1. रघु खण्ड
2. राम खण्ड
3. अन्वय खण्ड।

लक्षण ग्रन्थों के आचार्यों ने महाकाव्य के अनेक लक्षण प्रस्तुत किये हैं–सर्गबद्धता, ऐतिहासिक कथानक, नायकाभ्युदय, सूर्यचन्द्रोदयवर्णन प्रकृति वर्णन, युद्ध, मन्त्रणा, आदि लगभग अनेक वर्ण्य विषय रघुवंश में पाये जाते हैं। रघुवंश के अनेक टीकाकार हुए परन्तु मल्लिनाथ की सञ्जीवनी सर्वाधिक प्रसिद्ध टीका है।

रघुवंश प्रथम सर्ग में कालिदास ने महाकाव्य रचना का प्रयोजन भी संकेतित किया है–'मन्दः कवियशःप्रार्थी', 'यशसे–विजिगीषूणाम्' आदि अंशों से कवि यश को ही मुख्य रूप से काव्य का प्रयोजन स्वीकार करता है।

कालिदास ने सात ग्रन्थों की रचना की–

1. महाकाव्य	–	1 कुमारसम्भवम्	2. रघुवंशम्
2. गीतिकाव्य	–	3 ऋतुसंहारम्	4. मेघदूतम्
3. नाटक	–	5. मालविकाग्निमित्रम्	6. विक्रमोर्वशीयम्
7. अभिज्ञानशाकुन्तलम्			

कथानक सार (रघुवंश प्रथम सर्ग)

रघुवंश का प्रथम सर्ग काव्य सौन्दर्य और भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से अनुपम है। काव्य सौन्दर्य के लिए इस सर्ग की प्रशंसा विशेष रूप से की जाती है। इस सर्ग में सर्वदा सम्पृक्त संसार के माता–पिता परमेश्वर एवं पार्वती को नमस्कार करके नमस्कारात्मक मंगलाचरण, सूर्यवंश का उद्भव, राजा दिलीप का पुत्र प्राप्ति हेतु महर्षि वसिष्ठ के आश्रम में जाना तथा पुत्र प्राप्ति के लिए महर्षि द्वारा आशीर्वाद देने का वर्णन किया गया है।

रघुवंशम् का सर्गानुसार कथानक

टिप्पणी

1. **प्रथम सर्गः** प्रथम सर्ग राजा दिलीप के चरित्र–वर्णन से प्रारम्भ होता है। पुत्रविहीन राजा दिलीप अपनी पत्नी 'सुदक्षिणा' सहित पुत्र लाभ की कामना से कुल गुरु वसिष्ठ के आश्रम में जाते हैं। वसिष्ठ उनकी व्यथा का कारण जान अपने आश्रम में निवास करने वाली कामधेनु पुत्री नन्दिनी नामक गौ की सेवा का परामर्श देते हैं।
2. **द्वितीय सर्गः** द्वितीय सर्ग राजा दिलीप की गोभक्ति–परायणता प्रस्तुत करता है। राजा पत्नी सुदक्षिणा सहित एकाग्रचित्त से नन्दिनी की सेवा में संलग्न हो जाते हैं। कुछ काल व्यतीत होने पर नन्दिनी राजा के भक्ति–भाव की परीक्षा लेने को उद्यत होती है। वह चरती हुई, हिमालय पर्वत की कन्दरा में प्रविष्ट हो जाती है, गुफा में एक सिंह नन्दिनी पर आक्रमण करता है। राजा नन्दिनी को मुक्त करने के लिए सिंह से याचना करते है। सिंह राजा का शरीर लेकर गाय को मुक्त करने को तैयार हो जाता है। राजा सिंह के समक्ष स्वशरीर अर्पण कर देते हैं। राजा के इस भक्ति भाव से प्रसन्न हो नन्दिनी पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद देती है और अपना दुग्ध पीने का निर्देश देती है। राजा आश्रम में लौट कर महर्षि वसिष्ठ को सम्पूर्ण वृतांत से अवगत करा, गुरु की अनुमति से गाय का दूध पीते हैं तथा उद्देश्य की पूर्ति से प्रसन्न राजधानी लौट आते हैं।
3. **तृतीय सर्गः** तृतीय सर्ग में रघु के जन्म, वर्धन, यौवराज्य का वर्णन है। अश्वमेध यज्ञायोजन कर रघु पिता दिलीप से राज्य ग्रहण करते हैं। दिलीप एवं सुदक्षिणा पुत्र को राज्य देकर तपोवन में संन्यास हेतु प्रस्थान करते हैं।
4. **चतुर्थ सर्गः** चतुर्थ सर्ग में रघु–दिग्विजय के अनंतर विश्वजित यज्ञ की सम्पन्नता वर्णित है।
5. **पञ्चम सर्गः** पञ्चम सर्ग रघु की दानशीलता से परिपूर्ण है, उनका राजकोश असीमित दानवृत्ति से रिक्त हो चुका है, इसी समय कौत्स नामक एक ब्रह्मचारी, गुरु दक्षिणा हेतु चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्राओं की याचना ले सभा में उपस्थित होता है। धनदेव कुबेर रघु के आक्रमण के भय से स्वर्ण मुद्राओं की वर्षा करते हैं, ब्रह्मचारी कौत्स अभीष्ट मात्रा में स्वर्ण मुद्राएं लेकर राजा को पुत्र–प्राप्ति का आशीर्वाद देते हैं।
6. **षष्ठम सर्गः** छठे सर्ग में रघुपुत्र अज का जन्म एवं विदर्भ राजकन्या इन्दुमती से स्वयंवर विवाह का चित्रण है। अनेक देशों के भूपति स्वयंवर में उपस्थित हैं, किंतु एक गन्धर्व से प्राप्त सम्मोहन नामक अस्त्र की महिमा से अज ही इन्दुमती को आकृष्ट करते हैं और वरमाला उनके ही गले पड़ती है। विभिन्न देशों से आगत राजाओं के प्रसंग में अनेक व्यक्तिगत गुणों, वंशावली, शौर्य, समृद्धि और विशेषरूप से राज्य की भौगोलिक सीमाओं का समुचित वर्णन है।
7. **सप्तम सर्गः** सप्तम सर्ग अज के नगरभ्रमण एवं इन्दुमती सहित अज के द्वारा स्वनगर प्रस्थान को प्रस्तुत करता है।
8. **अष्टम सर्गः** अष्टम सर्ग रघु के राज्यत्याग, दशरथ की उत्पत्ति, इन्दुमती की मृत्यु, अज के विलाप एवं शरीर त्याग से परिपूर्ण है।

टिप्पणी

9. **नवम सर्गः** नवम सर्ग दशरथ–प्रशंसा से आरम्भ है। आखेट काल में श्रवण वध इसी सर्ग का अंश है।
10. **दशम सर्गः** दशम सर्ग में राम आदि चारों भाइयों के जन्म की कथा और शैशव की लीलाएं चित्रित हैं।
11. **ग्यारहवां सर्गः** ग्यारहवां सर्ग विश्वामित्र के साथ राम–लक्ष्मण के वन–गमन, धनुष यज्ञ दर्शन हेतु मिथिला प्रस्थान, धनुष भंजन, चारों भाइयों का सीता इत्यादि बहिनों से विवाह, परशुराम संवाद आख्यानों को प्रस्तुत करता है।
12. **बारहवां सर्गः** बारहवें सर्ग में राजतिलक, माँ कैकेयी द्वारा वर माँगना, राम–लक्ष्मण व सीता का वनप्रस्थान, शूर्पणखा के नाक–कान काटना, सीता हरण, वानरराज सुग्रीव का राज्याभिषेक, राम–रावण युद्ध एवं रावण की राम के द्वारा पराजय कथा है।
13. **तेरहवां सर्गः** तेरहवां सर्ग राम–सीता व लक्ष्मण के पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या प्रत्यागमन तथा भरत मिलन का चित्रण है।
14. **चौदहवां सर्गः** चौदहवां सर्ग सीता गर्भधारण एवं राम द्वारा सीता परित्याग, लक्ष्मण का सीता को वाल्मीकि आश्रम में पहुँचाने के वृत्तांत को प्रस्तुत करता है।
15. **पन्द्रहवां सर्गः** पन्द्रहवां सर्ग अश्वमेध यज्ञ, लव–कुश–जन्म, श्म्बूक वध, पृथ्वी का सीता को स्वयं में समाहित कर लेना तथा राम के स्वर्ग गमन तक की कथा से समाप्त होता है।
16. **सोलहवां सर्गः** सोलहवें सर्ग से राम के वंशजों लव–कुश इत्यादि भ्राताओं का राज्य–शासन, परिणय, अयोध्या की नगरदेवी द्वारा याचना किये जाने पर कुश का अयोध्या में शासनसूत्र संभालना, कुश का रानियों के साथ जल–क्रीड़ा का सुन्दर चित्रण उपलब्ध होता है।
17. **सत्रहवां सर्गः** सत्रहवें सर्ग में कुशपुत्र अतिथि के पराक्रम एवं यशोगाथा का वर्णन है।
18. **अठारहवां सर्गः** अठारहवें सर्ग में अतिथिपुत्र निषध, निषधपुत्र नल, नल पुत्र पुण्डरीक, पुण्डरीक पुत्र क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वा पुत्र देवानीक, देवानीक पुत्र अहीनग, अहीनग पुत्र पारियात्र, परियात्र पुत्र शिल, शिल पुत्र उन्नाभ, उन्नाभ पुत्र वज्रनाभ, वज्रनाभ पुत्र शंखण, शंखण पुत्र व्युषिताश्व, व्युषिताश्व पुत्र विश्वसह, विश्वसह पुत्र हिरण्यनाभ, हिरण्यनाभ पुत्र कौशल्य, कौशल्य पुत्र पुष्य, पुष्य पुत्र ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धि पुत्र सुदर्शन समग्र वंशावली राजाओं के गुण परिचय को भी प्रस्तुत करती है।
19. **उन्नीसवां सर्गः** उन्नीसवां सर्ग सूर्य वंश के अंतिम नृपति अग्निवर्ण के कामुक जीवन के भरपूर विलास का चित्रण करता है, अत्यधिक विलासी जीवन के परिणाम स्वरूप अग्निवर्ण क्षयरोग से पीड़ित हुआ। रोग के प्रभाव से दिन प्रतिदिन दुर्बल होकर निस्संतान मृत्यु को प्राप्त हुआ। मृत्यु के पश्चात् प्रधान महिषी (गर्भवती) ने राज्य भार संभाला और मंत्रियों के परामर्श से राज्य को सुव्यस्थित किया।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. दिलीप गां कस्मै दुदोह?
   (क) यज्ञाय (ख) ज्ञानाय
   (ग) सस्याय (घ) सम्पत्तये
2. दिलीपेन जगतो गुर्वी धूः कुत्र निचिक्षिपे?
   (क) कूपे (ख) पर्वते
   (ग) व्यवसायिषु (घ) सचिवेषु

3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (घ)

3.5 सारांश

प्रारंभ में मंगलाचरणपूर्वक कवि ने सूर्यवंश की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए इस वंश की उत्कृष्टताओं को बताया हैं तदनन्तर इस वंश के प्राचीन राजा दिलीप और उनकी पत्नी सुदक्षिणा के गुणवैशिष्ट्य को वर्णित किया है। संतान के अभाव के कष्ट के निवारणार्थ महर्षि वसिष्ठ के आश्रम तक दिलीप की सपत्नीक यात्रा का मनोहर वर्णन करने के बाद दिलीप और वसिष्ठ का संवाद भी उपस्थिति हुआ है। इसी संवाद के अन्तर्गत दिलीप की समस्या के कारण व समाधान का रहस्योद्घाटन इस सर्ग को पूर्णता प्रदान करता है। इकाई में प्रस्तुत अन्वय व व्याकरणात्मक टिप्पणियाँ श्लोकों की गहनता को उजागर कर रही हैं।

इस इकाई में रघुवंश महाकाव्य के प्रथम सर्ग मनु के वंश में राजा दिलीप का मुख्य रूप से वर्णन है।

3.6 मुख्य शब्दावली

- **उडुपम्** – नौका।
- **सूरिः** – कवि।
- **क्षितीशः** – राजा।
- **विजिगीषुः** – विजयार्थी।
- **महाभूतसमाधिः** – पंच महाभूतों की सन्निधि।
- **गुर्वी** – भारी।
- **हविः** – आहुति।
- **निषण्णायाम्** – बैठी हुई होने पर।

टिप्पणी

3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. हेम्नः संशुद्धि कस्मिन् लक्ष्यते?
2. दिलीपस्य बुद्धिः मौर्वी च कीदृशी आसती?
3. वसिष्ठाश्रमे अतिथयः कथं शुचितां धारयन्ति?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. निम्नलिखित में से किन्हीं दो श्लोकों का अनुवाद कीजिए–

   स्निग्धगम्भीरनिर्घोषमेकं स्यन्दनमास्थितौ।
   प्रावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावताविव।।
   मनोभिरामाः शृण्वन्तौ रथनेमिस्वनोन्मुखैः।
   षड्जसंवादिनीः केका द्विधा भिन्नाः शिखण्डिभिः।।
   मन्दः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
   प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः।।
3. निम्नलिखित शब्दों पर व्याकरणात्मक टिप्पणियां लिखिए–

   प्रतिपत्तये, कृतवाग्द्वारे, व्यूढोरस्कः, जुगोप, तस्करता।
4. निम्नलिखित शब्दों पर व्याख्यात्मक टिप्पणियां लिखिए–

   यथाविधि, प्रणवश्छन्दसाम्, गाम् दुदोह, समाधि।

3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. रघुवंश महाकाव्यम्, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई
2. रघुवंश महाकाव्यम्, (प्रथम सर्ग), डॉ. जगन्नाथ पाण्डेय, जयपुर
3. कालिदास, चन्द्रबली पाण्डे, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
4. रघुवंश–चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस 1965।
5. बलदेव उपाध्याय,–वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा मंदिर, वाराणसी।
6. रामजी उपाध्याय–भारतीय संस्कृति का उत्थान, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
7. पी.वी.काणे–धर्मशास्त्र का इतिहास, उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान, लखनउ।
8. ज्ञानी, शिवदत्त–भारतीय संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
9. टण्डन, किरण–भारतीय संस्कृति, ईस्टर्न बुक लकर्स, दिल्ली।
10. दिनकर, रामधरी सिंह–संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

इकाई 4 स्वप्नवासवदत्तम्

टिप्पणी

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 स्वप्नवासवदत्ता (प्रथमोऽङ्कः)
4.3 स्वप्नवासदवत्ता (द्वितीयोऽङ्कः)
4.4 स्वप्नवासवदत्ता (तृतीयोऽङ्कः)
4.5 महाकवि भास और वासवदत्तम् विवेचनम्
  4.5.1 महाकवि भास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व
  4.5.2 वासवदत्तम् विवेचनम्
  4.5.3 'स्वप्नवासवदत्तम्' के प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण
  4.5.4 नाटकीय तत्वों के आधार पर 'स्वप्नवासवदत्तम्' की समीक्षा
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

पुस्तक की इस चतुर्थ इकाई में भास रचित स्वप्नवासवदत्तम् नामक प्रसिद्ध नाटक के प्रथम तीन अंक सार्थ व साहिप्पवण ग्रथित किए गए हैं। नाटक के प्रथम अंक में उदयन के महामंत्री यौगन्धरायण की योजना के अनुसार नायिका वासवदत्ता को राजकुमारी पद्मावती के पास न्यास (धरोहर) रूप में स्थापित करने का वर्णन हुआ है। द्वितीय अंक में महाराज उदयन के साथ पद्मावती के परिणय का समाचार नाटकीय घटनाक्रमानुसार होता है। तत्पश्चात् तृतीय अंक में वासवदत्ता विडंबना ग्रस्त होकर पद्मावती द्वारा उदयन को जयमाला पहनाने के निमित्त माला गुम्फन करती है।

संपूर्ण घटनाक्रम भास की सहज मनोरम शैली व सटीक संवादों से चित्ताकर्षक बन पड़ा है। वस्तुतः इस इकाई के ये तीन अंक संपूर्ण नाटक के प्रति पाठकों की जिज्ञासा को जागृत करने में सक्षम हैं।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भास की लेखन शैली से अभिज्ञ होंगे;
- भास की सर्वश्रेष्ठ कृति 'स्वप्नवासवदत्तम्' के प्रथम अङ्कत्रय का सार्थ जानेंगे;
- नाटक में आए श्लोकों के अन्वय तथा विशिष्ट पदों के व्याकरण को जानेंगे।

4.2 स्वप्नवासवदत्ता (प्रथमोऽङ्कः)

पात्र परिचय

टिप्पणी

'स्वप्नवासवदत्ता में स्त्री और पुरुष पात्रों का परिचय इस प्रकार है–

पुरुष पात्र

1. उदयन : नाटक का सर्वगुणसम्पन्न नायक।
2. यौगन्धरायण : वत्सराज उदयन का मंत्री और राजनीति में चाणक्य के समतुल्य। एक प्रकार से नाटक का केंद्र–बिंदु।
3. वसन्तक : नाटक का विदूषक, दो अंकों में ही दिखाई देता है।
4. ब्रह्मचारी : कांचुकीय।
5. रैभ्य : महासेनकांचुकीय।
6. संभाषक : एवं भट – पद्मावती के सेवक।

स्त्री पात्र

1. वासवदत्ता : नाटक का प्रधान स्वीया नायिका।
2. पद्मावती : नाटक की दूसरी स्वीया नायिका।
3. तापसी
4. चेटी : पद्मावती की सखी।
5. मधुकारिका एवं पदि्मनिका : पद्मावती की सेविकाएं।
6. धात्री : पद्मावती की धाय – माता।
7. विजया : वत्सराज गृह की प्रतिहारी।
8. धात्री : वासवदत्ता की धाय – माता।

प्रथमोऽकः

नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधार :

नांदी वचन के बाद सूत्रधार का प्रवेश होता है

सूत्रधारः –

उदयनवेन्दुसवर्णा वासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम्।
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम्।।1।।

सन्दर्भ – प्रस्तुत मंगलाचरण महाकवि भासकृत स्वप्नवासवदत्तम् के प्रथम अंक से लिया गया है।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक में नाटककार भास ने बलराम की भुजाओं से रक्षा करने की प्रार्थना की है।

अनुवाद – उदयकालीन नवीन चन्द्रमा के समान उज्ज्वल वर्णवाली, मदिरा पीने से वृद्धि को प्राप्त होने वाली या प्रियतमा रेवती को मदिरा पिलाने वाली श्री (लक्ष्मी और

सौन्दर्य) से विभूषित तथा वसन्त ऋतु के समान सुन्दर बलराम की दोनों भुजाएँ आप दर्शकों (पाठकों, सहृदयों) की रक्षा करें।

टिप्पणी

नांदी की विशेषता एवं लक्षण – नाटक के प्रारम्भ में नान्दी पाठ की परम्परा चिरकाल से चली आ रही है इसीलिए कहा गया है– रंगविघ्नोपशान्त्यर्थं नान्दीमादौ प्रयोजयेत्।

(1) **नान्दी शब्द की व्युत्पत्ति** – नन्दति देवा अस्यामिति नान्दी अथवा नन्दयति देवद्विजनृपादीन् इति नान्दी। आचार्य विश्वनाथ ने नान्दी का निम्नलिखित लक्षण किया है –

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता।।

नाटक के प्रारम्भ में निर्विघ्न परिसमाप्ति के लिये देवता, विप्र, नृप आदि की आशीर्वादात्मक स्तुति जिसके द्वारा की जाती है उसे नान्दी कहते हैं।

व्याख्या – महाकवि भास ने बलराम की भुजाओं से रक्षा करने की प्रार्थना की है। अतः यहाँ आशीर्वादात्मक मंगलाचरण है। इसके साथ ही नाटक के प्रमुख पात्रों – उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती और वसन्तक के माध्यम से कथावस्तु का निर्देश होने से यहाँ वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण भी है। यहाँ बलराम के प्रति नाटककार की देवता से सम्बन्धित श्रद्धा भक्ति प्रकट होने के कारण भाव ध्वनि है। प्रस्तुत पद्य में अनुप्रास तथा मुद्रालंकार है। इस श्लोक में आर्या छन्द है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द– अवतीर्णम् = अव् + तृ + क्त प्रत्यय, पाताम् = पा रक्षणे + लोट्लकारः, पदमावतीर्णपूर्णौ – पदमावर्तीर्णम् तेन पूर्णौ, वसन्तकम्रौ – बसन्त इव कम्रौ वसन्तकम्रौ – उपमित समास।

एवमायंमिश्रान विज्ञापयामि। अपे! किं नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते। अंग! पश्यामि।

आप श्रीमानों से मेरा यह निवेदन है कि... अरे! निवेदन करने में मेरे व्यस्त होते ही यह शब्द कहां सुनाई पड़ा! अच्छा देखता हूं।

(नेपथ्य में) हटो, हटिए, महाशयो! हटिए।

सूत्रधारः – भवतु विज्ञातम्,

भृत्यैर्मगधराजस्य स्निग्धैः कन्यानुगामिभिः
धृष्टमुत्सार्यते सर्वस्तपोवनगतो जनः।।2।।

(निष्क्रान्तः)

अनुवाद– सूत्रधार– अच्छा जान लिया,

मगधराज की पुत्री का अनुसरण करने वाले स्नेही सेवकों के द्वारा सभी तपोवनवासियों को अशिष्ट व्यवहार से हटाया जा रहा है।

(मंच से निकल गया)

भटौ– उत्सरत, उत्सरत आर्याः!

अनुवाद– दो रक्षक– हटिए, हटिए आर्यजन!

(ततः प्रविशति परिव्राजकवेषो यौगन्धरायणः आवन्तिकवेषधारिणी वासवदत्ता च)

(तब प्रवेश करता है संन्यासी वेष धारी यौगन्धरायण और अवंती नगर की महिलाओं जैसा वेष धारण किए हुए वासवदत्ता।)

टिप्पणी

यौगन्धरायणः–(कर्णं दत्त्वा) कथमिहाप्युत्सार्यते? कुतः,

अनुवाद– यौगन्धरायण–(कान लगाकर) यहाँ भी किसलिए हटाया जा रहा है? किसलिए,

धीरस्याश्रमसंश्रितस्य वसतस्तुष्टस्य वन्यैः फलै
र्मानार्हस्य जनस्य वल्कलवतस्त्रासः समुत्पाद्यते।।
उत्सिक्तो विनयादपेतपुरुषो भाग्यैश्चलैर्विस्मितः
कोऽयं भो निभृतं तपोवनमिदं ग्रामीकरोत्याज्ञया।।3।।

अन्वयः– भोः धीरस्य, आश्रमसंस्थितस्य, वन्यैः फलैः तुष्टस्य, मानार्हस्य वल्कलवतः वसतः जनस्य त्रासः समुत्पाद्यते। अयं कः उत्सिक्तः विनयात् अपेतः, चलैः भाग्यैः विस्मितः पुरुषः इदं निभृतं तपोवनम् आज्ञया ग्रामीकरोति।

अनुवाद– क्योंकि धैर्यशाली, आश्रमवासी, वन में उत्पन्न कन्द मूल फलों से सन्तुष्ट रहने वाले, सम्माननीय एवं वल्कल वस्त्र धारण करने वाले वनवासी मुनिजनों को भी त्रास उत्पन्न किया जा रहा है। मर्यादा रहित एवं नम्रतारहित यह कौन मनुष्य है, जो चञ्चल भाग्य से आश्चर्यान्वित होकर इस शान्त तपोवन को राजाज्ञा से गाँव की भाँति अशान्त बना रहा है।

व्याख्या – प्रस्तुत श्लोक में मगध नरेश दर्शक की बहिन राजकुमारी पद्मावती का अनुगमन करने वाले भृत्यों के द्वारा आश्रमवासियों को हटाये जाने का वर्णन किया गया है। आक्षेप अलंकार तथा शार्दूल विक्रीडितम् छन्द है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द– तपोवनम् – तपसे वनम् – चतुर्थी तत्पुरुष, मार्नाहस्य – मानाय अर्हः तस्य – चतुर्थीतत्पुरुष , विनयोदपेतपुरुषः – विनयादपेतश्चासौपुरुषः (कर्मधारय), संश्रितस्य – सम्+श्रि+क्त+ङस्, वसतः – वस्+शतृ (षष्ठी), तुष्टस्य– तुष्+क्त ङस् (षष्ठी), उत्सिक्तः – उत्+सिञ्च्+क्त।

वासवदत्ता– आर्य! क एष उत्सारयति?

अनुवाद– वासवदत्ता– आर्य! यह कौन है, जो हटा रहा है?

यौगन्धरायणः – यो धर्मादात्मानमुत्सारयति।

अनुवाद– यौगन्धरायण– जो स्वयं को धर्म से हटा रहा है।

वासवदत्ता– आर्य! नह्येवं वक्तुकामा, अहमपि नामोत्सारयितव्या भवामीति?

अनुवाद– वासवदत्ता– आर्य! मैं ऐसा नहीं कहना चाहती, क्या मुझे भी हटाया जाएगा?

यौगन्धरायणः – भवति! एवमनिर्ज्ञातानि दैवतान्यवधूयन्ते।

अनुवाद– यौगन्धरायण – देवि! इस प्रकार तो अनजाने में देवताओं का भी तिरस्कार हो जाता है।

वासवदत्ता– आर्य! तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति, यथायं परिभवः।

अनुवाद– वासवदत्ता– आर्य! थकान से वैसा कष्ट नहीं होता जैसा इस तरह के अपमान से।

टिप्पणी

यौगन्धरायणः – भुक्तोज्झित एव विषयोऽत्रभवत्या। नात्र चिन्ता कार्या, कुतः

अनुवाद– यौगन्धरायण – आपके द्वारा भी ऐसे सम्मान का उपभोग करके त्याग किया गया है। इस विषय में चिंता नहीं की जानी चाहिए, क्योंकि–

पूर्वं त्वयाप्यभिमतं गतमेवमासी–
च्छ्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः।
काल–क्रमेण जगतः परिवर्तमाना।
चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्य–पंक्तिः।।4।।

अन्वयः– पूर्वं त्वया अपि एवम् अभिमतं गतम् आसीत्। पुनः भर्त्तुः विजयेन श्लाघ्यं गमिष्यसि। जगतः भाग्यपंक्तिः चक्रारपंक्तिः इव कालक्रमेण परिवर्तमाना गच्छति।

अनुवादः– पहले तुमने भी इसी प्रकार अपने अभीष्ट को प्राप्त किया था और अब पुनः स्वामी की विजय के द्वारा पुनः प्रशंसा को प्राप्त करोगी। संसारी जीवों की भाग्य रेखा पहिये के अरों की रेखाओं के समान समयानुसार बदलती रहती है।

व्याख्या – वासवदत्ता द्वारा यह कहने पर कि आर्य थकावट उतनी खिन्नता उत्पन्न नहीं करती जितना कि तिरस्कार। तब यौगन्धरायण ने कहा कि महारानी आप द्वारा यह विषय पूर्व में भोगकर छोड़ दिया गया। अतः आप इस विषय में चिन्ता न करें। प्रस्तुत पद्य में अर्थान्तरन्यास अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है। इस श्लोक में मन्त्री यौगन्धरायण वासवदत्ता को विश्वास दिलाता है कि अपने पति उदयन की विजय के अनन्तर पुनः इस प्रकार के श्लाघनीय राजकीय सम्मान का आनन्द पाएगी, क्योंकि कोई भी वस्तु सदा एक ही अवस्था में नहीं रहती। भाग्य परिवर्तनशील होता है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द– अभिमतम् – अभि+मन्+क्त, गतम् – गम्+क्त, श्लाघ्यम् – श्लाघ्+यत्, परिवर्तमाना – परि+वृत्+मुक्+षानच्, कालक्रमेणः– कालस्यक्रमस्तेन (षष्ठी तत्पुरुष), चक्रारपंक्ति – चक्राराणांपक्ति – षष्ठी तत्पुरुष, भाग्य पंक्ति – भाग्यस्य पंक्ति – षष्ठी तत्पुरुष।

भटौ– उत्सरत आर्याः, उत्सरत !

अनुवाद– दो रक्षक – हटिए आर्यजन! हटिए ।

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः – सम्भषकः! न खलु न खलूत्सारणा कार्या। पश्य–

अनुवाद– काञ्चुकीयः– संभषक! न, न हटाओ मत, देखो–

परिहरतु भवान् नृपापवादं
न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम्।
नगरपरिभवान् विमोक्तुमेते,
वनमभिगम्य मनस्विनो वसन्ति।।5।।

टिप्पणी

अन्वय– भवान् नृपापवादं परिहरतु, आश्रमवासिषु परुषं न प्रयोज्यम्। एते मनस्विनः नगरपरिभवान् विमोक्तुम् वनम् अभिगम्य निवसन्ति।

अनुवाद – राजा के विरुद्ध लोकापवाद मत होने दो। तपोवन में रहने वालों को कटु वचन नहीं कहने चाहिए। ये मनस्वी मुनिजन शहर की बुराइयों से बचने के लिए अरण्य (वन) में आकर रह रहे हैं।

व्याख्या – कञ्चुकी सेवकों को उनके अशिष्ट व्यवहार के लिए डांटता है। यहाँ नृपापवाद से तात्पर्य उस कलंक से है जो सेवकों के खराब व्यवहार के कारण राजा के मत्थे मढ़ा जाता है, क्योंकि लोग सोचेंगे कि वे राजा के द्वारा ही इस प्रकार कार्य करने के लिए आदिष्ट हैं।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द– प्रयोज्यम् – प्र+युज्+ण्यत् , विमोक्तुम् – वि+मुच्+तुमुन्, अधिगम्य – अधि+गम्+ल्यप् ,नृपापवादम् – नृपस्य अपवादम् – षष्ठी तत्पुरुष।

उभौ– आर्य! तथा। (निष्क्रान्तौ)

(अनुवाद) **दोनों**– आर्य! वैसा ही होगा। (दोनों का प्रस्थान)

यौगन्धरायणः – हन्त! सविज्ञानमस्य दर्शनम्। वत्से! उपसर्पा–वस्तावदेनम्।

(अनुवाद) **यौगन्धरायण**– अहा! इसकी बुद्धि ज्ञानयुक्त है (अर्थात विवेक से संपन्न है)। पुत्रि! हम लोग इसके पास चलें।

वासवदत्ता– आर्य! तथा।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– आर्य! ऐसा ही करती हूं।

काञ्चुकीयः – भोस्तपस्विन्!

(अनुवाद) **कंचुकी**– हे तपस्वी!

यौगन्धरायणः – (आत्मगतम्) तपम्विन्निति गुणवान् खल्वयमालापः। अपरिचयात्तु न शिलष्यते मे मनसि।

(अनुवाद) **यौगन्धरायण**– (मन में) 'तपस्विन्' यह संबोधन तो बहुत ही अच्छा है। परंतु इसका परिचय न होने के कारण मुझे जंच नहीं रहा।

कांचुकीयः – भोः! श्रूयताम्। एपा खलु गूरुभिरभिहितनामधेयस्यास्माकं महाराजदशकस्य भगिनी पद्मावती नाम। सैषा नो महाराजमातरं महादेवीमाथम–स्यानभिगम्यानुज्ञाता तत्रभवत्या राजगृहमेव पास्यति। तदद्यास्मिन्नाश्रमपदे वासोऽभिप्रेतोऽस्याः। तद्भवन्तः–

(अनुवाद) **कंचुकी**– भगवन्! सुनिये। ये हमारे महाराज दर्शक की बहन पद्मावती है। ये हमारे प्रभु की माता महादेवी से, जो आश्रम में रह रही हैं, मिलकर उनकी आज्ञा से राजधानी को ही लौटेंगी। इसलिए आज इनका पड़ाव इसी आश्रम में डाला गया है।

तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान्
स्वैरं वनादुपनयन्तु तपोधनानि
धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्मपीड़ा–
मिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः।।6।।

टिप्पणी

अन्वय– तपोधनानि तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान् च वनात् स्वैरम् उपनयन्तु। हि धर्मप्रिया नृपसृता तपस्विषु धर्मपीड़ां न इच्छेत्। एतत् अस्याः कुलव्रतम्।

अनुवाद– तपस्या की साधनभूत सामग्री पवित्र जल, समिधाएँ, कुश, पुष्प इत्यादि स्वतन्त्रतापूर्वक वन से लाने का प्रयत्न करें क्योंकि धर्म में अनुराग रखने वाली राजकुमारी तपस्वियों के धर्माचरण में बाधा पहुंचाना नहीं चाहती? यह इनका कुलक्रमागत नियम है।

व्याख्या– प्रस्तुत पद्य में कंचुकी कहता है कि महारानी पद्मावती जो कि महाराज दर्शक की बहिन है उन्हें आश्रम में रहना अभिप्रेत है। अतः आप लोगों को उनके लिए जल, समिधाएँ, कुश, पुष्पादि को वन से लाने का प्रबन्ध करें। काव्यलिंग अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द– धर्मप्रिया – धर्मः प्रियाः यस्यासाः बहुब्रीहि, तीर्थोदकानि – तीर्थस्य उदकानि तीर्थोदकानि (षष्ठी तत्पुरुष) , तीर्थ – 'तरति पापादिकं यस्मात् सः तीर्थः तृ+थक्।

यौगन्धरायणः – (स्वागतम्) एवम्! एषा सा मगधराजपुत्री पद्मावती नाम, या पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकंरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति। ततः,–

(अनुवाद) **यौगन्धरायण**– (मन में) ऐसा! यही वह मगधनरेश की कन्या पद्मावती है, जो पुष्पकभ्रद आदि ज्योतिषियों के कथनानुसार महराज (उदयन) की रानी होने वाली है। इसीलिए–

प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते।
भर्तृदाराभिलाषित्वादस्यां मे महती स्वता।।7।।

अन्वय– प्रद्वेषः वा बहुमानः, संकल्पात् (एव) उपजायते। भर्तृदाराभिलाषित्वात् अस्यां मे महती स्वता (अस्ति)।

अनुवाद– शत्रुता अथवा सम्मान, मन के संकल्प अथवा भवना से ही उत्पन्न होते हैं। इसलिए स्वामी उदयन की पत्नी बनाने की अभिलाषा के कारण ही इस पद्मावती में मेरी अत्यधिक आत्मीयता है।

व्याख्या– प्रस्तुत श्लोक में यौगन्धरायण वासवदत्ता को अपने महाराजा की भावी पत्नी के रूप में देखने के कारण उसके प्रति सम्मान भाव का प्रदर्शन करता है। यह भाव स्वतः ही उसके हृदय से विस्फुटित होते हैं। प्रस्तुत पद्य में अर्थान्तरन्यास तथा काव्यलिंग अलंकार, अनुष्टुप छन्द है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द– संकल्पात् – सम्+क्लृप+घञ् , प्रदेशः– प्रकृष्टेदृषः इति प्रदेशः (प्रादि समास) , स्वता – स्व+तल , दारा – दार शब्द पुंसि बहुवचने च केवलम्।

वासवदत्ता– (स्वगतम्) राजदारिकेति श्रुत्वा भगिनिकास्नेहोऽपि मेऽत्र सम्पद्यते।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– (मन में) 'राजकुमारी' यह सुनकर मुझे इसके प्रति ऐसा स्नेह हो रहा है जेसा बहन का बहन के प्रति होता है।

(ततः प्रविशति पद्मावती सपरिवारा चेटी च)

(तत्पश्चात परिवार सहित पद्मावती और चेटी का प्रवेश)

टिप्पणी

चेटी– एतु, एतु भर्तृदारिका। इदमाश्रमपदं प्रविशतु।

(अनुवाद) **दासी**– आइये, राजकुमारी जी। आइये! इस आश्रम में चलें।

(ततः प्रविशत्युपविष्टा तापसी)

तापसी– स्वागतं राजदारिकायाः।

(तदनन्तर बैठी हुई तपस्विनी का प्रवेश)

(अनुवाद) **तापसी**– राजकुमारी का स्वागत है।

वासवदत्ता– (स्वगतम्) सा राजदारिका। अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम्।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– (मन में) यह वही राजकुमारी है। इसा सौंदर्य कुलीनता के अनुरूप ही है।

पद्मावती– आर्ये! वन्दे।

(अनुवाद) **पद्मावती**– आर्ये! मैं प्रणाम करती हूं।

तापसी– चिरं जीव। प्रविश जाते! प्रपिशि। तपोवनानि नामातियिजनस्य स्वगेहम्।

(अनुवाद) **तापसी**– चिरजीविनी होओ। आओ बेटी! आओ! तपोवन तो अतिथियों का अपना ही घर होता है।

पद्मावती– भवतु। भवतु। आर्ये! विश्वस्तास्मि। अनने बहुमानवचननानुगृहीतास्मि।

(अनुवाद) **पद्मावती**– बिल्कुल ठीक। आर्ये। मुझे विश्वास हो गया। (आपके) इस सम्मानसूचक वचन से मैं अनुगृहीत हूं।

वासवदत्ता– (स्वगतम्) नहि रूपमेव, वागपि खल्वस्या मधुरा।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– (मन में) केवल रूप ही नहीं इसकी वाणी भी मधुर है।

चेटी– अस्ति राजा प्रद्योतो नामोज्जयिन्याः। स दारकस्य कारणात् दूतसम्पातं करोति।

(अनुवाद) **दासी**– उज्जैन के राजा प्रद्यौत हैं। उन्होंने (अपने) पुत्र के वास्ते दूत भेजा है।

तापसी– अहा खल्वियमाकृतिरस्य बहुमानस्य। उभे राजकुले महत्तरे इति श्रूयते।

(अनुवाद) **तापसी**– निःसंदेह (पद्मावती का) यह रूप लावण्य इस सम्मान के योग्य है। सुना जाता है कि दोनों राजवंश बड़े ऊंचे हैं।

पद्मावती– आर्ये! किं दृष्टो मुनिजन आत्मानमनुग्रहीतुम्? अभिप्रेतप्रदानेन तपस्विजन उपनिमन्त्र्यतां तावत् कः किमत्रेच्छतीति।

(अनुवाद) **पद्मावती**– आर्य! क्या आपको ऐसे कोई ऋषि–मुनि दिखाई दिये हैं जो (कुछ स्वीकार करके) मुझे अनुगृहीत करें? अभीष्ट वस्तु दी जाने की घोषणा करते हुए आप तपस्वियों से प्रार्थनापूर्वक पूछिए कि कौन क्या चाहता है?

काञ्चुकीयः – यदभिप्रेतं भवत्या। भो भो आश्रमवासिनस्तपस्विनः। शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः। इहात्रभवती मगधराजपुत्री अनेन विश्रम्भेणोत्पादितविस्रम्भा धर्मार्थमर्थेनोपनिमन्त्रयते।

(अनुवाद) **कंचुकी**– जो आपकी इच्छा। हे आश्रमनिवासी मुनिवृन्द्! आप लोग सुनिए। यहां माननीय मगध राजकुमारी अपने स्वागत से संतुष्ट होकर पुण्य की कामना से आप लोगों को दान देने के लिए बुला रही हैं।

टिप्पणी

कस्यार्थः कलशेन को मृगयते वासो यथा निश्चितं
दीक्षां पारितवान् किमिच्छति पुनर्देयं गुरोर्यद्भवेत्।
आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया
यद् यस्यास्ति समीप्सितं वदतु तत् कस्याद्य किं दीयताम्।।8।।

अन्वयः– कस्य कलशेन अर्थ? कः वासः मृगयते? यथा निश्चितं दीक्षां पारितवान् (स्नातकः) पुनः किं इच्दति यत् गुरोः देयं भवेत्? धर्माभिरामप्रिया नृपजा इह आत्मानुग्रहं इच्छिति। यस्य यत् समीप्सितम् तत् वदतु, अद्य कस्य किं दीयताम्?

अनुवाद :– किसको कमण्डलु की आवश्यकता है? कौन वस्त्र खोज रहा है। विधिपूर्वक दक्षिणा लिये जाने पर भी गुरु को कौन गुरुदक्षिणा में क्या देना चाहता है? धर्म का आचरण करने वाले तपस्वियों से अनुराग रखने वाली राजकुमारी इस आश्रम में अपने ऊपर आप लोगों की कृपा चाहती है। अतएव जिसको भी जो अभिष्ट हो, उसे कहें।

व्याख्या– आश्रम में निवास करने वाले तपस्वियों को महारानी पद्मावती धर्माचरण की इच्छा से मन चाही वस्तु का दान देने के लिए आमन्त्रित कर रही है। यह प्रसंग मंत्री को अपने संकल्प को पूर्ण करने हेतु सर्वोचित प्रतीत होता है, और उसे अपनी योजना फलीभूत होती प्रतीत पड़ती है। स्वभावोक्ति तथा अनुप्रास अलंकार है। इस श्लोक में शान्त रस व प्रसाद गुण परिलक्षित है। इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडितम् छन्द है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द– देयम् – दा+यत्, समीप्सित – सम्+ईप्स्+क्त, धर्माभिरामप्रिया – धर्मे अभिरामः अभिरतिःरुचिः यस्या सा प्रिया धर्माभिराम प्रिया – बहुब्रीहि, यथा, निश्चितम्–निश्चयं अनतिक्रम्य इति (अव्ययीभावः)।

यौगन्धरायणः – हन्त् दृष्ट उपायः। (प्रकाशम्) भोः! अहमर्थी।

(अनुवाद) **यौगन्धरायण**– अहा! उपाय सूझ गया। (प्रकट) अजी! मैं प्रार्थी हूं।

तापसी– सन्तुष्टतपस्विजनमिदमाश्रमपद्। आगन्तुकेनानेन भवितव्यम्।

(अनुवाद) **तापसी**– इस आश्रम के तो सभी तपस्वी संतुष्ट हैं, यह कोई आगंतुक ही होगा।

काञ्चुकीयः – भोः! किं क्रियताम्?

(अनुवाद) **कंचुकी**– अजी, क्या चाहते हैं?

यौगन्धरायणः – इयं मे स्वसा। प्रोषितभर्तृकामिमामिच्छाभ्यत्रभवत्या कञ्चित कालं परिपाल्यमानाम्। कुतः–

(अनुवाद) **यौगन्धरायण**– यह मेरी बहन है। इसके पति परदेश गये हुए हैं। इसलिए मैं चाहता हूं कि कुछ समय तक माननीय राजकुमारी जी इसको अपनी देख–रेख में रखें।

टिप्पणी

कार्यं नैवार्थैर्नापि भोगैर्न वासै–
र्नाहिं काषायं वृत्तिहेतोः प्रपन्नः।
धीरा कन्येयं दृष्टधर्मप्रचारा
शक्ता चारित्रम् रक्षितुं मे भगिन्याः।।9।।

अन्वयः– (मम) न एव अर्थैः, न अपि भोगैः न(च) वस्त्रैः कार्यम् (अस्ति)। न अहं वृत्तिहेतोः काशायं प्रपन्नः। इयं कन्या धीरा दृष्टधर्मप्रचारा (अस्ति) अतएव मे भगिन्याः चारित्र्यं रक्षितुं शक्ता (अस्ति)।

अनुवादः– न मुझे धन से प्रयोजन है, न मुझे सांसारिक भोगों से ही कोई लेना देना है और न ही वस्त्रों से कोई प्रयोजन है तथा न मैंने ये कषाय वस्त्र आजीविका के लिए धारण किये हैं। धैर्यशाली धर्माचरण का ज्ञान रखने वाली यह महाराज की विदुषी कन्या धर्मप्रिया है, अतः मेरी बहिन के चरित्र की रक्षा करने में पूर्णतः समर्थ हैं।

व्याख्या– प्रस्तुत श्लोक में यौगंधरायण पद्मावती से कहते हैं कि यह मेरी बहन है। परदेश गये हुए पति वाली इसको आपके पास कुछ समय के लिए संरक्षण में रखना चाहता हूँ। प्रस्तुत श्लोक में वैष्वदेवी नामक छन्द है। जिसका लक्षण आचार्यों ''पञ्चाश्वैश्छिन्ना वैष्वदेवी ममौयौ'' दिया है। वर्णसाम्य के कारण अनुप्रास अलंकार का प्रयोग मिलता है। शान्त रस प्रसाद गुण एवं छोटे वाक्यों के कारण दण्डक शैली का प्रयोग किया गया है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द– दीक्षाम् – दीक्षा+अ+टाप् पारितवान्– पार+क्तवत्, समीप्सितम् – सम्+आप्+सन्+क्त्, दीयताम् – दा+लोट्, दृष्ट धर्मप्रचारा – दृष्टः धर्मस्य प्रचारो यया सा।

वासवदत्ता– (आत्मगतम्) हम्, इह मां निक्षेप्तुकाम आर्ययौगन्धरायणः। भवतु, अविचार्य कर्म न करष्यिति।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– (मन में) हूं। आर्य यौगन्धरायण मुझे यहां सोंपना चाहते हैं। ठीक है, बिना विचारे वे कोई काम नहीं करेंगे।

काञ्चुकीयः – भवति! महती खल्वस्य व्यपाश्रयणा। कयं प्रतिजानीमः।? कुतः–

(अनुवाद) **कंचुकी**– राजकुमारी जी! इसकी आश्रय–प्रार्थना बहुत बड़ी अर्था बहुत कठिन है। हम कैसे स्वीकार करें? क्योंकि–

सुखमर्थो भवेद् दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः।
सुखमन्यद् भवेत् सर्व दुःखं न्यासस्य रक्षणम्।।10।।

अन्वयः– (हे देवि!) अर्थः दातुं सुखं भवेत् प्राणाः तपः दातुं सुखं, (भवेत्) अन्यतः सर्वम् सुखं (दातुं भवेत्) परन्तु न्यासस्य रक्षणं (महत्) दुःखम्।

अनुवादः– हे देवि! धन देना सरल है? प्राणों को त्याग देना सरल है तथा तपजन्य फल देना भी सरल है और सभी कुछ देना सरल है परन्तु न्यास (धरोहर) की रक्षा करना बड़ा कठिन है।

व्याख्या– कंचुकी पद्मावती से कहता है कि किसी को धरोहर के रूप में रखना अत्यंत ही दुरूह कार्य है क्योंकि अन्य वस्तुओं का दान तो सरल है परन्तु धरोहर रक्षण अत्यंत कठिन है। इस तपस्वी की बहिन को धरोहर के रूप में रखने की प्रार्थना बहुत कठिन है। इसे कैसे स्वीकार किया जाए? प्रस्तुत श्लोक अर्थान्तरन्यास अलंकार एवं अनुष्टुप् छन्द है। श्लोक में न्यास की रक्षा करना अत्यन्त कठिन बताया है। प्रसाद गुण है।

टिप्पणी

व्याकरणगत प्रमुख शब्द– दातुम् – दा+तुमुन्, प्राणा – प्राण शब्द पुलिंग और नित्य बहुवचनान्त है, न्यास – नि+अस्+धञ्। रक्षणम् – रक्ष+ल्युट् प्रत्यय।

पद्मावती– आर्य! प्रथममुद्घोष्य कः किमिच्छतीत्ययुक्तमिदानीं विचारयितुम् यदेष भणति, तदनुतिष्ठत्वार्यः।

(अनुवाद) **पद्मावती**– आर्य! पहले यह घोषणा करके कि कौन क्या चाहता है, अब कौन क्या चाहता है यह सोचना अनुचित है। ये जो कहते हैं, उसे आप कीजिए।

काञ्चुकीय– अनुरूपमेतद् भवत्याहितम्।

(अनुवाद) कंचुकी– यह आपने अपने योग्य ही कहा।

चेटी– चिरं जीवतु भर्तृदारिकैवं सत्यवादिनी।

(अनुवाद) **दासी**– इस प्रकार सत्य बोलने वाली (हमारी) राजकुमारी चिरकाल तक जीएं।

तापसी– चिरं जीवतु भद्रे।

(अनुवाद) **तापसी**– मंगलमयी। आप दीर्घायु हों।

काञ्चुकीयः – भवति! तथा। (उपगम्य) भोः! अभ्युपगतमत्र भवतो भगिन्याः परिपालनमत्रभवत्या।

(अनुवाद) **कंचुकी**– अच्छा, देवी! (समीप जाकर) भगवन्! माननीया राजकुमारी ने आपकी बहन की देखभाल करना स्वीकार कर लिया है।

यौगन्धरायणः – अनुगृहीतोऽस्मि तत्रभवत्या। वत्से! उपसर्पात्रभवतीम्।

(अनुवाद) **यौगन्धरायण**– राजकुमारी जी ने मुझ पर बड़ा अनुग्रह किया। पुत्री! देवी जी के पास जाओ।

वासवदत्ता– (आत्मगतम्) का गतिः एषा गच्छामि मन्दभागा।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– दूसरा उपाय ही क्या है। मैं अभागी अब जाती हूं।

पद्मावती– भवतु भवतु। आत्मीयेदानीं संवृत्ता।

(अनुवाद) **पद्मावती**– अच्छा, अच्छा। अब यह अपनी हो गई।

तापसी– या ईदृश्यस्या आकृतिः, इयमपि राजदारिकेति तर्कयामि।

(अनुवाद) **तापसी**– जैसी इसकी आकृति है तो लगता है कि यह भी राजकुमारी है।

चेटी– अहमपि अनुभूतसुखेति पश्यामि।

(अनुवाद) **दासी**– आर्या ठीक कह रही हैं। मुझे भी लगता है कि यह सुखों में पली है।

यौगन्धरायणः – (आत्गमतम्) हन्त भोः! अर्धमवसितं भारस्य। यथा मन्त्रिभिः सह समर्थितं, तथा परिणमति। ततः प्रतिष्ठिते स्वामिनि तत्रभवतीमुपनयतो मे इहात्रभवतो मगधराजपुत्री विश्वासस्थानं भविष्यति। कुतः–

टिप्पणी

(अनुवाद) **यौगन्धरायण**– (मन में) अहा! आधा भार तो उतर गया। मंत्रियों के साथ जैसा निश्चय किया गया था वैसा ही हो रहा है। क्रमशः स्वामी (महाराज उदयन) के राजसिंहासन पर बैठ जाने के पश्चात जब मैं वासवदत्ता को उनके पास ले जाउंगा तो माननीया मगध राजकुमारी ही इस संबंध में अर्थात (वासवदत्ता का चरित्र–शुचित के बारे में) साक्षिणी होगी। क्योंकि–

पद्मावती नरपतेर्महिषी भवित्री
दृष्टा विपत्तिरथ यैः प्रथमं प्रदिष्टा।
तत्प्रत्ययात् कृतमिदं न हि सिद्धवाक्या–
न्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि।।11।।

अन्वयः– यैः प्रथमं विपत्तिः प्रदिष्टा दृष्टा (तैः) अथ पद्मावती नरपतेः महिषी भवित्री तत्प्रत्ययात् इदं कृतम्। हि विधिः सुपरीक्षितानि सिद्धवाक्यानि उत्क्रम्य न गच्छति।

अनुवादः– जिन पुष्पक भद्रक आदि ज्योतिषियों के द्वारा पहले ही विपत्ति के बारे में देख लिया गया था। वह हमने देख ली है उन्होंने ही इसके बाद महाराजा उदयन की महिषी पद्मावती होगी? भविष्य में होने वाली इस बात पर विश्वास करके ही यह धरोहर रूपकार्य किया है। निश्चय ही भली प्रकार परीक्षा किये सिद्ध पुरुष के वचनों का अतिक्रमण भाग्य भी नहीं कर सकता है।

व्याख्या– यौगन्धरायण अपने मन ही मन में कहता है कि स्वामी उदयन के प्रतिष्ठित होने पर देवी के समीप ले जाते समय मेरे लिए यह मगधराजपुत्री ही इस विषय में साक्षी बनेगी क्योंकि निश्चय ही भली प्रकार परीक्षा किये सिद्ध पुरुष के वचनों का अतिक्रमण भाग्य भी नहीं कर सकता है। प्रस्तुत श्लोक में काव्य लिंग अलंकार एवं बसन्ततिलका छन्द है। प्रस्तुत श्लोक से ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान मिलता है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द– दृष्टा– दृश+क्त+टाप्, विपत्ति – वि+पद्+क्तिन्, प्रदिष्टा – प्र+दिश्+क्त+टाप्, कृतम् – कृ+क्त, उत्क्रम्य – उत+क्रम+ल्यप्।

(ततः प्रविशति ब्रह्मचारी)

ब्रह्मचारी– (ऊर्ध्वमवलोक्य) स्थितो मध्याह्नः। दृढमस्मि परिश्रान्तः। अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमयिष्ये? (परिक्रम्य) भवतु, दृष्टम्। अभितस्तपोवनेन भवितव्यम्। तथाहि–

अनुवाद– (तदनन्तर ब्रह्मचारी का प्रवेश)

(अनुवाद) **ब्रह्मचारी**– (ऊपर देखकर) मध्याह्नकाल हो गया। मैं बहुत थक चला हूं। किस स्थन में विश्राम करूं? (घूमकर) अच्छा, (स्थान) देख लिया। तपोवन समीप ही जान पड़ता है। क्योंकि–

विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः।
भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निःसंदिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः।।12।।

अन्वयः– अत्र देशागतप्रत्ययाः हरिणाः अचकिताः (सन्तः) विश्रब्धं चरन्ति, सर्वे वृक्षा दयारक्षिताः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः (सन्ति) कपिलानि गोकुलधनानि भूयिष्ठं (सन्ति)। दिशः अक्षेत्रवत्यः। अयं बह्वाश्रयः धूमः (प्रसरति)। अतः निःसन्दिग्धम् इदम् तपोवनम् (अस्ति)।

टिप्पणी

अनुवाद– यहाँ पर विश्वास उत्पन्न हो जाने के कारण हरिणों के झुण्ड भय त्याग कर विश्वासपूर्वक चर रहे हैं अथवा विचरण कर रहे हैं। सभी वृक्ष फलों एवं फूलों से युक्त हैं। तथा ऋषियों द्वारा प्रेमपूर्वक पाले–पोसे गये हैं। कपिल वर्ण वाली गायों का बड़ा समूह है। दिशायें खेतों वाली नहीं है। अनेक होम–द्रव्यों की गन्ध वाला धुंआ सर्वत्र फैल रहा है। अतः निश्चय ही यह तपोवन है।

व्याख्या– महाकवि भास ने आश्रम का स्वाभाविक एवं मनोहर चित्र प्रस्तुत किया है। तपोवन का वातावरण शान्त, अहिंसक एवं पवित्र है। प्रस्तुत श्लोक में तपोवन का स्वाभाविक वर्णन होने के कारण स्वाभावोक्ति व वाक्यार्थहेतुक होने से काव्यलिंग अलंकार है। तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द– सुपरिपालनीय – सु+परि+पाल्+णिच्+अनीयर, श्रुति– श्रु+क्तिन्, आगत– आ+गम्+क्त, गन्तव्यम्–गम+तव्यवत्, परिसमाप्ता– परि+सम्+आप्+क्त्+टाप्, संवृत्तम्– सम्+वृत्+क्त।

यावत्प्रविशामि। (प्रविश्य) अये! आश्रमविरुद्धः खल्वेष जनः। (अन्यतो विलोक्य) अथवा तपस्विजनोऽप्यत्र। निर्दोषमुपसर्पणम्। अये! स्त्रीजनः।

अनुवाद– तो भीतर चलूं। (प्रविष्ट होकर) अरे! यहां भीड़ तो आश्रम के विरुद्ध (अर्थात रहने वाले नहीं) मालूम होता है। (दूसरी तरफ देखकर) अथवा यहां तपस्वी लोग भी हैं। जाने में कोई दोष नहीं। अरे! स्त्रियां (भी हैं)।

कांचुकीयः – स्वैरं स्वैरं प्रविशतु भवान्। सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम।

(अनुवाद) **कंचुकी**– स्वतंत्रता से चले आइये। आश्रम तो सभी के लिए उन्मुक्त है।

वासवदत्ता– हम्!

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– उंह!

पद्मावती– अम्मो! परपुरुषदर्शनं परिहरत्यार्या। भवतु, सुपरिपालनीयः खलु मन्न्यासः।

(अनुवाद) **पद्मावती**– अहा! आर्या (वासवदत्ता) पर पुरुष को देखना नहीं चाहती। अच्छा है, तब तो मेरी धरोहर की रक्षा बहुत सरल हो गई।

काञ्चुकीयः – भोः पूर्वं प्रविष्टाः स्मः। प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कारः।

(अनुवाद) **कंचुकी**– अजी! हम पहले यहां आए हैं, (इसलिए हमसे) अतिथि सत्कार स्वीकार कीजिए।

ब्रह्मचारी– (आचम्य) भवतु–भवतु! निवृत्तपरिश्रमोऽस्मि।

(अनुवाद) **ब्रह्मचारी**– (आचमन करने) ठीक, ठीक! मेरी थकावट दूर हो गई।

यौगन्धरायणः – भोः! कुत आगम्यते, क्व गन्तव्यं, क्वाधिष्ठानमार्यस्य।

(अनुवाद) **यौगन्धरायण**– महोदय, कहां से आ रहे हैं? कहां जाना है? और कहां आपका निवास स्थान है?

ब्रह्मचारी– भोः! श्रूयताम्। राजगृहतोऽस्मि। श्रुतिविशेषणार्थं वत्सभूमौ लावाणकं नाम ग्रामस्तत्रोषितवानस्मि।

टिप्पणी

(अनुवाद) **ब्रह्मचारी**– श्रीमन्! सुनिए। मैं राजगृह से आ रहा हूं। महाराज वत्स के राज्य में लावाणक नाम का एक गांव है, वहां मैं वेद विशेष का अध्ययन करने के लिए रह चुका हूं।

वासवदत्ता– (आत्मगतम्) हा लावाणकं नाम। लावाणकसंकीर्तनेन पुनर्नवीकृत इव मे सन्तापः।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– (मन में) हाय! लावाणक! लावाणक का नाम सुन कर मेरा संताप ताजा हो गया।

यौगन्धरायणः – अथ परिसमाप्ता विद्या?

(अनुवाद) **यौगन्धरायण**– क्या अध्ययन पूर्ण हो गया?

ब्रह्मचारी– न खलु तावत्।

(अनुवाद) **ब्रह्मचारी**– अभी नहीं।

यौगन्धरायणः – यद्यनवसिता विद्या, किमागमनप्रयोजनम्?

(अनुवाद) यौगन्धरायण– यदि अध्ययन पूर्ण नहीं हुआ तो किसलिए चले आए।

ब्रह्मचारी– तत्र खल्वतिदारुणं व्यसनं संवृत्तम्।

(अनुवाद) **ब्रह्मचारी**– वहां बड़ी भारी विपत्ति पड़ गई।

यौगन्धरायणः– कथमिव?

(अनुवाद) **योगन्धरायण**– कैसी (विपत्ति)?

ब्रह्मचारी– तत्रोदयनो नाम राजा प्रतिवसति।

(अनुवाद) **ब्रह्मचारी**– वहां उदयन नामक राजा रहते थे।

यौगन्धरायणः – श्रूयते तत्रभवानुदयनः। किं सः?

(अनुवाद) **यौगन्धरायण**– महाराज उदयन का नाम सुना है। उन्हें क्या हुआ?

ब्रह्मचारी– तस्यावन्तिराजपुत्री वासवदत्ता नाम पत्नी दृढमभिप्रेता किल।

(अनुवाद) **ब्रह्मचारी**– मालव राजकुमारी वासवदत्ता नाम की उनकी अति प्रिय पत्नी थी।

यौगन्धरायणः – भवितव्यम्। ततस्ततः?

(अनुवाद) **यौगन्धरायण**– होगी। तब क्या हुआ?

ब्रह्मचारी– ततस्तस्मिन् मृगयानिष्क्रान्ते राजनि ग्रामदाहेन सा दग्धा।

(अनुवाद) **ब्रह्मचारी**– तब (एक दिन) राजा के शिकार पर जाने पर गांव में आग लगने से वह जल मरी।

वासवदत्ता– (आत्मगतम्) अलीकम् अलीकं खलु एतत। जीवामि मन्दभागा।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– (मन में) झूठ है। यह बिल्कुल झूठ है। मैं अभागिन जीवित हूं।

यौगन्धरायणः – ततस्ततः?

टिप्पणी

(अनुवाद) **यौगन्धरायण**– फिर, फिर क्या हुआ?

ब्रह्मचारी– ततस्तामभ्यवपत्तुकामो यौगन्धरायणो नाम सचिवस्तस्मिन्नेवाग्नी पतितः।

(अनुवाद) **ब्रह्मचारी**– तब उसको बचाने के लिए यौगन्धरायण नाम का मंत्री उसी आग में गिर पड़ा।

यौगन्धरायणः– सत्यं पतित इति। ततस्ततः?

(अनुवाद) **यौगन्धरायण**– सचमुच गिर गया? फिर क्या हुआ?

ब्रह्मचारी– ततः प्रतिनिवृत्ते राजा तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा तयोर्वियोगजनितसन्तापस्त–स्मिन्नेवाग्नौ प्राणान् परित्यक्तुकामोऽमात्यैर्महता यत्नेन वारितः।

(अनुवाद) **ब्रह्मचारी**– शिकार से लौटने पर जब राजा ने उन दोनों का समाचार सुना तब वह उनके वियोग में संतप्त होकर उसी आग में (कूद कर) प्राण त्याग के लिए उतारू हो गया। किंतु मंत्रियों के बड़े यत्न से उसे रोका गया।

वासवदत्ता– (आत्मगतम्) जानामि जानाम्यार्यपुत्रस्य अय्यमइ सानुक्रोशत्वम्।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– (मन में) जानती हूं, जानती हूं। आर्यपुत्र मुझ पर कृपा रखते हैं।

यौगन्धरायणः – ततस्ततः?

(अनुवाद) **यौगन्धरायण**– तब क्या हुआ?

ब्रह्मचारी– ततस्तस्याः शरीरोपभुक्तानि दग्धशेषाण्याभरणानि परिष्वज्य राजा मोहमुपगतः।

(अनुवाद) **ब्रह्मचारी**– तब वासवदत्ता के पहने हुए उन गहनों को, जो जलने से बच गये थे, छाती से लगाकर राजा मूर्च्छित हो गए।

वासवदत्ता– (स्वगतम्) सकाम इदानीमार्ययौगन्धरायणो भवतु।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– (मन में) अब आर्य यौगन्धरायण की अभिलाषा पूर्ण हो।

चेटी– भर्तृदारिके! रोदिति खलु इयम् आर्या।

(अनुवाद) **दासी**– राजकुमारी जी! ये आर्या तो रो रही है।

पद्मावती– सानुक्रोशया भवितय्यम्।

(अनुवाद) **पद्मावती**– दयालु स्वभाव की होंगी।

यौगन्धरायणः – अथ किमथ किम्। प्रकृत्या सानुक्रोशा में भगिनी। ततस्ततः?

(अनुवाद) **यौगन्धरायण**– और क्या, और क्या। मेरी बहन स्वभाव से ही दयालु है। तब क्या हुआ?

ब्रह्मचारी– ततः शनैः शनैः शनैः प्रतिलब्धसंज्ञः संवृत्तः।

(अनुवाद) **ब्रह्मचारी**– बाद में धीरे–धीरे राजा की मूर्च्छा दूर हुई।

पद्मावती– दृष्ट्या ध्रियते। मोहं गत इति श्रुत्वा शून्यमिव मे हृदयम्?

(अनुवाद) **पद्मावती**– भाग्य से वे जी रहे हैं। 'मूर्छित हो गये' यह सुनकर मेरा हृदय शून्य–सा हो गया था।

टिप्पणी

यौगन्धरायणः – ततस्ततः?

(अनुवाद) **यौगन्धरायण**– तब क्या हुआ?

ब्रह्मचारी– ततः स राजा महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः सहसोत्थाय 'हा वासवदत्ते! हा अवन्तिराजपुत्रि! हा प्रिये! हा प्रियशिष्ये!' इति किमपि किमपि बहु प्रलपितवान्। किं बहुना–

(अनुवाद) **अनुवाद**– तदनन्तर जीमन पर लोटने से राजा का शरीर धूलिधूसरित हो गया। फिर वे एकाएक उठ कर 'हाय वासवदत्ता! हाय मालव राजकुमारी! हाय प्यारी! हाय प्रिये शिष्ये।' इत्यादि बहुत विलाप करने लगे। अधिक क्या कहूं–

नैवदानीं तादृशाश्चक्रवाका नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्ता भर्तृस्नेहात् सा हि दग्धाप्यदग्धा।।13।।

अन्वयः– इदानीं तादृशाः चक्रवाकाः न एव (सन्ति), स्त्रीविशेषैः वियुक्ताः अन्ये अपि तादृशा न एव (सन्ति) सा स्त्री धन्या यां भर्ता तथा वेत्ति। हि सा दग्धा अपि भर्तृस्नेहात् अदग्धा (वर्तते)।

अनुवादः– इस समय वैसे चकवे भी नहीं है, न तो स्त्रियों से वियुक्त अन्य ही कोई है। वह स्त्री धन्य है जिसे पति उस भाँति मानता है। वस्तुतः वह जल जाने पर भी पति स्नेह के कारण जली नहीं है अर्थात् जीवित हैं।

व्याख्या– प्रस्तुत श्लोक में राजा उदयन के वासवदत्ता को स्मरण करते हुए बेहोश हो जाने का वर्णन किया गया है। ब्रह्मचारी कहता है कि भूमि पर लौटने से धूल धूसरित शरीर वाले राजा उदयन ने अचानक उठकर कहा कि हा वासवदत्ते! हा अवन्ति राजपुत्रि! हा प्रिय शिष्ये! ऐसा कहकर बहुत देर तक विलाप करते रहे। ब्रह्मचारी द्वारा अपने प्रति राजा के प्रेम को सुनकर वासवदत्ता मन ही मन अत्यंत प्रसन्न होती है। इसमें दाम्पत्य प्रेम का आदर्श उपस्थित किया गया है। साथ ही वासवदत्ता के वियोग में उदयन की विरह व्यथा की सशक्त व्यंजना हुई है। प्रस्तुत पद्य में विरोधाभस और प्रतीप अलंकार है। लक्षण – प्रतीपमुपमानस्योपमेयत्वप्रकलप्नम्। प्रस्तुत श्लोक में शालिनी छन्द है। जिसका लक्षण है– मातौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः।।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द– वियुक्ता– वि+युज्क्त , भर्ता– भृ+तृच्, दग्धा– दह+क्त+टाप्, नैवाप्यन्ये – न+एव+अपि+अन्ये , नैवेदानीम् – न+एव+इदानीम, स्त्री विशेषा–स्त्रीणां विशेषाःस्त्रीविशेषाः तैः (षष्ठी तत्पपुरुष समास)।

यौगन्धरायणः – अथ भोः? तं तु पर्यवस्थापपितुं न कश्चिद् यत्नवानमात्यः?

(अनुवाद) **यौगन्धरायण**– क्यों महोदय! उन्हें प्रकृतिस्थ करने के लिए क्या कोई मंत्री प्रयत्नशील नहीं है?

ब्रह्मचारी– अस्ति रुमण्वान्नामामात्यो दृढं प्रयत्नवांस्तत्रभवन्तं पर्यवस्थापयितुम्। स हि–

(अनुवाद) **ब्रह्मचारी**– रुमझवान् नाम का एक मंत्री है, महाराज को होश में लाने के लिए खूब प्रयत्न कर रहा है। वह तो–

अनाहारे तुल्यः सतत दितक्षामवदनः,
शरीरे संस्कारं नृपतिसमदुःखं परिवहन्।
दिवा वा रात्रौ वा परिचरति यत्नैर्नरपतिं
नृपः प्राणान् सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरमः।।14।।

अन्वयः– (हि सः) अनाहारे तुल्यः, सततरुदितक्षामवदनः नृपतिसमदुःखं शरीरे संस्कारं परिवहन् दिवा वा रात्रौ वा यत्नैः नरपतिं परिचरति। यदि नृपः सद्यः प्राणान् त्यजति (तर्हि) तस्य अपि उपरमः निश्चितः।

अनुवादः– वह मन्त्री रुमण्वान राजा उदयन के न खाने पर स्वयं भी भोजन नहीं करता। सदैव रोते रहने के कारण राजा के समान उसका चेहरा भी म्लान हो गया है। उसकी वेशभूषा भी राजा के समान ही शोक प्रकट करने वाली हैं। क्या दिन, क्या रात वह बड़े ही प्रयत्न से राजा की सेवा–शुश्रुषा करता है यहाँ तक कि यदि राजा प्राण छोड़े तो उसका भी मरण हो जाए।

व्याख्या– राजा उदयन वासवदत्ता का स्मरण करते हुए शोकाकुल हो धरती पर लोटने लगते थे। अचानक उठकर वासवदत्ता को पुकारने लगते हैं तब यौगन्धरायण ने कहा कि क्या राजा को सान्त्वना देने का किसी मन्त्री ने प्रयास किया तब ब्रह्मचारी कहता है कि रुमण्वान नामक मन्त्री ने महाराज को होश में लाने का प्रयास किया यहाँ मंत्री यौगन्धरायण उस ब्रह्मचारी से यह जानने का प्रयास करता है की राजा की ऐसी अवस्था में उनका साथ कौन दे रहा है, एक प्रकार से मंत्री राजा के शुभचिंतक कौन है यह जानने का प्रयास करता है। इस श्लोक में रूमण्वान की राजा उदयन के प्रति राजभक्ति का वर्णन है। इस आमात्य का स्थान यौगन्धरायण के बाद था। इसमें बताया गया है कि जब राजा शोक–सन्तप्त होता था तो मन्त्री रुमण्वान भी तदनुकूल चेष्टा करता था।

प्रस्तुत पद्य में शिखरिणी छंद, काव्य लिंग अलंकार है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द– संस्कार – सम्+कृ+घञ्, परिचरति – परि+चर्+तिप् (लट् प्र.पु. एक व.), व्यजति – व्यज्+तिप् लट् प्र.पु.एक व., प्रततरुदितम् – प्रततं च तद्रुदितं (कर्मधारय), अनाहारे – न आहारः अनाहारः तस्मिन् अनाहारे (नञ्)।

वासवदत्ता– (स्वगतम्) दिष्टया सुनिक्षिप्तः इदानीम् आर्यपुत्रः।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– (मन में) सौभाग्य से इस समय पतिदेव अच्छे व्यक्ति के हाथ में सौंपे गए हैं।

यौगन्धरायणः – (आत्मगतम्) अहो महद्भारमुद्वहति रुमझवान्। कृतः –

(अनुवाद) यौगन्धरायण– (मन में) अरे रे! रुमण्वान् बहुत भार ढो रहा है, क्योंकि–

सविश्रमो ह्यहं भारः प्रसक्तस्तस्य तु श्रमः।
तस्मिन् सर्वमधीनं हि यस्याधीनो नराधिपः।।15।।

टिप्पणी

टिप्पणी

अन्वय– हि अयं (मदीयः) भारः सविश्रमः, तु तस्य श्रमः प्रसक्तः। हि नराधिपः यस्याधीनः सर्वम् तस्मिन् अधीनम्।

अनुवादः– निश्चय ही यह मेरा भार विश्राम युक्त है परन्तु उस रुमण्वान का तो परिश्रम निरन्तर ही जारी है क्योंकि राजा जिस पर आश्रित है सभी कुछ उसी पर आश्रित रहता है।

व्याख्या– 'तस्मिन् कृकृनराधियः' इस पंक्ति में यौगन्धरायण ने स्पष्ट किया है कि साम्राज्य का सर्वेसर्वा राजा ही होता है और जब राजा की देखभाल का दायित्व रुमण्वान पर है तो निश्चय ही साम्राज्य का पूर्ण भार भी उसी के कन्धों पर आ पड़ा है। प्रस्तुत श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार तथा अनुश्टुप छन्द विद्यमान हैं।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द– विश्राम– वि+श्रम+घञ, भार– भृ+अच, प्रसक्त– प्र+सज्ज+क्त, सविश्रम– विश्रमेणसहितःसविश्रमः (तत्पुरुष)।

(प्रकाशम्) अथ भोः! पर्यवस्थापित इदानीं स राजा।

(प्रकट) क्यों महाशय! अब तो वे राजा प्रकृतिस्थ हुए न?

ब्रह्मचारी– तदिदानीं न जाने। इह तया सह हसितम्, इह तया सह कथितम्, इह तया सह पुर्यषितम्, इह तया सह कुपितम्, इह तया सह शयितम्, इत्येवं तं विलपन्तं राजानममात्यैर्महता यत्नेन तस्माद् ग्रामाद् गृहीत्वापक्रान्तम्। ततो निष्क्रान्ते राजनि प्रोषितनक्षत्रचन्द्रमिव नभोऽरमणीयः संवृत्तः स ग्रामः। ततोऽहं निर्गतोऽस्मि।

(अनुवाद) **ब्रह्मचारी**– वह तो अब मुझे मालूम नहीं। 'इस जगह उसके साथ हंसा था, इस जगह उससे बातचीत की थी, इस जगह उसके साथ बैठा था, इस जगह उससे रूठा था, इस जगह उसके साथ सोया था।' इस प्रकार विलाप करते हुए राजा को बड़े प्रयास के साथ लेकर मंत्री लोग उस गांव से चले गए। पश्चात् राजा के चले जाने पर वह गांव उसी तरह हतश्री हो गया, जैसे चंद्रमा ओर तारों के अस्त हो जाने पर आकाश। इस कारण मैं भी वहां से चला आया हूं।

तापसी– स खलु गुणवान् नाम राजा य आगन्तुकेनाप्यनेनैवं प्रशस्यते।

(अनुवाद) **तापसी**– वह राजा अवश्य ही गुणवान् है, जिसकी प्रशंसा यह आगंतुक भी इस प्रकार कर रहा है।

चेटी– भर्तृदारिके! किन्नु खल्वपरा स्त्री तस्य हस्तं गमिष्यति?

(अनुवाद) **दासी**– राजकुमारी जी! क्या दूसरी स्त्री उसे मिलेगी? (अर्थात् क्या वे दूसरा करेंगे?)

पद्मावती– (आत्मगतम्) मम् हृदयेनैव सह मन्त्रितम्।

(अनुवाद) **पद्मावती**– (मन में) मेरे मन के अनुसार ही सोचा (अर्थात मेरे मन की बात कही)।

ब्रह्मचारी– आपृच्छामि भवन्तौ। (गच्छामस्तावत्।

(अनुवाद) **ब्रह्मचारी**– आप दोनों की अनुमति चाहता हूं। (अब मैं जाता हूं।)

उभौ– गम्यतामर्थसिद्धये।

(अनुवाद) **दोनों**– प्रयोजन–सिद्धि के लिए जाइए।

ब्रह्मचारी– तथास्तु। (निष्क्रान्तः)

(अनुवाद) **ब्रह्मचारी**– अच्छा। (जाता है)

यौगन्धरायणः – साधु, अहमपि तत्रभवत्याभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छामि।

टिप्पणी

(अनुवाद) **यौगन्धरायण**– अच्छा, मैं भी राजकुमारी जी की आज्ञा से जाना चाहता हूं।

पद्मावती– आर्यस्य भगिनिकाऽऽर्येण विनोत्कण्ठिष्यते।

(अनुवाद) **पद्मावती**– आर्य बहन इनके बिना घबड़ाएगी।

यौगन्धरायणः – साधुजनहस्तगतैषा नोत्कण्ठिष्यते। (काञ्चुकीयमवलोक्य) गच्छामस्तावत्।

(अनुवाद) **यौगन्धरायण**– भले लोगों के हाथ में जाने के कारण ये नहीं घबराएगी। (कंचुकी को देखकर) मैं अब जाता हूं।

काञ्चुकीयः – गच्छतु भवान् पुर्नदर्शनाय।

(अनुवाद) **कंचुकी**– जाइये आप, फिर दर्शन दीजिए।

यौगन्धरायणः – तथास्तु। (निष्क्रान्तः)

(अनुवाद) **यौगन्धरायण**– ऐसा ही हो। (जाता है)

काञ्चुकीयः – समय इदानीमभ्यन्तरं प्रवेष्टुम्।

(अनुवाद) कंचुकी– अब भीतर चलने का समय हो गया।

पद्मावती– आर्ये! वन्दे।

(अनुवाद) **पद्मावती**– आर्ये! प्रणाम करती हूं।

तापसी– जाते! तव सदृशं भर्तारं लभस्व।

(अनुवाद) **तापसी**– पुत्री! तुम्हें अपने योग्य पति मिले।

वासवदत्ता– आर्ये! वन्दे तावदहम्।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– आर्ये! मैं भी प्रणाम करती हूं।

तापसी– तुम्हें भी शीघ्र तुम्हारा पति मिले।

वासवदत्ता– अनुगृहीतास्मि।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– अनुगृहीत हूं।

काञ्चुकीयः – तदागम्यताम्। इत इतो भवति! सम्प्रति हि–

(अनुवाद) **कंचुकी**– तो आइये। इधर से चलिये, इधर से; इस समय–

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।
परिभ्रष्टो दूराद्रविरपि च संक्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम्।।16।।

टिप्पणी

अन्वयः— खगाः वासोपेताः मुनिजनः, सलिलमवगाढः, प्रदीप्तः अग्निःभाति, धूमः मुनिवनं प्रविचरति। अपि च दूरात् परिष्टः रविः संक्षिप्तकिरणः सन्, रथं व्यावर्त्य शनैः अस्तशिखरं प्रविशति।

अनुवादः— पक्षियों का समूह अपने अपने घोंसलों में चला गया है। मुनि जन जल में स्नान करने लगे हैं यज्ञ की प्रज्वलित अग्नि शोभित हो रही है यज्ञ का धुआँ आश्रम के चारों ओर फैल रहा है। दूर आकाश से नीचे आता हुआ तथा अपनी किरणों को समेटे हुए सूर्य भी अपने रथ को लौटाकर धीरे–धीरे अस्ताचल की ओर प्रस्थान कर रहा है। इससे प्रतीत होता है कि सन्ध्या का समय हो गया है।

व्याख्या— प्रस्तुत पद्य में सूर्यास्त का स्वाभविक तथा सजीव चित्रण करने में कवि का प्रकृति प्रेम दर्शनीय है। श्लोक में शिखरिणी छन्द है। तथा अनुमान एवं स्वभावोक्ति अलंकार विद्यमान है।

व्याकरणगत प्रमुख शब्द— परिभ्रष्ट – परि+भ्रंश्+क्त, खगा– खे गच्छन्तीति खगा – ख+गम्+उ, प्रदीप्त– प्र+दीप्+क्त, व्यावर्त्य– वि+आ+वृत्+णिच्+ल्यप्।

(निष्क्रान्ताः सर्वे) (सभी चले गए)

इति प्रथमोऽङ्क (प्रथम अंक समाप्त)

अपनी प्रगति जांचिए

1. आशीर्वचनसंयुक्ता का भवति?
   (क) नान्दी (ख) तापसी
   (ग) वासवदत्ता (घ) चेटी
2. कस्य रक्षणं दुःखं भवति?
   (क) यौगन्धरायणस्य (ख) तपोवनस्य
   (ग) न्यासस्य (घ) वानप्रस्थस्थ्य

4.3 स्वप्नवासवदत्ता (द्वितीयोऽङ्कः)

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी— कुञ्जरिके! कुञ्जरिके! कुत्र कुत्र भर्तृदारिका पद्मावती। किं भणसि? एषा भर्तृदारिका माधवीलतामण्डपस्य पार्श्वतः कन्दुकेन क्रीडतीति। यावद् भर्तृदारिकामुपसर्पामि। अम्मो इयं भर्तृदारिका उत्कृतकर्णचूलिकेन व्यायामसंजातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन मुखेन कन्दुकेन क्रीडन्तीत एवागच्छति। यावदुपसर्पामि।

(तत्पश्चात् चेटी प्रवेश करती है)

(अनुवाद):— चेटी— (आकाशभाषित) अरी! कुंजरिका! कुंजरिका! राजकुमारी पद्मावती कहाँ है? कहाँ है? क्या कहाँ? यह राजकुमारी माधवी लता–कुंज के पास गेंद से खेल रही है? अच्छा, तो मैं राजकुमारी के पास जाती हूं। (घूमकर तथा देखकर) ओह? यह

कान की बालियों को उपर उठाए हुए, परिश्रम से उत्पन्न पसीने की बूंदों से विचित्र शोभा और थकने से सुन्दर दिखाई देते मुख वाली पद्मावती गेंद खेलती हुई इधर ही आ रही है। तो मैं भी इनके पास चलती हूँ। (निकल जाती है)

टिप्पणी

विशेष – प्रस्तुत गद्यांश से यह ज्ञात होता है कि भासकालीन समाज में कन्दुक क्रीड़ा कन्याओं में लोकप्रिय थी। कल्हण की राजतरंगिणी में भी इसका चर्चा है।

प्रवेशकः (प्रवेशक समाप्त हुआ)

(ततः प्रविशति कन्दुकेन क्रीडन्ती पद्मावती सपरिवारा वासवदत्तया सह)

अनुवाद– (तत्पश्चात् वासवदत्ता के साथ गेंद खेलती हुई पद्मावती परिजनों के साथ प्रवेश करती है)

वासवदत्ता– हला! एष ते कन्दुकः।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– सखि! यह तुम्हारी गेंद है।

पद्मावती– आर्ये! भवत्विदानीमेतावत्।

(अनुवाद) **पद्मावती**– आर्ये! बस अब इतना ही बहुत है।

वासवदत्ता– हला! अतिचिरं कन्दुकेन क्रीडित्वाधिकसंजातरागौ परकीयाविव ते हस्तौ संवृतौ।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– सखि! बहुत देरे से गेंद खेलने के कारण तुम्हारे हाथ अधिक लाल होने के कारण पराये के समान हो रहे हैं। (अर्थात् ऐसा प्रतीत होता है, कि हाथों में लाली रचाकर अब तुम पराई होने जा रही हो।)

चेटी– क्रीडतु क्रीडतु तावद् भर्तृदारिका निवर्तत्यताम् तावदयं कन्याभावरणीयः कालः।

(अनुवाद) **चेटी**– खेलिये और खेलिये। राजकुमारी। कौमार्य अवस्था के इस समय को आनन्द से व्यतीत कीजिए।

पद्मावती– आर्ये! किमिदानीं मामुपहसितुमिव निध्यायसि।

(अनुवाद) **पद्मावती**– आर्ये इस समय क्या तुम मेरा उपहास करने के लिए मुझे देख रही हो?

वासवदत्ता– नहि नहि! हला! अधिकमद्य शोभते। अभित इव ते अद्य वरमुखं पश्यामि।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– ऐसा नहीं है। सखि, आज तुम्हारा मुख अधिक सुन्दर लग रहा है। तुम्हारा सुन्दर मुख– दोनों ओर से ही देखती हूँ।

पद्मावती– अपेहि। मेदानीं मामुपहस।

(अनुवाद) **पद्मावती**– दूर हटो। इस समय मेरा उपहास मत करो।

वासवदत्ता– एषास्मि तूष्णीका भविष्यन्महासेनवधू।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– महासेन की होने वाली वधू! अब मैं चुप हो गयी।

पद्मावती– क एष महासेना नाम।

(अनुवाद) **पद्मावती**– यह महासेन कौन है?

टिप्पणी

वासवदत्ता– अस्त्युज्जयिनीयो राजा प्रद्योतो नाम। तस्य बलपरिमाणनिवृत्तं नामधेयं महासेन इति।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– उज्जयिनी का प्रद्योत नाम का राजा है। उसकी सेना विशाल होने के कारण उसे महासेन कहा जाता है।

चेटी– भर्तृदारिका तेन राज्ञा सह सम्बन्धं नेच्छति

(अनुवाद) **चेटी**– राजकुमारी उस राजा के साथ सम्बन्ध नहीं चाहती है।

विशेष– केवल प्राकृत भाषी पात्रों के द्वारा दो अंकों के बीच में जो भावी और हो चुके अर्थों की सूचना दी जाती है वही प्रवेशक होता है।)

वासवदत्ता– अथ केन खल्विदानीमभिलषति।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– तो फिर किसके साथ सम्बन्ध चाहती है।

चेटी– अस्ति वत्सराज उदयनो नाम। तस्य गुणान् भर्तृदारिकाभिलषति।

(अनुवाद) **चेटी**– वत्सदेश का राजा उदयन है। उसके गुणों के प्रति राजकुमारी आकर्षित हैं।

वासवदत्ता– (आत्मगत) आर्यपुत्रं भर्तारमभिलषति (प्रकाशं) केन कारणेन।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– (मन में) आर्यपुत्र को पतिरूप में चाहती है। (प्रकटरूप में) किस कारण से?

विशेष– स्वाभाविक सरल, सरस संवाद के द्वारा कवि ने पद्मावती की पसंद की सूचना यहाँ दी है। साथ ही वासवदत्ता की मनःस्थिति का भी चित्रण किया है? इस प्रसंग में राजा उदयन की गुणवत्ता और लोकप्रियता की भी सूचना है।

चेटी– सानुक्रोश इति?

(अनुवाद) **चेटी**– वे दयालु हैं (इसलिए)।

वासवदत्ता– जानामि। अयमपि जन एवमुन्मादितः।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– (मन में) जानती हूँ, अच्छी प्रकार से जानती हूँ। मुझे भी इसी प्रकार उन्मत्त किया गया था।

चेटी– भर्तृदारिके! यदि स राजा विरूपो भवेत्।

(अनुवाद) **चेटी**– राजकुमारी! यदि वे राजा सुन्दर न हों, तो!

वासवदत्ता– नहि नहि! दर्शनीय एव।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– नहीं! नहीं! वे सुन्दर हैं।

पद्मावती– आर्ये! कथं त्वं जानासि।

(अनुवाद) **पद्मावती**– आर्ये आप कैसे जानती है?

वासवदत्ता– (आत्मगतम्) आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः किमिदानीं करिष्यामि। (प्रकाशम) भवतु, दृष्टम्। हला! एवमुज्जयिनीयो जना मन्त्रयते।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– (मन में) आर्यपुत्र के प्रति पक्षपात (अतिशय प्रेम) के कारण (मैंने) औचित्य का उल्लंघन कर दिया। अब क्या करूं? अच्छा (देख) जान लिया। (प्रकट रूप में) सखि, ऐसा उज्जयिनी के लोग कहते हैं।

विशेष– ''मननात् त्रायते लोकांस्तत् मन्त्रम्'' जिसके मनन करने मात्र से लोक का त्राण होता है, वह मन्त्र है। वासवदत्ता ने बड़ी चतुराई से ''ऐसा लोग कहते हैं'' (जनो मन्त्रयते) कहकर स्वयं की रक्षा कर ली। इस प्रकार उसने स्वयं को प्रत्युत्पन्नमति भी सिद्ध किया।

टिप्पणी

पद्मावती– न खल्वेष उज्जयिनीदुर्लभः सर्वजनमनोभिरामं खलु सौभाग्यं नाम।

(अनुवाद) **पद्मावती**– ठीक ही है। निश्चय ही उज्जयिनी में रहने वालों के लिए उदयन को देखना कठिन नहीं है। सुन्दरता वही है, जो सभी के मन को भा जाये।

(ततः प्रविशति धात्री)

(तत्पश्चात् धाय प्रवेश करती है)

धात्री– जयतु, भर्तृदारिके। भर्तृदारिके! दत्तासि।

(अनुवाद) **धाय**– राजकुमारी की जय हो। राजकुमारी तुम दे दी गयी हो।

वासवदत्ता– आर्ये! कस्मै।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– आर्ये! किसे?

धात्री– वत्सराजायोदयनाय।

(अनुवाद) **धाय**– वत्सराज उदयन को।

वासवदत्ता– अथ कुशली स राजा।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– वह राजा कुशल तो है?

धात्री– कुशली स आगतः तस्य भर्तृदारिका प्रतीष्टा च।

(अनुवाद) **धाय**– वे यहाँ सकुशल आये हैं और उन्हें राजकुमारी स्वीकार है।

वासवदत्ता– अत्याहितम्।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– बहुत बुरा हुआ।

धात्री– किमत्रात्याहितम्।

(अनुवाद) **धाय**– क्या बुरा हुआ।

वासवदत्ता– न खलु किंचित्। तथा नाम संतप्योदासीनो भवतीति।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– नहीं कुछ नहीं। (पत्नी के वियोग में) उतना व्याकुल होकर फिर उदासीन हो जाता है।

धात्री– आर्ये! आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति।

(अनुवाद) **धाय**– आर्ये! शास्त्र ज्ञान प्रधान महापुरुषों के हृदय सरलता से ही स्वाभाविक अवस्था में आने वाले होते हैं।

वासवदत्ता– आर्ये! स्वमेव तेन वृत्ता।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– आर्य! क्या स्वयं ही उन्होंने पद्मावती का वरण किया है।

धात्री– नहि नहि अन्यप्रयोजनेनेहागतस्याभिजन विज्ञानवयोरूपं दृष्ट्वा स्वयमेव महाराजेन दत्ता।

(अनुवाद) **धाय**– नहीं, नहीं। दूसरे किसी कार्य से आये हुए उनके कुल, ज्ञान, आयु तथा रूप को देखकर महाराज ने स्वयं उन्हें दे दी।

वासवदत्ता– एवम्। अनपराद्ध इदानीमत्रार्यपुत्रः।

टिप्पणी

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– (मन में) यदि ऐसा है, तो आर्यपुत्र दोषी नहीं है।

विशेष– प्रस्तुत संवाद स्वाभाविकता लिये हुए तथा मन को आकर्षित करने वाले हैं। सहज भाव तथा सुन्दरता से वासवदत्ता की मनःस्थिति का चित्रण भी करते हैं। नाटकप्रणेता द्वारा भाषा को सजीव बनाने के लिए ''सर्वजनमनोभिरामं खलु सौभाग्यं नाम तथा आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति'' अर्थात् सुन्दरता वही है, जो सभी का मन मोह ले तथा अपनी ओर आकर्षित कर ले। सूक्तियाँ व मुहावरे देकर भाषा के सौन्दर्य को बढ़ाया है। यदि रूप में आकर्षण नहीं, तो वह रूप ही नहीं है।

(प्रविश्यापरा)

चेटी– त्वरतां त्वरतां तावदार्या। अद्येव किल शोभन– नक्षत्रम्। अद्यैव कौतुकमंगलं कर्तव्यमित्यस्माकं भट्टिनी भणति।

(दूसरी दासी का प्रवेश)

(अनुवाद) **चेटी**– आर्या जल्दी करो, जल्दी करो। आज ही शुभ नक्षत्र है। आज ही मांगलिक कार्य करना है। (अर्थात् विवाह होना है) ऐसा महारानी ने कहा है।

वासवदत्ता– यथा यथा त्वरते, तथा तथान्धीकरोति में हृदयम्।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– (मन में) यह जैसे–जैसे जल्दी करता है, वैसे–वैसे ही मेरे हृदय को अन्धा बना रही है।

धात्री– एत्वेतु भर्तृदारिका।

(अनुवाद) **धाय**– आइये राजकुमारी, आइये।

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

(सभी निकल जाते हैं)

इति द्वितीयोऽङ्क

अपनी प्रगति जांचिए

3. व्यायानेन कस्य मुखं स्वेदयुक्तम् अभवत्?

(क) वावसदत्तायाः (ख) पद्मावत्याः

(ग) कुञ्जरिकायाः (घ) चेट्याः

4. महासेनः इति कस्य विशेषणम्?

(क) उदयनस्य (ख) प्रद्योतस्य

(ग) यौगन्धरायणस्य (घ) दर्शकस्य

4.4 स्वप्नवासवदत्ता (तृतीयोऽङ्कः)

टिप्पणी

तृतीयोऽङ्कः

कथासार– समय पूरा दिन।

स्थान– दर्शक के राजमहल का स्थान।

अंक के प्रारम्भ में ही सूचना मिलती है कि पद्मावती उदयन का विवाह होना निश्चित हो गया है। यह समाचार वासवदत्ता के हृदय को आघात पहुँचाता है और वह कहती है कि पहले तो आर्य से वियोग हुआ और अब पराये हो गये। दर्शक के महल में पद्मावती के विवाह उत्सव की चहल पहल है। इससे बचने के लिए वह एकान्त में प्रमद वन में बैठी है। इसी समय दासी, महारानी के आदेश को उससे आकर कहती है कि – अवन्तिका उच्चकुलोत्पन्न तथा निपुण है, अतः महारानी की अभिलाषा है कि विवाह की सुहाग माला को वे ही अपने हाथ से गूंथे। इसे सुनकर उसकी चिन्तनीय दशा हो जाती है। वह अपने भविष्य के विषय में सोचने लगती है। इसी समय दासी, माला को जल्दी गूंथने के लिए कहती है। इसे सुनकर वह अत्यन्त चिन्तित हो उठती है पहले तो पति से अलग रहना और दूसरा अपनी आँखों के सामने ही दूसरी स्त्री से विवाह, नारी स्वभाव के लिए यह असह्य है, परन्तु वासवदत्ता को पति कल्याण के लिए सब कुछ सहना है। वह भी चुप रह कर। वह भाग्य को कोसती हुई माला को गूंथ देती है। वासवदत्ता की यही हार्दिक संवेदना इस अंक का आधार है। वह सहनशील होते हुए भी नारी है, नारी स्वभाव को आखिर कैसे छोड़ सकती है? वह सब कुछ करते हुए भी सपत्नी मर्दन नामक औषधि को माला में गूंथने से मना कर देती है, माला गूंथने के साथ ही अंक की समाप्ति हो जाती है।

(ततः प्रविशति विचिन्तयन्ती वासवदत्ता)

वासवदत्ता– विवाहामोदसंकुले अन्तःपुरचतुःशाले। परित्यज्य पद्मावतीमिहागतास्मि प्रमदवनम्। यावदिदानीं भागधेयनिर्वृतं दुःखं विनोदयामि। अहो अत्याहितम्। आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः। यावदुपविशामि। धन्या खलु चक्रवाकवधूः यान्योन्यविरहिता न जीवति। न खल्वहं प्राणान् परिज्यजामि। आर्यपुत्रं पश्यामीत्यनेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा।

तृतीय अंक प्रारम्भ

(तत्पश्चात् सोचती हुई वासवदत्ता प्रवेश करती है।)

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– विवाह की प्रसन्नता से घिरे हुए अन्तःपुर की चौशाला में पद्मावती को छोड़कर मैं यहाँ प्रमदवन में (क्रीडोद्यान में) आ गयी हूँ। तब तक मैं भाग्य से प्राप्त दुःख को कम करूंगी। (घूमकर) अरे! बहुत बुरा हुआ। आर्यपुत्र भी अब पराए हो गये। अच्छा तो बैठती हूँ। (बैठकर) वह चकवे की पत्नी धन्य है, जो पति से अलग जीवित नहीं रहती है। मैं तो ऐसी अधम हूँ, जो पति से अलग होकर भी जीवित हूँ। आर्यपुत्र के दर्शन होंगे, इसी इच्छा से अभागिन जी रही हूँ।

(ततः प्रविशति पुष्पाणि गृहीत्वा चेटी)

(उसके बाद फूल लेकर दासी प्रवेश करती है)

चेटी – क्व नु खलु गता आर्यावन्तिका (परिक्रम्यालोक्य च) अम्मो इयं चिन्ताशून्यहृदया नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखेवामण्डितभद्रकं वेशं धारयन्ती प्रियंगुशिलापट्टके उपविष्टा। यावदुपसर्पामि। आर्ये! आवन्तिके! कः कालः, त्वामन्विष्यामि।

टिप्पणी

(अनुवाद) **चेटी**– आर्या अवन्तिका भला कहाँ चली गई? (घूमकर तथा देखकर) अरे! चिन्ता से शून्य हृदय वाली, कुहरे से घिरी चन्द्र लेखा के समान आभूषणरहित सुन्दर वेश धारण किये हुए प्रियंगुलता के नीचे शिलातल पर बैठी हुई हैं। तो उनके समीप जाती हूँ (समीप जाकर) आर्या अवन्तिका! कितना समय तुम्हें खोजते हुए हो गया है (अर्थात् बहुत देर से ढूंढ रही हूँ)।

वासवदत्ता– किंनिमित्तम्।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– किस कारण से।

चेटी– अस्माकं भट्टिनी भणति महाकुलप्रसूता स्निग्धा निपुणेति। इमा तावत् कौतुकमालिकां गुम्फत्वार्या।

(अनुवाद) **चेटी**– हमारी स्वामिनी कहती हैं कि (आप) उच्चकुल में उत्पन्न हैं। प्रिय हैं तथा कुशल हैं, अतः इस विवाहमाला को गूंथ दें।

वासवदत्ता– अथ कस्मै किल गुम्फितव्यम्।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– अच्छा किसके लिए गूंथनी है?

चेटी– अस्माकं भर्तृदारिकायै।

(अनुवाद) **चेटी**– हमारी राजकुमारी के लिए।

वासवदत्ता– एतदपि मया कर्तव्यमासीत्। अहो अकरुणाः खल्वीश्वराः।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– (मन में) हाय, यह भी मुझे ही करना था? अहो निश्चय ही देवता कठोर (निर्दय) हैं।

चेटी– आर्ये! मेदानीमन्यच्चिन्तयित्वा। एष जामाता मणिभूम्यां स्नाति। शीघ्रं तावद् गुम्फत्वार्या।

(अनुवाद) **चेटी**– आर्ये! अब और कुछ मत सोचो। ये जामाता (दामाद) मणिमय भूमि पर स्नान कर रहे हैं? अतः आर्या जल्दी थिए।

वासवदत्ता– न शक्नोम्यन्यच्चिन्तयितुम् (प्रकाशम्) हला किं दृष्टो जामाता।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– (मन में) और कुछ सोच भी तो नहीं सकती हूँ। (प्रकट में) सखि, क्या तुमने जामाता को देखा है?

(**विशेष**– वासवदत्ता के साथ भाग्य की विचित्र विडम्बना है कि उसके जीवित रहते हुए उसका पति उदयन विवाह को उद्यत है। वह भी उसकी उपस्थिति में। यही नहीं, दोनों के लिए वरमाला भी गूंथने का कार्य उसे ही सौंपा गया है। पत्नी से पति के हृदय में दूसरी की उपस्थिति सह्य नहीं होती, वह पूर्ण प्रणय चाहती है लेकिन वासवदत्ता को ही उसे सहना है। वह कुछ भी नहीं कह सकती। न व विलाप कर सकती है, न ही अपने भाग्य को कोस सकती है, विधाता की लीला भी विचित्र है।)

चेटी– आम् दृष्टो भर्तृदारिकायाः स्नेहेनास्माकं कौतूहलेन च।

(अनुवाद) **चेटी**– हाँ राजकुमारी के स्नेह से तथा अपने कौतूहल के कारण देखा है।

टिप्पणी

वासवदत्ता– कीदृशो जामाता।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– कैसा है?

चेटी– आर्ये भणामि तावद्, नेदृशो दृष्टपूर्वः।

(अनुवाद) चेटी– आर्ये! बस इतना ही कहती हूँ, पहले ऐसा कभी नहीं देखा।

वासवदत्ता– हला! भण भण, किं दर्शनीयः।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– कहो! क्या वे देखने योग्य (सुन्दर) है?

चेटी– शक्यं भणितुं शरचापहीनः कामदेव इति।

(अनुवाद) **चेटी**– बस, धनुष–बाण–रहित कामदेव ही हैं, ऐसा कहा जा सकता है।

(**विशेष**– कवि ने यहाँ वासवदत्ता की मानसिक दशा का यथार्थ चित्रण किया है। वह उदयन के द्वारा अपनी दूसरी पत्नी ग्रहण किये जाने से शोकाकुल है, परन्तु दुःखी होकर भी भाग्य को धिक्कारती हुई कहती है– "अहो अकरुणाःखल्वीश्वराः" अर्थात् ईश्वर निश्चय ही निर्दयी हैं। उच्च कुल की स्त्रियाँ विपत्ति आने पर अपने भाग्य को ही दोष देती है। पति को परमेश्वर मानकर दोषी होने पर भी उसे दोष नहीं देती। अहो अकरुणारु खल्वीश्वराः मुहावरा है। ऐसे मुहावरों के प्रयोग में भास निपुण हैं।)

वासवदत्ता– भवत्वेतावद्।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– अच्छा बस करो।

चेटी– किंनिमित्तं वारयसि?

(अनुवाद) **चेटी**– (आप मुझे) क्यों रोकती हैं?

वासवदत्ता– अयुक्तं परपुरुषसंकीर्तनं श्रोतुम्।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– पर पुरुष की प्रशंसा अनुचित है।

चेटी– तेन हि गुम्फत्वार्या शीघ्रम।

(अनुवाद) **चेटी**– तो फिर आर्या शीघ्र गूंथे।

वासवदत्ता– अयं गुम्फामि। आनय तावत्।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– यह गूंथती हूँ ला तो।

चेटी– गहत्वार्या।

(अनुवाद) **चेटी**– लीजिए आर्या।

वासवदत्ता– इदं तावदौषधं किं नाम।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– (फूलों को हटाकर देखती है) यह कौनसी औषधि है?

चेटी– अविधावकरणं नाम।

(अनुवाद) **चेटी**– वैधव्य निवारण की।

वासवदत्ता– (आत्मगतम्) इदं बहुशो गुम्फितव्यं मम च पद्मावत्यै प्रकाशम् च इदं तावदौषधं किं नाम।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– (मन में) मेरे लिए तथा पद्मावती के लिए यह बहुत सी गूंथनी चाहिए। (प्रकट में) और इस औषधि का नाम क्या है?

चेटी– सपत्नीमर्दनं नाम।

टिप्पणी

(अनुवाद) **चेटी**– सौत का तिरस्कार करने वाली (मर्दन करने वाली)।

वासवदत्ता– इदं न गुम्फितव्यम्।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– इसे नहीं गूंथना चाहिए।

चेटी– कस्मात्?

(अनुवाद) **चेटी**– किस कारण से?

वासवदत्ता– उपरता तस्य भार्या, तन्निष्प्रयोजनमिति।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– उस (राजा) की पत्नी की मर चुकी हैं, अतः यह (गूंथना) व्यर्थ है।

(प्रविश्यापरा) (दूसरी प्रवेश करके)

चेटी– त्वरतां त्वरतामार्या। एष जामाता, अविधवाभिरभ्यन्तरचतुःशालं प्रवेश्यते।

(अनुवाद) **चेटी**– आर्या जल्दी करो! जल्दी करो! ये दामाद जी का सुहागिनी स्त्रियों तथा अविवाहित कन्याओं द्वारा चौसाल में प्रवेश कराया जा रहा है।

(**विशेष**– अविधवाओं के साथ प्रवेश की सूचना से प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में विवाहादि मंगल कार्यों से विधवाओं को दूर रखा जाता था।)

वासवदत्ता– अयि! वदामि गृहाणैतत्।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– अरे कहती हूँ, इसे लो।

चेटी– शोभनम्। आर्ये! गच्छामि तावदहम्।

(अनुवाद) **चेटी**– अति सुन्दर, तो आर्ये! मैं जाती हूँ।

(उभे निष्क्रान्ते)

(दोनों निकल जाती हैं)

वासवदत्ता– गतैषा। अहो अत्याहितम्। आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः। अपि तावद् शय्यायां मम दुःखं विनोदयामि, यदि निद्रां लभे।

(अनुवाद) **वासवदत्ता**– यह चली गयी। ओह! यह बहुत बुरा हुआ। आर्यपुत्र भी पराये हो गये। ओह् मैं भी शय्या पर यदि नींद आ जाये तो अपने दुख को हल्का करूंगी।

(निष्क्रान्ता)

(निकल जाती है)

इति तृतीयोअङ्क

तृतीय अंक समाप्त हुआ

विशेष– इस सम्पूर्ण अंक के संवाद सजीव व सरल हैं। कवि ने बीच बीच में मुहावरों का प्रयोग कर भाषा की सुन्दरता को और बढ़ा दिया है?नारी जाति के सहज स्वभाव

इच्छा और रुचि को कवि ने सुन्दर ढंग से चित्रित किया है? विवाह जैसे मंगलकार्यों में केवल सुहागिन नारियाँ सम्मिलित होती हैं। यह अन्तिम पंक्तियों से प्रतीत होता है, यह प्रथा आज भी प्रचलित है।

टिप्पणी

4.5 महाकवि भास और वासवदत्तम् विवेचनम्

यद्यपि भास संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध नाटककार थे तथापि उनके जीवनकाल के विषय में अधिक जानकारी नहीं है। भास ने अपने नाटकों के माध्यम से सामाजिक जीवन के विभिन्न अंगों का अच्छा चित्रण प्रस्तुत किया। उनकी शैली सीधी तथा सरल है तथा नाटकों का मंचन आसानी से किया जा सकता है। समस्त पदों अथवा अलंकारों के भार से उनक नाटक बोझिल नहीं होने पाये हैं।

4.5.1 महाकवि भास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

संस्कृत नाटकों के विकास के इतिहास में भास एक जाज्वल्यमान मणि है। भास संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध नाटककार थे जिनके जीवनकाल के विषय में अधिक जानकारी नहीं है। भास ने अपने नाटकों के माध्यम से सामाजिक जीवन के विभिन्न अंगों का अच्छा चित्रण प्रस्तुत किया। उनकी शैली सीधी तथा सरल है तथा नाटकों का मंचन आसानी से किया जा सकता है। समस्त पदों अथवा अलंकारों के भार से उनके नाटक बोझिल नहीं होने पाए हैं।

नाटक को पंचम वेद होने का जो गौरव भरत ने प्रदान किया तथा कालिदास ने जो उसे भिन्न रुचि जनों का एकत्र समाराधन कहा, इसकी सम्यक परिपुष्टि भास के नाटकों से होती है। नाटक कवित्व का चरम परिपाक है –"नाटकान्तं कवित्वम्"। उसमें तीनों लोकों के भावों का अनुवर्तन होता है। जब हम इस दृष्टि से विचार करते हैं तो भास की महत्ता और बढ़ जाती है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि कालिदास, शूद्रक आदि के समान भास ने भी अपने जीवन चरित्र के विषय में कोई प्रकाश नहीं डाला है, यहाँ तक कि अपनी रचनाओं में अपना नामोल्लेख भी नहीं किया है।

'स्वप्नवासवदत्ता' उनके द्वारा लिखित सबसे चर्चित नाटक है जिसमें एक राजा के अपने रानी के प्रति अविरहनीय प्रेम और पुनर्मिलन की कहानी है। कालिदास जो गुप्तकालीन समझे जाते हैं, भास का नाम अपने नाटक में लिया है जिससे लगता है कि वह गुप्त काल से पहले रहे होंगे; पर इससे भी उनके जीवनकाल का अधिक ठोस प्रमाण नहीं मिलता। आज कई नाटकों में उनका नाम लेखक के रूप में उल्लिखित है, किन्तु 1912 में त्रिवेंद्रम में गणपति शास्त्री ने नाटकों की लेखन शैली में समानता देखकर उन्हें भास–लिखित बताया।

संस्कृत नाटककारों में 'भास' का नाम उल्लेखनीय है। भास कालिदास के पूर्ववर्ती हैं। सबसे पहले गणपति शास्त्री ने भास के तेरह नाटकों की खोज की थी। अभी तक भास के विषय में जो सामग्री मिलती है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि भास ही लौकिक संस्कृत के प्रथम साहित्यकार थे। भास का आविर्भाव ई. पू. पाँचवी–चौथी शती में हुआ था। भास की रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

टिप्पणी

1. प्रतिमा नाटकम्
2. अभिषेक
3. पञ्चरात्रम्
4. दूतवाक्य
5. उरूभंग
6. बालचरित
7. दरिद्रचारूदत्त
8. अविमारक
9. प्रतिज्ञायौगन्धरायण
10. स्वप्नवासवदत्ता।

कालिदास, शूद्रक आदि के समान भास ने भी अपने जीवन चरित्र के विषय में कोई प्रकाश नहीं डाला है, यहाँ तक कि अपनी रचनाओं में अपना नामोल्लेख भी नहीं किया है।

भास को संस्कृत नाट्य साहित्य का जनक कहा गया है। नाटककार के रूप में इनका नाम अत्यन्त प्राचीनकाल से ही प्रसिद्ध है। कालिदास के पश्चात् बाणभट्ट ने अपने 'हर्षचरित' में भास के नाटकों की उन विशेषताओं को उपन्यस्त किया है, जिनसे उसने यशलाभ प्राप्त किया–

''सूत्रधार क तारंभै र्नाटकै र्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशोलेभे भासो देवकुलैरिव।

यह उल्लेख इस तथ्य को स्पष्ट कर देता है कि संस्कृत नाटक के क्षेत्र में लगभग सातवीं सदी तक के विस्तृत कालखण्ड में भास की कीर्तिपताका छायी रही थी।

महाकवि दण्डी ने भी 'अवन्तिसुन्दरी कथा' में भास का स्मरण किया है। राजशेखर ने अपने ग्रन्थ काव्यमीमांसा में कहा है कि जब नागरिकों ने परीक्षा करने के लिए भास के नाटक चक्र को अग्नि में डाला तो ''स्वप्नवासवदत्तम्'' नाटक को अग्नि ने नहीं जलाया–

''भासनाटकचक्रेपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहको भून्न पावकः।।

'प्रसन्नराघव' के कर्ता पीयूषवर्ष जयदेव ने ''भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः'' कहकर नाट्यकारों में भास का प्रथम उल्लेख किया है।

इन सब प्रसंगों से ज्ञात होता है कि भास बहुत प्राचीन काल से ही लब्धप्रतिष्ठ हैं। भास का व्यक्तित्व निश्चित रूप से असंदिग्ध है तथापि खेद का विषय है कि उनके जीवनवृत्त के विषय में कोई प्रामाणिक जानकारी अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है।

भास का जीवनवृत्त ज्ञात नहीं है। विद्वानों ने मात्र अन्तरंग प्रमाणों के आधार पर अनुमान लगाने का प्रयास किया है, जैसे उनकी जाति के सम्बन्ध में विद्वानों का अनुमान

है कि वे ब्राह्मण थे। डॉ. पुसालकर तथा ए.एस.पी. अय्यर आदि विद्वानों ने उनके द्वारा विरचित साहित्य के अध्ययनोपरान्त ऐसा मत व्यक्त किया है।

टिप्पणी

कालिदास के समान भास के विषय में भी यह ज्ञात नहीं कि वे किस क्षेत्र के रहने वाले थे, उनका कहाँ जन्म हुआ था तथा शिक्षा–दीक्षा कहाँ हुई थी? विद्वानों की मान्यता है कि वे उत्तरी भारत के निवासी थे। इसका कारण उनके नाटकों में उत्तरी भारत के नगर, नदी, पर्वत तथा रीति–रिवाजों का बड़ा व्यापक वर्णन होना माना गया है। उज्जैन, अयोध्या तथा मथुरा में इनकी वृत्ति विशेष रमी है। अतः यह प्रतीत होता है कि भास ने इन स्थानों का आँखो देखा वर्णन किया है। ''हिमवद् विन्ध्यकुण्डलाम्'' स्पष्ट संकेत करता है कि वे उत्तरी भारत के निवासी थे। उत्तरी भारत की तुलना में भास का दक्षिणी भारत का ज्ञान बहुत ही सीमित प्रतीत होता है। उनका दक्षिणी भारत का ज्ञान रामायण तथा महाभारत तक सीमित प्रतीत होता है। रामकथा वर्णित करने पर भी रामेश्वरम् जैसे तीर्थों का उल्लेख न करना इस अनुमान की पुष्टि करता है।

भास का राजकुलों से गहन सम्बन्ध दृष्टिगत होता है। राजप्रासादों, अन्तःपुरों आदि के वर्णन में इन्होंने विशेष रुचि प्रदर्शित की है। अतः ऐसा लगता है कि किसी राजसभा से इनका सम्बन्ध रहा हो।

''राजसिंहः प्रशास्तु नः'' की उक्ति इसी का समर्थन करती दिखाई पड़ती है। अमात्यों, सेना, द्वन्द्व आदि का वर्णन इनके नाटकों मे सर्वथा दिखाई पड़ता है। राजकुल के अलावा धनी मानी नागरजनों से भी इनका सम्पर्क रहा होगा। चारूदत्त नाटक नागरजनों के जीवन का सच्चा प्रतिनिधि है।

भास के नाटकों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि भास अनेक शास्त्रों के ज्ञाता थे। वेद, इतिहास, पुराण लोककथाएँ, धर्मशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि नाना शास्त्रों का इन्होंने गंभीर अध्ययन किया था। साहित्य शास्त्र में उनकी निपुणता असन्दिग्ध है।

जहाँ तक भास के धर्म का सम्बन्ध है, वे वैष्णव धर्म के अनुयायी प्रतीत होते हैं। राम तथा कृष्ण के चरित्रों में उनकी अनुरक्ति इस विषय में प्रमाण है। वैष्णव होने के साथ–साथ वैदिक कर्मकाण्ड में भी वे पूर्ण विश्वास रखते थे। गौ–ब्राह्मणों में भी उनकी अत्यधिक अनुरक्ति थी।

महाकवि भास का काल

महाकवि भास का स्थितिकाल निर्धारित करना प्रायः एक अत्यन्त जटिल प्रश्न है। फिर भी कुछ तथ्य ऐसे हैं, जिनके आधार पर भास की स्थिति की सीमा निर्धारित की जा सकती है। जैसे–

1. महाकवि कालिदास ने ''मालविकाग्निमित्र'' की प्रस्तावना में भास का उल्लेख किया है, अतः भास कालिदास के पूर्ववर्ती प्रतीत होते हैं। किन्तु कालिदास के स्थितिकाल का प्रश्न विवादास्पद होने से भास के स्थितिकाल का वास्तविक निर्धारण करना कठिन है। अधिकांश पाश्चात्य विद्वान्, कालिदास को गुप्तकालीन अर्थात् चतुर्थ शताब्दी का मानते हैं। इस दृष्टि से भास कालिदास से पूर्व अर्थात् चतुर्थ शताब्दी पूर्व के होते हैं। इसलिए कुछ विद्वान् उन्हें ईसा की दूसरी शताब्दी में मानते हैं।

टिप्पणी

भारतीय विद्वान् कालिदास का समय ई.पू. 57 ई. के पूर्व मानते हैं। अतः भास उनसे कम से कम सौ वर्ष पहले अवश्य होंगे जबकि उनकी ख्याति पूर्ण रूप से फैल गई होगी।

2. इस विषय पर प्रायः सभी विद्वान् एकमत हैं कि 'मृच्छकटिक' की रचना का आधार भास का 'चारूदत्त' नाटक है। मृच्छकटिक शूद्रक की रचना है, अतः भास शूद्रक के पूर्ववर्ती हैं।

3. कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में भास रचित प्रतिज्ञायौगन्धरायण का एक श्लोक उद्धृत किया है, जो इस प्रकार है–

''नवं शरावं सलिलस्य पूर्ण,
सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं च गच्छेद्,
यो भर्तृपिण्डस्य कृते न बुध्येत्।।

कौटिल्य जैसे प्रखर राजनीतिज्ञ द्वारा भास का प्रमाण रूप से उद्धृत किया जाना इस बात का सूचक है कि भास कौटिल्य के समय चतुर्थ ई.पू. के उत्तरार्द्ध में एक प्रमाणिक ग्रन्थकार के रूप में विख्यात हो चुके थे।

4. भास ने उदयन से सम्बन्धित नाटकों की रचना की है, अतः उनका उदयन के काल से परवर्ती होना सिद्ध होता है। चूंकि उदयन का काल ई.पूर्व से अधिक प्राचीन नहीं हो सकता।

5. अश्वघोष ने अपने 'बुद्धचरित' महाकाव्य में भास का एक श्लोक अविकल रूप से उद्धृत किया है, जो इस प्रकार हैः–

''काष्ठं हि मथ्नन् लभते हुताशं,
भुमिं खनन् विन्दति चापि तोयम्।।
निर्बन्धितः किन्चन्, नास्त्यसाध्यं,
न्यायेन भुक्तं च क तं च सर्वम्।।''

इससे स्पष्ट है कि भास अश्वघोष से पर्याप्त पूर्ववर्ती रहे हैं तथा अश्वघोष ने उन्हें प्रमाणिक ग्रन्थकार की श्रेणी प्रदान की है।

6. प्रतिमा नाटक के पंचम अंक के रावण के परिचय में जिन अधीत विद्याओं का उल्लेख है, उनका अध्ययन अध्यापन ई.पू. चतुर्थ शताब्दी के लगभग का था, अतः भास इसके उपरान्त ही हो सकते हैं, इसके पूर्व के नहीं।

7. भास की रचनाओं पर जिस पौराणिक ब्राह्मणधर्म का प्रभाव दिखाई पड़ता है, उसका पुनरूत्थानकाल ई.पू. तृतीय शताब्दी रहा है। अतः भास इस काल में या इसके उत्तरवर्ती काल में ही अवश्य हुए होंगे।

8. डॉ. लेस्नी, प्रिन्ट्ज तथा सुकथनकर जैसे विद्वानों ने प्राकृत भाषा की समीक्षा कर इन्हें कालिदास से प्राचीन तथा अश्वघोष से नवीन सिद्ध किया है। भास की प्राकृत भाषा कालिदास से प्राचीन ठहरती है पर अश्वघोष की भाषा का समय इससे भी पूर्वत्तर है। ये विद्वान् कालिदास को ईसा की पाँचवीं सदी में मानते हैं। इस आधार पर वे भास का समय तीसरी सदी में निश्चित करते हैं।

टिप्पणी

9. भास के नाटकों का आधार रामायण, महाभारत तथा लोककथाएँ है। उदयन का आख्यान ऐतिहासिक है। उदयन, प्रद्योत तथा दर्शक छठी सदी ई. पूर्व के ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। ई.पू. छठी सदी में रामायण तथा महाभारत भी मूल रूप में विद्यमान थे, अतः भास की उपरितम समय सीमा ई.पू. छठी सदी ठहरती है।
10. भास के नाटकों में वर्णित सामाजिक दशाएं, अर्थशास्त्र तथा अन्य शास्त्रों से सम्बद्ध प्रतीत होती है। प्रतिमा में मंदिर के परिवेश में बालुका डालने का विधान केवल आपस्पतम्भ सूत्रों में ही मिलता है। मरे हुये व्यक्तियों की प्रतिमाओं की स्थापना भी शिशुनाग राजाओं के युग की याद दिलाता है। मथुरा में शिशुनाग राजाओं की प्रस्तर मूर्तियाँ खोज में मिली हैं।
11. भरतवाक्यों में उल्लिखित 'राजसिंह' शब्द व्यक्ति वाचक नहीं है। हिमालय से लेकर विन्ध्य तक शासन करने वाला राजा का संकेत संभवतः नन्दवंश की ओर है।

उक्त अन्तरंग एवं बाह्य साक्ष्यों के आधार पर पाश्चात्य विद्वानों ने भास का समय चतुर्थ शतक तथा पंचम शतक के बीच माना है। वहीं भारतीय विद्वानों की धारणा ई.पू. तृतीय शताब्दी से लेकर ई.पू. द्वितीय शताब्दी के बीच की है।

भास की रचनायें

श्री टी. गणपति शास्त्री ने सर्वप्रथम भास के तेरह नाटकों को भास के नाम से प्रकाशित करवाया। जब ये नाटक प्रकाश में आये तो यह प्रश्न प्रारंभ से ही पुरजोर शब्दों में उठाया गया कि क्या ये ग्रन्थ भास के द्वारा ही लिखे गये और यदि भास इनके लेखक हैं तो क्या सभी नाटकों के हैं अथवा कुछ के ही। पर इन नाटकों के सूक्ष्म अन्वेक्षण से यह स्पष्ट लक्षित हो जाता है कि इन सभी नाटकों के रचयिता एक ही व्यक्ति थे। इस संदर्भ में अनेक प्रमाण व इन नाटकों में पायी जाने वाली समानताओं को प्रस्तुत किया गया। उन साम्यों के आधार पर यह सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया कि इन नाटकों का रचयिता कोई एक ही व्यक्ति था।

इनके पश्चात् यह विवाद उपस्थित हुआ कि इन नाटकों के प्रणेता भास ही थे अथवा अन्य कोई।

डॉ. ए.डी. पुसालकर तथा प्रो. ए.बी. कीथ इन्हें भासकृत बताते हैं। इसके ठीक विपरीत पिशरोती, कुन्हनराजा, देवधर तथा विन्टरनित्ज इन्हें भासकृत नहीं मानते। मध्यम मार्ग डॉ. सुकथनकर आदि का है जो कुछ नाटकों को तो भासकृत मानते हैं पर कुछ को भास के नाम के साथ पीछे से जोड़ा गया मानते हैं।

यह सब प्रारंभिक स्थिति थी। वर्तमान में प्रायः अधिकांश विद्वानों की यह मान्यता है कि ये रचनायें भास की हैं। इन कृतियों के मूलतः तीन स्रोत हैं– रामकथा, महाभारत तथा लोककथा।

(क) रामकथा पर आश्रित नाटक – 1. प्रतिमा 2. अभिषेक

(ख) महाभारत पर आश्रित नाटक– 1. मध्यम व्यायोग 2. स्वप्नवासवदत्तम् 3. अविमारक 4. दरिद्रचारूदत्त।

टिप्पणी

भास की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय

1. **प्रतिमा**– यह सात अंकों का नाटक है, जिसमें भास ने राम वनगमन से लेकर रावणवध तथा राम राज्याभिषेक तक की घटनाओं को स्थान दिया है। महाराज दशरथ की मृत्यु के उपरान्त ननिहाल से लौट रहे भरत अयोध्या के पास मार्ग में स्थित देवकुल में पूर्वजों की प्रतिमायें देखते हैं, वहाँ दशरथ की प्रतिमा देखकर वे उनकी मृत्यु का अनुमान कर लेते हैं। प्रतिमा दर्शन की घटना प्रधान होने से इसका नाम प्रतिमा नाटक रखा गया है। प्रतिमा निर्माण की कथा भास की अपनी मौलिकता है। भास ने इस नाटक में मौलिकता लाने में प्रचलित रामचरित से पर्याप्त पार्थक्य ला दिया है। यद्यपि ये सारी घटनायें प्रचलित कथा से भिन्न हैं, पर नाटकीय दृष्टि से इनका महत्व सुतरां ऊँचा है और पाठक अथवा दर्शक की कुतूहल वृद्धि में ये घटनायें सहायक हुई हैं। इस नाटक में रामायणीय कथा से भिन्नताएं इस प्रकार हैं– प्रथम अंक में सीता द्वारा परिहास में वल्कल पहनना भास की मौलिकता है। तृतीय अंक में प्रतिमा का सम्पूर्ण प्रकरण ही कवि कल्पित है और यह कल्पना ही नाटक की आधारभूमि बनायी गयी है। पाँचवें अंक में सीता का हरण भी यहाँ नवीन ढंग से बताया गया है।

यहाँ राम के उटज में वर्तमान रहने पर ही रावण वहाँ आता है और दशरथ के श्राद्ध के लिए उन्हें काञ्चनपार्श्व मृग लाने को कहता है तथा उन्हें काञ्चन मृग दिखाकर दूर हटाता है। यह सम्पूर्ण प्रसंग नाटककार द्वारा गढ़ा गया है। पांचवें अंक में सुमंत्र का वन में जाना तथा लौटकर भरत से सीताहरण बताना कवि कल्पना का प्रसाद है। कैकेयी द्वारा यह कहना भी कि उसने ऋषिवचन सत्य करने के लिए राम को वन भेजा भास की प्रसूति है। अन्ततः सप्तम अंक में राम का वन में ही राज्याभिषेक इस नाटक में मौलिक ही है।

प्रतिमा नाटक भास के सर्वोत्तम नाटकों में से एक है। सात अंकों के इस नाटक में भास की कला पर्याप्त ऊँचाई को प्राप्त कर चुकी है। इस नाटक में भास ने पात्रों का चारित्रिक उत्कर्ष दिखाने का भरसक प्रयास किया है। इतिवृत्त तथा चरित्र चित्रण दोनों दृष्टियों से यह नाटक सफल हुआ है। भावों के अनुकूल भाषा तथा लघु विस्तारी वाक्य भास के नाटकों की अपनी विशेषताएँ हैं। यह करूणरस प्रधान नाटक है तथा अन्य रस इसी में सहायक बनकर आये हैं।

2. अभिषेक– यह भी रामकथा पर आश्रित है। इसमें छः अंक हैं। इसमें रामायण के किष्किंधाकाण्ड से युद्धकाण्ड की समाप्ति तक की कथा अर्थात् बालिवध से राम राज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है। रामराज्याभिषेक के आधार पर ही इसका नामकरण किया गया है। कथानक को सजाने संवारने में नाटककार ने पर्याप्त मौलिकता का परिचय दिया है। बालिवध को न्याय रूप देने का भी नाटककार ने पर्याप्त प्रयास किया है।

इस नाटक के नायक मर्यादापुरूषोत्तम श्री रामचन्द्र हैं। लोकोपदेश उनके चरित्र का प्रधान भाग है। लक्ष्मण का चरित्र इस नाटक में विशेष प्रस्फुटित नहीं हो सका है। वे श्रीराम के एक आज्ञाकारी सेवक तथा विनीत भक्त के रूप में वर्तमान रहते हैं। विभीषण को न्यायप्रिय भगवद् भक्त के रूप में अंकित किया गया है। रावण क्रूर, दुराचारी तथा परस्त्री लम्पट के रूप में चित्रित किया गया है।

टिप्पणी

अभिषेक नाटक के प्रणयन में भास ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। यद्यपि काव्य तथा नाटकीयता की दृष्टि से यह नाटक प्रतिमा नाटक की अपेक्षा अवर कोटि का है तथापि इस नाटक की अपनी विशेषताएं हैं। राम–रावण युद्ध अपनी विशिष्टताओं में बेजोड़ है। पात्रों का कथोपकथन आकर्षक है। छोटे–छोटे तथा सरल वाक्यों का विन्यास भास की अपनी विशेषता है तथा उस विशेषता का दर्शन इस नाटक में होता है।

इस नाटक का प्रधान रस वीर है जो समग्र नाटक में व्याप्त है, पर करूण रस भी यत्र तत्र अनुस्यूत है। इसकी सत्ता बालिवध के अनन्तर, सीता के सन्ताप आदि में देखी जा सकती हैं। श्रृंगार का इसमें अभाव है तथा उसके लिए कहीं अवसर भी नहीं आया है।

3. **मध्यम व्यायोग**– यह एक अंक का व्यायोग है। व्यायोग रूपक का एक भेद होता है। इसकी कथावस्तु का आधार महाभारत है। इसमें पाण्डवों के वनवास काल में भीम द्वारा घटोत्कच के पंजे से एक ब्राह्मण बालक की मुक्ति की कथा है। मध्यम शब्द मध्यम पाण्डव भीम और ब्राह्मण के मध्यम पुत्र दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसलिए इस नाटक का नाम ''मध्यम व्यायोग'' है। नाटकीय दृष्टि से यह नाटक उत्तम कोटि का है, क्योंकि इस परिपाक तथा भावोन्मेष में नाटककार को पूरी सफलता प्राप्त हुई है। कथोपकथनों में कहीं वैमनस्य नहीं आता तथा दर्शक का कुतूहल प्रतिक्षण बढ़ता हुआ दिखाई देता है। इन कथोपकथनों में भाषा भी बड़ी सहायक सिद्ध हुई है। लम्बे समासान्त पदों का यहाँ अभाव है। भाषा सरलता में बेजोड़ है। घटनाक्रम में सत्वरता प्रभावोत्पादन में चार–चाँद लगा देती है। भास का काव्य कर्म भी इस रूपक में सफल रहा है।

4. कर्णभार– यह भी एक अंक के कथानक वाला महाभारत की कथावस्तु से सम्बद्ध व्यायोग है। द्रोणाचार्य के परलोक सिधारे जाने पर कर्ण को सेनापति बनाया जाता है तथा युद्ध का भार उस पर आ जाता है, इसलिए नाटक का नाम 'कर्णभार' है।

'कर्णभार' शीर्षक की व्याख्या विद्वानों ने अनेक प्रकार से की है। प्रो. ए.डी. पुसालकर की सम्मति में कानों के भारभूत कुण्डलों का दानकर यहाँ कर्ण की अद्‌भुत दानशीलता वर्णित की गई है। अतः कानों के आधारभूत कुण्डलों के दान को केन्द्र मानकर इस नाटक की रचना करने से इस नाटक का नाम 'कर्णभार' है। डॉ. विन्टरनित्स ने कर्णभार की व्याख्या कर्ण के कठिन कार्य से की है। डॉ. भट्ट की धारणा है कि कर्ण की चिन्ता ही भारस्वरूप हो गई है। इसी बात को ध्यान में रखकर इस नाटक का नाम कर्णभार रखा गया है। कुछ लोगों के मत में कर्ण द्वारा प्राप्त युद्ध कौशल उनके लिए भारभूत हो गया था, अतः इस नाटक का नाम कर्णभार पड़ा।

इस नाटक में दो पात्रों का चरित्र मुख्य रूप से चित्रित है। एक है इस नाटक के नायक कर्ण और दूसरे हैं, छद्‌म ब्राह्मण वेशधारी देवराज इन्द्र। कर्ण के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता जो यहाँ उभर कर सामने आयी है, वह है उसकी अपूर्व ब्राह्मण निष्ठा तथा महती दानशीलता। वह ब्राह्मणों के लिए सर्वस्व दान करने के लिए तत्पर दिखाई पड़ता है। जब इन्द्र गौ, सुवर्ण आदि लेना अस्वीकार करते हैं, तब वह अपना सिर देने की बात कहता है। उसका विश्वास है कि मरने पर भी यश ही स्थिर रहता है– ''हतेषु देहेषु गुणा धरन्ते''। कर्ण के चरित्र की दूसरी बड़ी विशेषता है कि वह दान से किसी प्रतिफल की आशा नहीं रखता।

टिप्पणी

इन्द्र के चरित्र में स्वार्थी रूप के अतिरिक्त अन्य कोई विशेषता लक्षित नहीं होती। शल्य का चरित्र कोई विशेष उभरकर सामने नहीं आया है।

अपने लघु विस्तार में यह नाटक पूर्ण है। काव्यरस के परिपाक तथा नाटकीय तत्वों के निर्वाह दोनों दृष्टियों से यह नाटक उच्च कोटि का है। यद्यपि नाटक का विषय वीर रस और युद्ध भूमि से ही सम्बन्ध रखता है, पर नाटक में करुण रस की ही विशेष प्रभा दिखाई पड़ती है।

5. पञ्चरात्रम्– यह तीन अंकों का ''समवकार'' है। इसकी कथा महाभारत के विराट पर्व पर आधारित है। इसका नामकरण स्पष्ट रूप से पाँच रात्रियों में पाण्डवों को ढूँढ़ने के विषय से हुआ है। द्रोणाचार्य के सत्प्रयास से पाण्डव मिल जाते हैं तथा दुर्योधन, द्वारा उन्हें आधा राज्य दे दिया जाता है। पाण्डवों को राज्य भ्रष्ट कर वह महान् यज्ञ का आयोजन करता है। यज्ञ में सभी देश देशान्तर के राजा उसको कर देने उपस्थित होते हैं। यह उनके महान् शौर्य पराक्रम को घोषित करता है। अवभृथ स्नान के समय दुर्योधन की अटूट गुरुभक्ति भी सामने आती है। काव्योत्कर्ष की दृष्टि से यह रूपक उत्तम कोटि का कहा जायेगा। सरल शब्दावली में भावोन्मेष भास की अपनी विशेषता है। शब्दों के आश्रय से भास ऐसा चित्र खड़ा कर देते हैं कि पूरा दृश्य ही सामने आ जाता है। अलंकारों की संघटना भी नितान्त आकर्षक है। स्थान–स्थान पर सूक्तियाँ इस बारीकी के साथ दी गई हैं कि प्रभावोत्पादन में वे दूनी वृद्धि कर देती हैं। इस रूपक का प्रधान रस वीर है। श्रृगांर का इसमें पूर्णरूपेण अभाव है, जो नाटक में स्त्रीपात्रों के न आने से हुआ है। संक्षेप में इसे भास की नाट्यचातुरी का अनुपम उदाहरण कहा जा सकता है।

6. उरूभंग– यह भी महाभारत की कथा पर आश्रित एक एकांकी है, इसमें व्यायोग के लक्षण घटित होते हैं। द्रोपदी के अपमान का प्रतिशोध लेने हेतु भीम व दुर्योधन का गदायुद्ध इसमें वर्णित हुआ है। इसमें एक ही अंक है तथा समय व स्थान की अन्विति का पूर्ण रूप से पालन किया गया है। नाटक की विशिष्टता इसके दुःखान्त होने के कारण है।

इस रूपक का नायक दुर्योधन है। उसके चरित्र विन्यास में नाटककार ने पर्याप्त कौशल प्रदर्शित किया है। इस एंकाकी में नाटककार ने उसके चरित्र को नितान्त उदात्त तथा प्राञ्जल रूप में प्रदर्शित किया है। वह शौर्य पराक्रम का जीवन्त प्रतीक है। दुर्योधन के अतिरिक्त अश्वत्थामा तथा बलराम का व्यक्तित्व भी अपने में महत्वपूर्ण है।

संस्कृत नाट्य–साहित्य में उरूभंग अपना विशिष्ट स्थान रखता है। नाटकीय कौशल की दृष्टि से यह नाटक प्रशंसनीय है। कथोपकथनों में स्वाभाविकता सर्वत्र परिलक्षित होती है। समय और पात्र के अनुकूल ही वार्तालापों की संघटना की गई है। दुर्योधन के उरूभंग हो जाने पर बलराम जी की चेष्टाओं तथा कथनों में पर्याप्त स्वाभाविकता है।

रस की दृष्टि से भी नाटककार को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। नाटक में करूण तथा वीर रस परस्पर अनुस्यूत हैं। इन दोनों रसों के चित्रण में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है।

7. बाल चरित– इसमें पाँच अंक हैं, यह नाटक भगवान् श्री कृष्ण की बाल लीलाओं पर आधारित है। पुराणों में यह प्रसंग बहुचर्चित है। विशेषतः श्रीमद्भागत महापुराण का तो यही सार है। इसमें श्रीकृष्ण के जन्म से कंस वध तक की कथा वर्णित है।

टिप्पणी

इसमें बाल रूपधारी भगवान् श्री कृष्ण की लीलाएं व चरित्र प्रदर्शित है। अतः इस नाटक का नाम बालचरित रखा गया है।

इस नाटक में नायक के रूप में भगवान् श्री कृष्ण का चरित्र वर्णित है। नाटककार इन्हें साक्षात् ब्रह्म के रूप में चित्रित करता है। पृथ्वी के भार को दूर करने तथा गो–ब्राह्मण की रक्षा एवं असुरों के संहार के लिये उन्होंने नर रूप धारण किया है। इसमें कृष्ण का अलौकिक एवं मानवीय दोनों रूप स्पष्टतः देखने को मिलते हैं।

कृष्ण के अलावा बलराम, वासुदेव जी एवं कंस का चरित्र भी इस नाटक में चित्रित किया गया है। वासुदेव जी का चरित्र शालीनता से ओतप्रोत है। कंस का चरित्र अत्यधिक कठोर प्रदर्शित किया गया है। नाटकीय दृष्टि से इसे एक सफल नाटक कहा जा सकता है। इसका नायक प्रख्यात तथा धीरोदात्त है। वह नायक के सभी गुणों से सम्पन्न है। रस की दृष्टि से इसमें वीर रस प्रधान है तथा करुण, रौद्र आदि रस अंग रूप में आये हैं। भाषा कथोपकथनों के अनुरूप है। सरल भाषा दर्शक के हृदय पर अपना अपूर्व प्रभाव डालती है। काव्य परिपाक की दृष्टि से यह नाटक अत्यन्त प्रशंसनीय है। अलंकारों का सुन्दर व समुचित प्रयोग किया गया है। बालचरित का निम्न श्लोक अनेक अलंकार ग्रन्थों में उल्लिखित हुआ है–

''लिम्पतीव तमोगांनि वर्षतीवान्जनं नभः।
असत्पुरूष सेवेव दृष्टिर्निष्फलतां गता।। (1/15)

रात्रि के वर्णन में नाटककार को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। शब्दों के द्वारा भावदशा के चित्रण में भास ने महान् सफलता प्राप्त की है। शब्दों के आश्रय से सम्पूर्ण भावदशा सारी परिस्थितियाँ साक्षात् दृष्टिगत होने लगती हैं।

8. दूतवाक्य– यह भी एकांकी नाटक है। रूपक के भेदानुसार यह ''व्यायोग'' है। इसमें श्रीकृष्ण का दूत के रूप में वर्णन हुआ है। श्रीकृष्ण दुर्योधन के पास संधि का प्रस्ताव लेकर आते हैं किन्तु उनका वहाँ अपमान किया जाता है तथा वे असफल होकर लौटते हैं। वे क्रुद्ध होकर सुदर्शन चक्र का आह्वान करते हैं तथा उसे दुर्योधन का वध करने का आदेश देते हैं। परन्तु वह वैसा करने से रोकता है। इसकी कथास्तु महाभारत से ली गई है।

इसका नामकरण बहुत ही सटीक है। सम्पूर्ण नाटक दूतवेशधारी श्रीकृष्ण के वचनों से अनुप्रमाणित है। अतः ''दूतवाक्य'' नाम पूर्णतया सार्थक है। सम्पूर्ण नाटक वीररस से ओतप्रोत है। श्रीकृष्ण के अस्त्रों की सहसा उद्भावना तथा विराट रूप प्रदर्शन में अद्भुत रस का चमत्कार है। प्रधान रूप से आरभटी वृत्ति की योजना है।

राजनीतिक सिद्धान्तों की यह नाटक खान है। ''दायाद्य'' को लेकर दुर्योधन एवं श्रीकृष्ण के मध्य हुआ वार्तालाप अत्यन्त रोचक एवं सटीक है। राज्यशासन के संदर्भ में दुर्योधन का कथन अत्यन्त सारगर्भित एवं महत्वपूर्ण है। वह कहता है कि ''राज्य शासन असक्तों का काम नहीं वह तो महान् बलशालियों से सिद्ध होता है–

''राज्यं नाम नृपात्मजैः सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते।
तल्लोके न तु याच्यते न तु पुनर्दीनाय वा दीयते।।

भास की भाषा सरल, पात्रानुकूल व रसानुरूप है।

टिप्पणी

9. दूत घटोत्कच– यह एकांकी भी महाभारत की कथा पर आधारित है। इसमें अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् श्रीकृष्ण घटोत्कच को दूत रूप में धृतराष्ट्र के पास भेजते हैं। दुर्योधन क्रुद्ध होकर घटोत्कच का तिरस्कार करता है। दोनों में परस्पर वाद–विवाद होता है। घटोत्कच दुर्योधन को युद्ध के लिये ललकारता है। धृतराष्ट्र उसे शान्त करते हैं। अन्त में घटोत्कच अर्जुन द्वारा अभिमन्यु का बदला लेने की बात कहकर धमकी देते हुये निकल जाता है। घटोत्कच के दूत बनकर जाने के कारण ही इसका नाम ''दूत घटोत्कच'' रखा गया है।

इस नाटक का प्रधान पात्र घटोत्कच है। वह वीर रस से ओतप्रोत है। वीरता के साथ–साथ उसमें शालीनता तथा शिष्टता होती है। वह वाक्पटु भी है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि नाटककार ने घटोत्कच का चरित्र बहुत ही उन्नत रूप में प्रस्तुत किया है। घटोत्कच के अलावा दुर्योधन, शकुनि तथा दुःशासन के चरित्र भी इस नाटक में उभरकर सामने आये है। ये सभी अत्यन्त अभिमानी तथा क्रूर प्रकृति के हैं। निहत्थे बालक अभिमन्यु को मारकर वे प्रसन्न होते हैं।

नाटक वीर तथा करुण रस का सम्मिलन है। एक और अभिमन्यु की मृत्यु से करुण रस का वातावरण प्रस्तुत है तो दूसरी और घटोत्कच तथ दुर्योधनादि के विवाद में वीररस अपना अस्तित्व व्यक्त करता है। यह नाटक वास्तविकता के निकट प्रतीत होता है। मानव हृदय की आकांक्षाओं एवं कमजोरियों के चित्रण में नाटककार अत्यन्त सफल है।

इस नाटक में भरतवाक्य का अभाव है, अतः कुछ लोग इसे अपूर्ण बतलाते हैं, संभव है आगे इसमें कुछ अंश रहा हो। परन्तु यह नाटक अपने प्रयोजन में पूर्ण है।

10. प्रतिज्ञायौगन्धरायण– यह लोककथाश्रित नाटक है। इसमें कौशाम्बी के राजा वत्सराज उदयन द्वारा उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता के हरण की कथा है। इसमें चार अंक हैं। इस नाटक का नामकरण अमात्य यौगन्धरायण की प्रतिज्ञाओं पर आश्रित है। इस नाटक में अमात्य यौगन्धरायण अपने स्वामी को शत्रु के बन्दीगृह से छुड़ा लाने की प्रतिज्ञा करता है तथा अनेक विघ्नों के उपस्थित होने पर भी उसे पूर्ण कर बताता है।

इस नाटक का नायक वत्स देश का राजा उदयन कलाकारों का सिरमौर है। वह भरतवंशी राजा है। वह अत्यन्त रूपवान है तथा उसके रूप पर महासेन प्रद्योत की स्त्री भी मुग्ध है। वीणावादन में वह आचार्य है। उसके वीणावादन की प्रसिद्धि देश देशान्तर में व्याप्त है तथा बन्दी अवस्था में ही उसे प्रद्योतपुत्री वासवदत्ता को वीणा सिखाने का दायित्व मिलता है। अतुलित कला प्रेमी होने के साथ–साथ वह शौर्य तथा पराक्रम से भी ओतप्रोत है। कृत्रिम गज को पकड़ने का प्रयास करते समय जब प्रद्योत की सेना उस पर टूट पड़ती है, वह किंचित् मात्र भी विचलित नहीं होता तथा उनको मृत्यु के घाट भेज देता है। यहाँ उसके धैर्य तथा पराक्रम की परीक्षा होती है जिसमें वह सफल होता है।

जब उसे बन्दी बना लिया जाता है तो वह अपने मन से बन्दी नहीं मानता तथा यौगन्धरायण द्वारा मुक्ति का पूरा प्रबन्ध कर लेने पर भी वासवदत्ता को लेकर चलने का

टिप्पणी

निश्चय करता है। इस काम में वह अपने कौशल तथा यौगन्धरायण के बुद्धि कौशल से सफल होता है। उदयन के अलावा अमात्य यौगन्धरायण की भी इस नाटक में महती भूमिका है। वह बुद्धिमत्ता तथा नीतिकौशल का चूड़ान्त निदर्शन है। अन्य पात्रों में उज्जयिनी के राजा महासेन प्रद्योत प्रतापी राजा हैं। सर्वत्र उनके आधिपत्य का सम्मान है। वह गुणग्राहक है। मन ही मन वह वत्सराज उदयन के गुणों का प्रशंसक है। रूमण्वान तथा विदूषक दोनों स्वामिभक्त हैं।

'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' भास के सफल नाटकों में अपना स्थान रखता है। कथानक का विन्यास, पात्रों का चरित्र–चित्रण, संवाद योजना एवं रसयोजना सभी का इस नाटक में सुन्दर समन्वय है। काव्यकला के परिपाक की दृष्टि से भी यह नाटक उच्चस्तरीय है। इसमें राजनीति एवं कूटनीति का साम्राज्य है। स्वामीभक्ति का महत्व इस नाटक में सर्वत्र लक्षित होता है।

सूक्तियों का इसमें प्राचुर्य है।

11. स्वप्नवासवदत्तम्– भास विरचित रूपकों में यह सर्वश्रेष्ठ है। वस्तुतः यह भास की नाट्यकला का चूड़ान्त निदर्शन है। यह छः अंकों का नाटक है। इसमें प्रतिज्ञायौगन्धरायण से आगे की कथा का वर्णन है। इस नाटक का नामकरण राजा उदयन के द्वारा स्वप्न में वासवदत्ता के दर्शन पर आधारित है। स्वप्न वाला दृश्य संस्कृत नाट्य साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है।

यह नाटक नाट्यकला की सर्वोत्तम परिणिति है। वस्तु, नेता एवं रस–तीनों ही दृष्टि से यह उत्तम कोटि का है। नाटकीय संविधान, कथोपकथन, चरित्र–चित्रण, प्राकृतिक वर्णन तथा रसों का सुन्दर सामन्जस्य इस नाटक में पूर्ण परिपाक को प्राप्त हुये हैं। मानव हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव दशाओं का चित्रण इस नाटक में सर्वत्र देखा जा सकता है। नाटक का प्रधान रस श्रृंगार है तथा हास्य की भी सुन्दर उद्भावना हुई है।

12. अविमारक– यह लोककथा सम्बन्धी छः अंकों का रूपक है। इसमें राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरंगी का राजकुमार अविमारक से प्रणय एवं विवाह का वर्णन है। नायक के आधार पर इसका नामकरण अविमारक रखा गया है। अविमारक का यथार्थ नाम विष्णुसेन था तथा अवि रूपधारी असुर को मारने से उसकी संज्ञा अविमारक है।

नाटक का नायक अविमारक है। वह अतुलित पराक्रमशाली है। सहज पराक्रमशीलता तथा पर दुःखकातरता उसके स्वभाव के अंग हैं। इसी कारण वह राजकुमारी कुरंगी पर हाथी के आक्रमण करने पर उसे मुक्त करता है। अविमारक एक धीरललित नायक के रूप में इस नाटक में प्रस्तुत किये गये हैं। नाटक की नायिका कुरंगी है। वह रूपयौवन सम्पन्ना है। अन्य पात्र सौवीरराज तथा कुन्तिभोज हैं।

नाटकीयता की दृष्टि से भास के अन्य नाटकों की तरह यह नाटक भी सफल है। सरल भाषा का प्रयोग नाटक की अभिनेयता में चार–चाँद लगा देता है, कथोपकथनों में स्वाभाविकता तथा भावांकन भास की अपनी विशेषता है। छोटे–छोटे वाक्य, सरल भाषा, रसानुकूल एवं पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग इस नाटक को उच्चकोटि में ला खड़ा करता है। इस नाटक का प्रधान रस श्रृंगार है तथा अन्य रस उसके सहायक बनकर आये हैं।

काव्यकला की दृष्टि से भी यह नाटक नितान्त उदात्त है। परिस्थितियों, अवस्थाओं एवं भावों का सटीक शब्दों एवं आलंकारिक भाषा में वर्णन सर्वत्र विद्यमान है।

प्रकृति चित्रण में नाटककार पूर्णतया सफल रहे हैं। नाटक में सूक्तियाँ यत्र–तत्र बिखरी हुई हैं। प्रसिद्ध सूक्त ''कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम्'' का भास ने यहाँ उत्तर उपस्थित किया है– ''कन्या पितृत्वं बहुवन्दनीयम्।''

टिप्पणी

इस प्रकार सभी दृष्टियों से यह रूपक प्रशस्त कहा जा सकता है।

13. चारूदत्त– महाकवि भास की नाट्य श्रृंखला में चारूदत्त अन्तिम कड़ी माना जाता है। इसकी कथावस्तु चार अंकों में विभाजित है। शूद्रक के प्रसिद्ध प्रकरण ''मृच्छकटिक'' का आधार यही माना जाता है। इसमें कवि ने दरिद्र चारूदत्त एवं वेश्या वसन्तसेना की प्रणय–कथा का वर्णन किया है। एक अन्य पात्र शकार है जो प्रतिनायक के रूप में है। प्रेम के आदर्श की सामाजिक प्रस्तुति इसमें दृष्टव्य है।

इस नाटक का नायक वणिकपुत्र आर्य चारूदत्त है। उसी के नाम पर इस नाटक का नामकरण हुआ है। नाटक की सम्पूर्ण घटनाएँ उसी के सुकृत्यों पर केन्द्रित हैं। चारूदत्त की दरिद्रता का बड़ा ही मार्मिक चित्रण इसमें किया गया है। चारूदत्त अत्यन्त दानी गुणवान् एवं रूपवान है। दानशीलता के कारण ही वह दरिद्र हो गया है। चारूदत्त धीर प्रकृति का मानव है। वह कला मर्मज्ञ है। वह महान् धार्मिक है तथा निर्धनावस्था में भी पूजा एवं बलिकर्म सम्पन्न करता है। नाटक की नायिका वसन्तसेना है। वह उज्जयिनी की एक प्रसिद्ध गणिका है। वह अत्यन्त रूपवती है। शकार तथा विट उसके रूप–जाल के पिपासु हैं। गणिका होते हुये भी उसका चारित्रक स्तर ऊँचा है। वह चारूदत्त के गुणों पर अनुरक्त है। उसके एक–एक गुण वसन्तसेना के प्रेम को दृढ़ करते जाते हैं। शकार से रात्रि में रक्षा और विदूषक के साथ वसन्तसेना का सकुशल घर पहुँचना, चेट को प्रवारक देना, वसन्तसेना के न्यास की चोरी हो जाने पर उसे कारागार में डालते हैं तथा वह स्वयं अभिसार के लिये उसके पास चल देती है। वसन्तसेना गणिका होने पर भी धन लोभिनी नहीं है। वह अत्यन्त उदार मनवाली नायिका है।

नाटक के अन्य पात्रों में चारूदत्त का मित्र मैत्रेय विदूषक है। वह जन्म का ब्राह्मण है। वह अपने मित्र का विपत्ति–सम्पत्ति दोनों समयों में साथ देने वाला है। मैत्रेय संस्कृत नाट्कों में अन्य विदूषकों के समान केवल भोजनभट्ट मूर्ख ब्राह्मण नहीं है। वह समयानुसार उसके हित सम्पादन के लिए कठिन कार्यों को भी सम्पन्न करता है।

शकार इस नाटक में खलनायक है। वह मूर्ख है। सामान्य बात का भी उसे ज्ञान नहीं है। गुणवानों के प्रति उसका कोई आकर्षण नहीं है। वह वसन्तसेना के रूप पर मुग्ध है तथा बलात् उससे प्रेम करना चाहता है।

यह नाटक दैव–दुर्विपाकवश अकस्मात् समाप्त हो जाता है तथा यह सहज में अनुमति हो जाती है कि अपने वर्तमान रूप में यह पूर्ण नहीं है। यह भी संभावना है कि इस नाटक की रचना करते समय भास की मृत्यु हो गई हो तथा इस प्रकार यह अधूरा रह गया हो।

यह नाटक सरल व सुबोध है। चरित्र–चित्रण की दृष्टि से बेजोड़ है। नाना प्रकार के सज्जन से सज्जन तथा दुर्जन से दुर्जन यहाँ वर्तमान हैं। एक ओर चारूदत्त से भी यह नाटक उच्च कोटि का है।

इस नाटक में भास का कविहृदय भी पूर्णरूप से अभिव्यक्ति को प्राप्त हुआ है। प्रकृति का चित्रण भी स्वाभाविक एवं हृदयाकर्षक है। नाटक का प्रधान रस श्रृंगार है

तथा अन्य रसों का भी समयानुसार सुन्दर प्रयोग किया गया है। इस नाटक में देशकाल का चित्रण बड़ा ही स्वाभाविक है। द्यूत का वर्णन दृष्टव्य है। दास–प्रथा का संकेत सज्जलक द्वारा वसन्तसेना की चोरी को मुक्त कराने के उद्योग से लगता है। चोरी का दृष्टान्त सज्जलक का कृत्य है। नाटक की भाषा सरल, सरस एवं पात्रानुकूल है।

टिप्पणी

4.5.2 वासवदत्तम् विवेचनम्

'स्वप्नवासवदत्ता' भास के द्वारा लिखित सबसे चर्चित नाटक है जिसमें एक राजा के अपने रानी के प्रति अवर्णनीय प्रेम, विरह और पुनर्मिलन की कहानी है।

'स्वप्नवासवदत्ता' भास विरचित रूपकों में सर्वश्रेष्ठ है। वस्तुतः यह भास की नाट्यकला का चूडान्त निदर्शन है। यह छः अंकों का नाटक है। इसमें प्रतिज्ञायौगन्धरायण से आगे की कथा का वर्णन है। इस नाटक का नामकरण राजा उदयन के द्वारा स्वप्न में वासवदत्ता के दर्शन पर आधारित है। स्वप्न वाला दृश्य संस्कृत नाट्य साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है।

यह नाटक नाट्यकला की सर्वोत्तम परिणिति है। वस्तु, नेता एवं रस–तीनों ही दृष्टि से यह उत्तम कोटि का है। नाटकीय संविधान, कथोपकथन, चरित्र–चित्रण, प्राकृतिक वर्णन तथा रसों का सुन्दर सामंजस्य इस नाटक में पूर्ण परिपाक को प्राप्त हुये हैं। मानव हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव दशाओं का चित्रण इस नाटक में सर्वत्र देखा जा सकता है। नाटक का प्रधान रस श्रृंगार है तथा हास्य की भी सुन्दर उद्भावना हुई है।

स्वप्नवासवदत्ता (वासवदत्ता का स्वप्न), महाकवि भास का प्रसिद्ध संस्कृत नाटक है। इसमें छः अंक हैं। भास के नाटकों में यह सबसे उत्कृष्ट है। क्षेमेन्द्र के बृहत्कथामंजरी तथा सोमदेव के कथासरित्सागर पर आधारित यह नाटक समग्र संस्कृतवाङ्मय के दृश्यकाव्यों में आदर्श कृति माना जाता है। भास विरचित रूपकों में यह सर्वश्रेष्ठ है। वस्तुतः यह भास की नाट्यकला का चूडान्त निदर्शन है। यह छः अंकों का नाटक है। इसमें प्रतिज्ञायौगन्धारायण से आगे की कथा का वर्णन है। इस नाटक का नामकरण राजा उदयन के द्वारा स्वप्न में वासवदत्ता के दर्शन पर आधारित है। स्वप्न वाला दृश्य संस्कृत नाट्य साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है।

पुरुवंशीय उदयन वत्स राज्य के राजा थे। उनकी राजधानी का नाम कौशाम्बी था। उन्हीं दिनों अवन्ति राज्य, जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी, में प्रद्योत नाम के राजा राज्य करते थे। महाराज प्रद्योत एक अत्यन्त विशाल सैन्य–बल के स्वामी थे इसलिये उन्हें महासेन के नाम से भी जाना जाता था। महाराज उदयन के पास घोषवती नामक एक दिव्य वीणा थी। उनका वीणा–वादन अपूर्व था। एक बार प्रद्योत के अमात्य शालंकायन ने छल करके उदयन को कैद कर लिया। उदयन के वीणा–वादन की ख्याति सुनकर प्रद्योत ने उन्हे अपनी पुत्री वासवदत्ता के लिये वीणा–शिक्षक नियुक्त कर दिया। इस दौरान उदयन और वासवदत्ता के मध्य एक दूसरे के प्रति आसक्ति जागृत हो गई।

इधर उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण उन्हें कैद से छुड़ाने के प्रयास में थे। यौगन्धरायण के चातुर्य से उदयन, वासवदत्ता को साथ ले कर, उज्जयिनी से निकल भागने में सफल हो गये और कौशाम्बी आकर उन्होंने वासवदत्ता से विवाह कर लिया।

टिप्पणी

उदयन वासवदत्ता के प्रेम में इतने खोए रहने लगे कि उन्हें राज–कार्य की सुध ही नहीं रही। इस स्थिति का लाभ उठा कर आरुणि नामक उनके क्रूर शत्रु ने उनके राज्य को उनसे छीन लिया। आरुणि से उदयन के राज्य को वापस लेने के लिये उनके मन्त्री यौगन्धरायण और रुम्णवान् प्रयत्नशील हो गये। किन्तु बिना किसी अन्य राज्य की सहायता के आरुणि को परास्त नहीं किया जा सकता था। वासवदत्ता के पिता प्रद्योत उदयन से नाराज थे और यौगन्धरायण को उनसे किसी प्रकार की उम्मीद नहीं थी।

यौगन्धरायण को ज्योतिषियों के द्वारा पता चलता है कि मगध–नरेश की बहन पद्मावती का विवाह जिन नरेश से होगा वे चक्रवर्ती सम्राट हो जायेंगे। यौगन्धरायण ने सोचा कि यदि किसी प्रकार से पद्मावती का विवाह उदयन से हो जाये तो उदयन को अवश्य ही उनका वत्स राज्य आरुणि से वापस मिल जायेगा साथ ही वे चक्रवर्ती सम्राट भी बन जायेंगे।

यौगन्धरायण ने महाराज उदयन के विवाह पद्मावती से करवा देने की अपनी योजना के विषय में वासवदत्ता को बताया। पति की मंगलकामना चाहने वाली वासवदत्ता इस विवाह के लिये राजी हो गईं। किन्तु यौगन्धरायण भलीभाँति जानते थे कि उदयन अपनी पत्नी वासवदत्ता से असीम प्रेम करते हैं और वे अपने दूसरे विवाह के लिये कदापि राजी नहीं होंगे। अतएव उन्होंने वासवदत्ता और एक अन्य मन्त्री रुम्णवान् के साथ मिलकर एक योजना बनाई। योजना के अनुसार उदयन को राजपरिवार तथा विश्वासपात्र सहयोगियों के साथ लेकर आखेट के लिये वन में भेजा गया जहाँ वे सभी लोग शिविर में रहने लगे। एक दिन, जब उदयन मृगया के लिये गए हुए थे, शिविर में आग लगा दी गई। उदयन के वापस लौटने पर रुम्णवान ने उन्हें बताया कि वासवदत्ता शिविर में लगी आग में फँस गईं थीं और उन्हें बचाने के लिये यौगन्धरायण वहाँ घुसे जहाँ पर दोनों ही जल मरे। उदयन इस समाचार से अत्यन्त दुःखी हुए किन्तु रुम्णवान तथा अन्य अमात्यों ने अनेकों प्रकार से सांत्वना देकर उन्हें सम्भाला।

इधर यौगन्धरायण वासवदत्ता को साथ लेकर परिव्राजक के वेश में मगध राजपुत्री पद्मावती के पास पहुँच गए और प्रच्छन्न वासवदत्ता (अवन्तिका) को पद्मावती के पास धरोहर के रूप में रख दिया। अवन्तिका पद्मावती की विशेष अनुग्रह पात्र बन गईं। उन्होंने महाराज उदयन का गुणगान कर के पद्मावती को उनके प्रति आकर्षित कर लिया।

उदयन दूसरा विवाह नहीं करना चाहते थे किन्तु रुम्णवान् ने उन्हें समझा–बुझा कर पद्मावती से विवाह के लिये राजी कर लिया। इस प्रकार उदयन का विवाह पद्मावती के साथ हो गया। विवाह के पश्चात् मगध–नरेश की सहायता से उदयन ने आरुणि पर आक्रमण कर दिया और उसे परास्त कर अपना राज्य वापस ले लिया। अन्त में अत्यन्त नाटकीय ढंग से यौगन्धरायण और वासवदत्ता ने स्वयं को प्रकट कर दिया। यौगन्धरायण ने अपनी धृष्टता एवं दुस्साहस के लिये क्षमा निवेदन किया।

इस नाटक के एक दृश्य में उदयन समुद्रगृह में विश्राम करते रहते हैं। वे स्वप्न में 'हा वासवदत्ता', 'हा वासवदत्ता' पुकारते रहते हैं उसी समय अवन्तिका (वासवदत्ता) वहाँ पहुँच जाती हैं। वे उनके लटकते हुये हाथ को बिस्तर पर रख कर निकल जाती

हैं किन्तु उसी समय उदयन की नींद खुल जाती है। वे निश्चय नहीं कर पाते कि उन्होंने वास्तव में वासवदत्ता को देखा है अथवा स्वप्न में। इसी घटना के कारण नाटक का नाम 'स्वप्नवासवदत्तम्' रखा गया।

टिप्पणी

4.5.3 'स्वप्नवासवदत्तम्' के प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण

(1) राजा उदयन – महाकवि भास द्वारा रचित 'स्वप्नवासवदत्तम्' का नायक उदयन है। वह वत्सदेश का राजा है। नाटककार ने जिस रूप में उदयन का प्रस्तुतीकरण इस नाटक में किया है, उससे उसके चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएं व्यक्त हुई हैं–

(क) **धीरललित नायक**– नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों में जो नायक के भेद प्रस्तुत किये गये हैं, उस वर्गीकरण के अन्तर्गत उदयन धीरललित नायक की श्रेणी में आता है। दशरूपक के रचयिता आचार्य धनञ्जय के अनुसार धीरललित नायक ''निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः।'' अर्थात् धीरललित नायक प्रकृति से निश्चिन्त, कला प्रेमी व मृदु स्वभाव का होता है। ये सभी गुण उदयन में विद्यमान हैं। निश्चिन्त तो वह इतना है कि सम्पूर्ण राज्यभार पूर्णतः मंत्रियों पर छोड़ देता है। कलापरायणता के विषय में कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। उसकी वीणावादन की प्रसिद्धि सर्वत्र फैल चुकी है। वह प्रकृति से इतना मृदु है कि कहीं भी क्रोध की मुद्रा में दिखाई नहीं देते।

(ख) **रूपवान**– राजा उदयन अत्यन्त रूपवान है। उसके रूप की प्रशंसा सभी समानरूपेण करते हैं। द्वितीय अंक में वासवदत्ता उसे दर्शनीय कहती है तो तृतीय अंक में चेटी उसे शरचापहीन कामदेव कहती है। उसके सौन्दर्य के कारण उज्जयिनी के सभी लोग आकर्षित है।

(ग) **विविधगुण सम्पन्न**– उदयन विविध गुणों से युक्त है। वह रूपवान होने के साथ–साथ समुद्र के समान गंभीर एवं धीर प्रकृति का है। वह सुशीलता की प्रतिमूर्ति है। उसका ह्रदय अत्यन्त कोमल तथा दृढ़निश्चयी है। वह मृगया प्रेमी है। वह दाक्षिण्य गुण से युक्त है। इसी दाक्षिण्य गुण के कारण अपने वासवदत्ता के प्रति प्रेम को वह पद्मावती के सामने प्रकट नहीं होने देता।

(घ) **आदर्श पत्नीव्रत**– उदयन का पत्नीव्रत उल्लेखनीय है। उसका अपनी पत्नी के प्रति प्रेम बड़ा ही अचल एवं निष्कपट है। जब उसकी प्रियतमा वासवदत्ता के अग्नि में जल जाने का प्रवाद प्रसारित हो जाता है तथा यह समाचार जब उदयन तक पहुँचता है तो वह इतना व्यथित एवं उन्मत्त हो जाता है कि स्वयं को भी उसी अग्नि में भस्मसात् कर देना चाहता है। मन्त्रियों द्वारा रोके जाने पर वह वासवदत्ता के आभूषणों को छाती से लगा कर मूर्च्छित हो जाता है। उसके इस अनन्य प्रेम का वर्णन करते हुये ब्रह्मचारी को भी कहना पड़ता है– ''नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेशैर्वियुक्ता।'' पद्मावती से विवाहोपरान्त भी वासवदत्ता को नहीं भूलते हैं, उसकी स्मृति उसे सदैव बनी रहती है। विदूषक जब उससे दोनों के विषय में पूछता है तब वह स्पष्टतया कहता है – ''पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति।'' जब पद्मावती के बीमार होने का समाचार उसे मिलता है तो वह तुरन्त समुद्रग्रह में पहुंचता है। जब स्वप्नावस्था में वासवदत्ता के स्पर्श–सुख की अनुभूति होती है

टिप्पणी

तो वह रोमांचित हो जाता है तथा उसके पीछे दौड़ता हुआ दरवाजे से टकरा जाता है। वह उसके जीवित होने की बात विदूषक को कहता है। विदूषक इसे स्वप्न में देखना बतलाता है। तब उदयन कहता है 'यदि यह स्वप्न था तो मेरा न जागना ही अच्छा था, और यदि यह मतिभ्रम है तो मेरा (यह मतिभ्रम) चिरकाल तक बना रहे –

''यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम्।

अथायं विभ्रमो वा स्यात् विभ्रमो ह्यस्तुमेचिरम्।।

इसका मतलब यह नहीं कि वह पद्मावती से कम प्रेम करता है। पद्मावती के प्रति भी उसका प्रगाढ़ प्रेम है। वह उसके सिर के दर्द की बात सुनकर व्याकुल हो जाता है तथा मन में अनेक प्रकार की आशंकायें करते हुये कहता है–

'रूपश्रियां समुदितां गुणतष्च युक्तां लब्धवाप्रियां यम तु मन्द इवाद्य शोकः। पूर्वाभिघातसरुजोऽप्यनुभूतदुःखः पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि।।

इस प्रकार एक आदर्श पति के रूप में उसका चरित्र नाटक में उभरकर सामने आया है।

(ङ) **वीर एवं व्यवहार कुशल**– यद्यपि वह धीर ललित नायक है तथापि उसमें शौर्य का अभाव नहीं है। पञ्चम अंक के अन्त में जब उसे सूचना मिलती है कि रूमण्वान् ने आरूणि पर आक्रमण कर दिया है तब वह वीरोचित शब्दों में कहता है– ''उपेत्य नागेन्द्र तुरंगतीर्णं तमारूणिं दारूणकर्मदक्षम् विकीर्ण बाणोग्रतरंग ङ्गे महार्णवाभे युधि नाशयामि।। उक्त वाक्य एक वीर एवं साहसी व्यक्ति ही बोल सकता है भीरू अथवा विलासी नहीं। उदयन की पराक्रमता एवं उत्साह सम्पन्नता का उल्लेख कंचुकी भी करता है–

''कातराः येऽप्याशक्ता वा नोत्साहस्तेषुजायते।

प्रायेण हि नरेन्द्र श्रीः सोत्साहैरवे भुज्यते।।''

उदयन व्यवहार कुशल एवं गुरुजनों के प्रति आदर सत्कार की भावना रखने वाला है। जब महासेन तथा अंगारखती के यहां से आया ब्राह्मण तथा धात्री सन्देश सुनाती है, तो 'क्या आज्ञा है' यह कहकर आसन से उठा जाता है। जो व्यक्ति किसी के आदेश को सुनने के लिए आसन से उठ जाता है, वह गुरुजनों के प्रत्यक्ष में उपस्थित होने पर कितना आदर सत्कार करेगा– यह सहज अनुमेय है। अवन्तिका को लौटाने के समय साक्षियों की नियुक्ति करना उसके व्यावहारिक ज्ञान को व्यक्त करती है। इसी प्रकार वासवदत्ता के पिता महासेन जी को वह अपने पिता तुल्य ही मानता है तथा अपने ऊपर उनकी महान् कृपा का उल्लेख करता है, जो बडों के प्रति उनके सम्मान भाव को प्रकट करता है–

'अहमवजितः पूर्वं तावत् सुतैः सह लालितो दृ
मपहृता कन्या भूयो मया न च रक्षिता।
निधनमपि च श्रुत्वा तस्यास्तथैव मयि स्वता
ननु यदुचितान् वत्सान् प्राप्तुं न्पोऽत्र हि कारणम्।।

(च) **विलासप्रिय**– राजा उदयन वीर, कला प्रेमी, व्यवहार कुशल है तथापि मनुष्य होने के नाते कुछ कमजोरियां उसके चरित्र में हैं। यथा– वह इतना अधिक

विलासी एवं कामुक प्रवृत्ति का है कि वासवदत्ता के सौन्दर्य पर आसक्त होकर राज्य तक को खो बैठता है।

(छ) **विवेक की कमी**– इसके अलावा उसमें कुछ विवेक की भी कमी है। यही कारण है कि अन्तिम अंक में यौगन्धरायण के विरोध करने पर भी वह वासवदत्ता को भीतर आने के लिए कहता है, यद्यपि उसे उसका पूर्ण परिचय नहीं प्राप्त हो सका है। यह उसके सद्यः पूर्व के वक्तव्य 'परस्परगता लोके दृश्यतो तुल्यरुपता' से मेल नहीं खाता। यवनिका प्रक्षेप के बाद ही उसे वस्तुस्थिति का ठीक ज्ञान होता है। संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि उदयन का चरित्र एक नायक के रूप में चित्रित करने में भास को पूर्ण सकलता प्राप्त हुई है।

टिप्पणी

2. वासवदत्ता– महाकवि भास विरचित तेरह नाटकों में 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक सर्वश्रेष्ठ है। इसकी दो नायिका हैं– वासवदत्ता एवं पद्मावती। रुपयौवन शालिनी अवन्तिदेश की राजकुमारी वासवदत्ता नाटक की प्रधान स्वीया नायिका है। उसमें राजमहिषी के अनुरूप बुद्धिमत्ता एवं संवेदनशीलता है। उसके चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएं नाटक में अभिव्यक्त हुई हैं–

(क) **स्वाभिमानिनी महिला**– वासवदत्ता स्वाभिमान की भावना से ओतप्रोत है। नाटक के प्रारम्भ में अवधीरणा की बात सुनकर वह कांप उठती है। संन्यास वेशधारी यौगन्धरायण के साथ प्रविष्ट होती हुई वह दो कर्मचारियों द्वारा ''उत्सरत, उत्सरत आर्याः।'' का जब आदेश सुनती है उस समय वह अपने को हटाये जाने की आशंका से स्वाभिमान को ठेस लगती देखकर तुरन्त प्रतिक्रिया स्वरूप यौगन्धरायण से प्रश्न कर बैठती है– ''अहमपि नामोत्सारयितव्या भवामि?'' वह इस उत्सारणा जन्य अपमान को इतनी संवेदनशीलता के साथ अनुभव करती है कि हठात् उसके मुख से निकल जाता है– 'आर्य! तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति यथायं परिभवः।'

(ख) **पति–परायणा**– वासवदत्ता पतिपरायणा एवं निःस्वार्थ पत्नी है जो अपने पति के लिए सर्वस्व समर्पण करने के लिए तत्पर रहती है। वह मन्त्री यौगन्धरायण की योजना बिना किसी तर्क–वितर्क के स्वीकार कर लेती है। योजना की सफलीभूत अवधिपर्यन्त उसे अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं परन्तु उसमें भी वह अनुपम आनन्द का ही अनुभव करती है क्योंकि उसमें उसके पति का हित सन्निहित है। उसके लिए पति का सुख ही सब कुछ है। पति के हित के लिए राजकुमारी व पटरानी होते हुए भी वह एक दासी के रूप में पद्मावती के पास रहती है। एकान्त में अपने पति को पाकर व उनके स्पर्श से भी अपनी भावनाओं को रोककर केवल पति के हित के लिए दूर हट जाती है। ऐसा त्याग सामान्यतः अन्य स्त्रियों में देखने को नहीं मिलता। यही कारण है कि राजा उसे जन्म–जन्मान्तरों तक नहीं भूलने की बात कहता है–

''महासेवस्य दुहिता शिष्या देवी च मे प्रिया
कथं सा नु मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेश्वपि।।6।।

वासवदत्ता उदयन के प्रति प्रारम्भ से ही पूर्णतः आसक्त थी। इस बात का उल्लेख स्वयं उदयन ने पञ्चम अंक में किया है। उदयन जब वासवदत्ता को वीणा बजाने सम्बन्धी शिक्षा प्रदान करते थे, उस समय वह उदयन के मनोहर मुख को एकटक देखने लगती थी। उस समय वह उदयन के प्रति प्रेम–भावना में इतनी

टिप्पणी

तल्लीन हो जाती थी कि उसको यह भी पता नहीं रहता था कि कब और कैसे उसकी अंगुली से वीणा बजाने का छल्ला गिर पड़ा। उदयन द्वारा ध्यान दिलाये जाने पर भी वह अपनी सूनी अंगुली को ही शून्य आकाश में चलाती रहती थी, मानो वह छल्ला पहने हुये वीणा – बजा रही है। यह आसक्ति की पराकाष्ठा है।

(ग) **गुण ग्राहिणी**– वासवदत्ता गुण ग्राहिणी है। पद्मावती के रुप की प्रशंसा वह खुले मुंह से करती है– 'अभिजनानुरूपं खल्वस्यरूपम्।'

(घ) **नारी सुलभ ईर्ष्या**– वासवदत्ता गुण ग्रहिणी व विवेकशीला है। परन्तु एक नारी है अतः नारी सुलभ ईर्ष्या भाव उसमें भी विद्यमान है। अदृष्ट के परिहास से नाटक में वह अपनी भावी सहेली पद्मावती के संरक्षण में न्यास के रूप में रख दी गई है। यद्यपि प्रकृति से उदार है परन्तु उसके अन्तस् में छिपे नारी सुलभ ईर्ष्या के भाव कभी–कभी उसे कोसने से लगते हैं। वह यह सोचकर कि उसका पति अब दूसरी स्त्री का पति हो गया है। 'आर्यपुत्रोऽपि परकीयः संवृत्तः' अत्यन्त व्यथित होती है। वह पद्मावती की वैवाहिक माला में 'सपलीमर्दन' नामक जड़ी नहीं गूंथती। उसका पति दूसरी स्त्री से विवाह विधि सम्पन्न करे– उसे वह देखने में असमर्थ है। अतः पद्मावती के विवाह–संस्कार के समय अपने को प्रमदवन के कुञ्ज में छिपा लेती है। इतने पर भी वह प्रतिक्षण जागरूक रहती है कि कहीं यौगन्धरायण की योजना निष्फल न हो जाये।

(ङ) **कोमल हृदया**– यद्यपि नारी होने के कारण ईर्ष्या भाव से वह युक्त है परन्तु फिर भी हृदय से अत्यन्त कोमल है। वह पद्मावती के प्रति सदैव स्नेहपूर्ण व्यवहार करती है। जब उसे पद्मावती के अस्वस्थ होने का समाचार मालूम होता है तो वह तुरन्त समुद्रगृहक में पहुंचती है। यह समाचार सुनकर उसे बड़ा कष्ट होता है क्योंकि उसका पति जो कि उसके वियोग के कारण शोकातुर है, अपने इस एक मात्र मनोविनोद के साधन के अभाव में अधिक दुःखी होगा। अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वासवदत्ता विधाता की एक सुन्दर सृष्टि है। नारी सुलभ समस्त गुण दोषों में से युक्त होते हुए भी एक आदर्श नारी है। नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से वह 'धीरा' वर्ग की नायिका है।

3. पद्मावती– पद्मावती 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक की दूसरी स्वीया नायिका है। नाटक में सर्व प्रथम उसका परिचय कन्या के रूप में होता है। वह मगध नरेश दर्शक की भगिनी तथा मगध के पूर्व राजा अजातशत्रु की पुत्री है। नाटक में उसके चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएं उभरकर सामने आई हैं–

1. **धर्मप्रिया एवं दानशील**– नाटक में प्रथम अंक में जिस रूप में उसका परिचय हमें मिलता है, तदनुसार वह उदारहृदया, धर्मप्रिया एवं दानशील है। जब वह तपोवन में अपनी माता के दर्शनार्थ आती है तो उसके आगे चलने वाले अंगरक्षक मार्ग में आने वाले लोगों एवं तपस्वियों को हटाते हैं। यह देखकर पद्मावती उन्हें पीड़ित न करने का आदेश देती है। कञ्चुकी इसी समय पद्मावती एवं उसके कुल की धर्मप्रियता के विषय में उद्घोषणा करता है–

''धर्मप्रिया नृपसुता न हि धर्मपीड़ा–

मिच्छेत् तपस्विशु कुलव्रतमेतदस्याः।।1/6।।

टिप्पणी

इसी सन्दर्भ में पद्मावती की दानशीलता का भी सुन्दर चित्रण प्राप्त होता है। वह कञ्चुकी द्वारा तपोवन में दान देने की घोषणा करवाती है–

''कस्यार्थ : कलधेन को मृगयते वासो यथानिश्चितम् दीक्षां पारितवान् किमिच्छति पुर्नेदयं गुरोर्यद्भवेत्। आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया यद्यस्यास्ति समीप्सितं वदतु तत् कस्याद्य किं दीयताम्।।

पद्मावती की उत्कृष्ट इच्छा है कि तपस्वी जन निःशंक होकर अपनी आवश्यकताओं को उनके सामने प्रस्तुत करें। वे इच्छानुसार वस्तुएं मांगें तथा प्राप्त करें। यह भावना पद्मावती की धर्मप्रियता, दानशीलता एवं उदारता को व्यक्त करती है।

2. **अत्यन्त रूपवती**– पद्मावती अत्यन्त रूपवती है। उसके रूप की प्रशंसा स्वयं वासवदत्ता प्रथम अंक में करती है। चतुर्थ एवं पञ्चम अंक में स्वयं राजा उदयन भी उसके रूप की प्रशंसा करता है। चतुर्थ अंक में वह अपने मित्र विदूषक से इस प्रकार कहता है– ''पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रुपशीलमाधुर्यैः।। पञ्चम् अंक में जब उसके अस्वस्थ होने का समाचार सुनता है तो अत्यन्त दुःखी होता हुआ कहता है– ''रूपश्रियां समुदितां गुणतश्च युक्तां'' दोनों स्थलों पर हम उसके द्वारा पद्मावती के सौन्दर्य की बात सुनते हैं। विदूषक के शब्दों में वह सद्गुणों की आकार है।'' वह तरूणी, दर्शनीया, अकोपना, अनहंकारा, मधुरवाक् एवं सदाक्षिण्या है।

3. **पतिपरायणा**– वासवदत्ता के समान पद्मावती भी अपने पति के प्रति समर्पिता है। अपने पति के लिए उसके हृदय में अपार एवं शाश्वत प्रेम है। वह अपने पति में किसी प्रकार का दोष देखना अथवा सुनना नहीं चाहती है। वह स्वयं कष्ट उठाकर भी अपने पति को सदैव सुखी देखने का प्रयास करती रहती है। चेटी जब एक बार उदयन को पद्मावती की अपेक्षा वासवदत्ता पर अधिक प्रेम प्रकट करने के कारण 'अदाक्षिण्य' कह देती है तो तत्काल चेटी को रोकते हुए कहती है–

'हला! मा मैवम्। सदाक्षिण्य एवार्य पुत्रः य

इदानीमप्यार्याया वासवदत्तायाः गुणान् स्मरति।''

4. **उदारमना**– पद्मावती उदारमना एवं विशाल हृदया है। तपोवन में वह जिस किसी को उसका अभीष्ट पूरा करने की उद्घोषणा करती है। वासवदत्ता को न्यास के रूप में रखकर वह उसके प्रति जैसा व्यवहार करती है उससे उसकी उदारता स्पष्टतया अभिव्यक्त होती है। विवाहोपरान्त अपनी सौत वासवदत्ता के प्रति अपने पति उदयन का प्रेम देखकर वह अन्य स्त्रियों की तरह न तो दुःखी होती है और न ईर्ष्या करती है। प्रत्युत सम्मान का भाव रखते हुए जब भी उसका नाम लेती है तो उसके नाम से पहले ''आर्या'' शब्द का प्रयोग अवश्य करती है। एक सौत के प्रति इस प्रकार का व्यवहार उसके हृदय की उदारता एवं महानता का द्योतक है।

5. **पूज्य एवं अग्रजों के प्रति सम्मान**– पद्मावती अपने से उम्र में बड़ों तथा पूज्य जनों के प्रति आदर भाव रखती है। वह सदैव पूज्य व्यक्तियों का सम्मान करती है। तपोवन में वह तपस्वियों का सम्मान करते हुये उन्हें स्वेच्छापूर्वक घूमने एवं जो वस्तु उन्हें चाहिए उसे ग्रहण करने का निर्देश कञ्चुकी के माध्यम से

टिप्पणी

प्रदान करती है। यौगन्धरायण के साथ भी वह अत्यन्त सम्मानपूर्वक वार्तालाप करती है। विवाहोपरान्त वासवदत्ता के माता–पिता का अपने माता–पिता के तुल्य ही सम्मान करती है। चित्रफलक में अवन्तिका के समान वासवदत्ता का रूप देखकर वह वासवदत्ता के जीवित होने के विचार से गद्‌गद् हो जाती है। इसके बाद वासवदत्ता के प्रकट होने पर वह किसी प्रकार का ईर्ष्या भाव व्यक्त नहीं करती अपितु एक सहज स्नेह का परिचय देते हुये उसके पैरों पर गिरकर क्षमा याचना करते हुये कहती है– ''आर्ये! सखीजन समुदाचारेणातिक्रान्तः समुदाचारः। तच्छीर्षेण प्रसादयामि।'' संक्षेप में, पद्‌मावती का चरित्र एक आदर्श चरित्र है। वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में हम उसका मूल्यांकन करें तो नारी जगत् में ऐसा चरित्र मिलना अति दुर्लभ हैं।

4. यौगन्धरायण– यह वत्सराज उदयन का मन्त्री एवं राजनीति में चाणक्य के समान अत्यन्त दूरदर्शी व कुशल है। नाटक में यद्यपि उससे साक्षात्कार प्रथम एवं षष्ठ अंक में होता है तथापि वह नाटक का एक महत्त्वपूर्ण पात्र है। नाटक का सम्पूर्ण घटनाचक्र उसी के बुद्धिकौशल से चल रहा है। नाटक में उसके चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएं अभिव्यक्त हुई हैं–

1. **स्वामिभक्त**– स्वामिभक्ति उसके चरित्र की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है। वह स्वामिभक्ति की भावना से परिपूर्ण है। अपने स्वामी तथा राज्य हित के लिये वह सर्वस्व त्याग सकता है। नाटक में अपने स्वामी उदयन के हित सम्पादन हेतु उसने प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अनेक प्रकार की आपत्तियों का सामना किया है। अपने स्वामी को संकट से निकालने के लिये उसने अनेक योजनायें बनाई। उसकी स्वामिभक्ति पर उदयन की पटरानी वासवदत्ता को भी पूरा विश्वास था। इसीलिये उसने अपने पति की उन्नति के लिये उस पर पूर्ण विश्वास करते हुये उसकी योजना को सफल बनाने में पूरा सहयोग प्रदान किया। जब उसे अवन्तिका के वेश में यौगन्धरायण पद्‌मावती के पास न्यास के रूप में सौंपता है तब वह कहती है – ''इह मां निक्षेप्तु काम आर्य यौगन्धरायणः। भवतु अविचार्य कार्य न करिष्यति।'' वासवदत्ता की प्राप्ति, उदयन की महासेन की कैद से मुक्ति, प्रद्योत की सेना को पराजित करना, पद्‌मावती के साथ उदयन का विवाह तथा खोये हुऐ राज्य की पुनः प्राप्ति आदि सम्पूर्ण कार्यों में यौगन्धरायण की ही बुद्धि व पराक्रम सफलता के कारण थे। इस बात को स्वयं राजा उदयन ने भी अनुभव किया। उसने नाटक के अन्तिम अंक में उसकी योग्यता के अनुरूप ही उसकी प्रशंसा की–

   ''मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः।

   भवद्यन्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धताः।।''

2. **गुणी एवं गुण ग्राहक**– यौगन्धरायण स्वयं गुणी है तथा दूसरे के गुणों का ग्राहक भी है। उसमें दूसरे के गुणों को पहचानने की अद्‌भुत क्षमता है। रूमण्वान् द्वारा किये गये परिश्रम को सुनकर वह उसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता है– ''अहो महद्‌भारमुद्वहति रूमण्वान्। कुतः – ''सविश्रमो ह्यदयं भारः प्रसक्तस्य तु श्रमः। तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः।।

टिप्पणी

3. **निरभिमानी**– बुद्धिकौशल, गुणग्राहकता एवं स्वामिभक्ति से ओतप्रोत होने पर भी उसमें लेशमात्र भी अभिमान की भावना नहीं है। कहीं पर भी हमें उसकी गर्वोक्ति सुनाई नहीं देती। वह कहता है– ''स्वामिभाग्यानुगन्तारो वयम्।'' नाटक के अन्तिम अंक में जब उदयन को खोयी हुई वत्सभूमि तथा वासवदत्ता की पुनः प्राप्ति हो जाती है, उस समय यौगन्धरायण उसके पैरों पर गिर पड़ता है। यह स्वामिभक्ति की पराकाष्ठा है। उस समय वह कहता है कि यह सम्पूर्ण प्रपञ्च उसने इसलिए रचा जिससे कि राज्य विस्तार हो तथा पद्मावती से विवाह सम्पन्न हो। वास्तव में वह एक आदर्श मन्त्री है। संक्षेप में वह चाणक्य का पटु शिष्य है। वह एक ब्राह्मण मन्त्री का यथार्थ प्रतिरूप, युद्धकाल का वीर सेनापति, शान्तिकाल का कुशल शासन प्रबन्धकर्ता तथा आपत्ति के समय राजा को समुचित परामर्श देने वाला सचिव है।

5. विदूषक– संस्कृत नाटकों में विदूषक की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। प्रायः इन नाटकों में वह नायक के मित्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। शास्त्रीय ग्रन्थों में संक्षेप में विदूषक को हास्य रस की सृष्टि करने वाले के रूप में स्वीकार किया गया है– ''हास्यकृत च विदूषकः।'' इस नाटक का विदूषक वसन्तक है। वह उदयन का मित्र है। भास के अन्य नाटकों के विदूषकों की तुलना में वह अधिक गम्भीर है। नाटक में हमारा उसके साथ साक्षात्कार केवल दो अंकों में होता है। इस नाटक में हम देखते हैं कि वह केवल हास्य रस की सृष्टि करने वाला अथवा भोजनभट्ट ही नहीं हैं अपितु वह सदैव अपने मित्र राजा उदयन के साथ रहकर उसके प्रत्येक कार्य में पूर्ण सावधानी के साथ प्रहरी के तुल्य सहायता प्रदान करता है। वह राजा को अपनी सजगता के कारण विषम परिस्थितियों से बचा लेता है तथा एक अच्छे मित्र के समान उसे उचित कार्य करने का परामर्श प्रदान करता है। अनेक अवसरों पर वह अपनी चतुराई तथा प्रत्युत्पन्नमतित्व का परिचय देता है। एक उदाहरण इस सन्दर्भ में यहां प्रस्तुत है। राजा व विदूषक में वसन्तसेना व पद्मावती के सन्दर्भ में वार्तालाप के अन्तर्गत राजा वासवदत्ता की याद आने से रोने लगता है, उसी समय वहां पद्मावती का आगमन होता है। पद्मावती आंसू आने का कारण पूछती है तब वह बड़ी सावधानी एवं बुद्धिमत्ता से पद्मावती को राजा की आंखों में आंसू आने का कारण बताते हुए कहता है– ''भवति! वातनीतेन काशकुसुमरेणुना अक्षिनिपतितेन साश्रुपातं खलु तत्रभवतो मुखम्। तद् गृह्णातु भवतीदं मुखोदकम्'' यह सुनकर पद्मावती भी अपने मन ही मन कहती है– ''अहो! चतुर व्यक्ति का सेवक भी चतुर ही होता है।'' पुनः यही विदूषक राजा को प्रणय – संकट से बचाने का कार्य करता है। वह राजा को स्मरण दिलाकर कि ''आपको मगधेश्वर के साथ स्वागत – समारोह में चलना है। शीघ्र प्रस्थान कीजिये,'' वहां से हटा देता है। अन्य विदूषकों की भांति वह पेटू भी है। पेट पूजा का ध्यान उसे सदैव बना रहता है भले ही अधिक खाने से उदर पीड़ा हो। मगधराज के यहां अधिक खाने से वह बीमार पड़ गया था। उसका ज्ञान बहुत सीमित है। नाटक में वह अपने मित्र उदयन का मन बहलाने के लिए कहानी तो सुनाता है परन्तु उसे यह पता नहीं कि नगर का ब्रह्मदत्त नाम है या व्यक्ति का। वह राजा का अत्यधिक विश्वासपात्र है।

अन्य पात्र– उक्त प्रमुख पात्रों के अलावा एक अन्य अमात्य रूमण्वान् ब्रह्मचारी, वृद्धा तापसी एवं कांचुकीय आदि पात्र भी इस नाटक में हैं। नाटककार ने उनकी भूमिका के

टिप्पणी

अनुरूप उनका चरित्र–चित्रण किया है। रूमण्वान् नामक अमात्य यौगन्धरायण की अनुपस्थिति में अपने स्वामी उदयन की निष्ठापूर्वक देखभाल कर रहा है। ब्रह्मचारी के शब्दों में वह महाराज को प्रकृतिस्थ करने में अत्यधिक प्रयत्नशील है। वह दिन रात प्रयत्नपूर्वक महाराज उदयन की सेवाशुश्रूषा में लगा रहता है। उसकी स्थिति इस प्रकार की है कि राजा यदि प्राण त्याग दे तो उसकी मृत्यु भी तत्काल हो जाए।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि भास की नाट्यकला की सफलता में पात्रों के चरित्र–चित्रण का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। भास ने सभी प्रकार के पात्रों का चित्रण अत्यन्त कुशलता के साथ किया है।

उद्देश्य – किसी भी कृति का निर्माण सोद्देश्य किया जाता है क्योंकि निष्प्रयोजन तो मन्दबुद्धि भी किसी काम में प्रवृत्त नहीं होता है। भास द्वारा 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक की रचना भी उद्देश्यपूर्वक की गई है। उस उद्देश्य में नाटककार को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। राजा उदयन अपनी पत्नी वासवदत्ता के लावण्य में इतना खो गया था कि राज्य तक की भी उसे परवाह नहीं रही। मंत्री यौगन्धरायण की योजना द्वारा राजा को अपने कर्तव्य की ओर उन्मुक्त करना नाटककार का उद्देश्य था जिसमें वह पूर्ण सफल रहा है। साथ ही तत्कालीन संस्कृति का यथार्थ चित्रण करना भी भास का उद्देश्य था। उसमें भी उसे सफलता प्राप्त हुई है। संक्षेप में भारतीय जीवन दर्शन, प्रेम की उदात्त भावनाओं का चित्रण, त्याग एवं तपोवन का चित्रण इस नाटक का उद्देश्य है।

उपसंहार– अंत में हम यह कह सकते हैं कि समीक्षा के मानदण्डों की कसौटी पर यह नाटक पूर्णरूपेण खरा उतरता है न केवल भास की, अपितु समूचे संस्कृत नाट्य साहित्य की यह अमूल्य कृति है।

4.5.4 नाटकीय तत्वों के आधार पर 'स्वप्नवासवदत्तम्' की समीक्षा

किसी भी नाटक, कविता, कहानी या उपन्यास की जब समीक्षा की जाती है तो उसके कुछ निश्चित मानदण्ड निर्धारित होते हैं, उनके आधार पर उस कृति की समीक्षा की जाती है। जहाँ तक नाटक की समीक्षा का प्रश्न है, उसके लिए आचार्यों द्वारा मानदण्ड निर्धारित किये गये हैं। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि अंग्रेजी में जिस अर्थ में ''ड्रामा'' शब्द का प्रयोग होता है, उस अर्थ में संस्कृत साहित्य में ''रूपक'' शब्द का प्रयोग पाया जाता है। वैसे सामान्य तौर पर अधिकांश लोग इसे नाटक कहकर ही पुकारते हैं। किन्तु नाटक रूपकों का एक भेद मात्र है, वह रूपकों के दस प्रकारों में से एक प्रकार है। प्रमुख रूप से वस्तु, नेता तथा रस के आधार पर रूपक के दस भेद किये गये हैं – ''वस्तु नेता रसस्तेशां भेदकः'' (दशरूपक) इस प्रकार किसी एक रूपक की कथावस्तु, उसके नायक नायिका की प्रकृति तथा उसका प्रतिपाद्य रस उसे अन्य प्रकारों से भिन्न करता है। अतः उस रूपक की समीक्षा के मूल आधार पर हम कथावस्तु, नेता या पात्र योजना तथा रस योजना को मान सकते हैं। इनके अतिरिक्त उसकी भाषा–शैली, देशकाल एवं वातावरण, अभिनेयता एवं उद्देश्य भी समीक्षकों द्वारा समीक्षा के मूल आधार माने गये हैं। उक्त तत्वों के आधार पर ''स्वप्नवासवदत्तम्'' नाटक की कथावस्तु का विवेचन संक्षेप में हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं–

टिप्पणी

भास विरचित इस प्रसिद्ध नाटक ''स्वप्नवासवदत्तम्'' की कथावस्तु लोककथाश्रित है। भास ने अपनी प्रतिभा एवं कल्पना शक्ति के आधार पर उसे विस्तार प्रदान किया है तथा छः अंकों में उसे प्रस्तुत किया है। 'नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः' के साथ नाटक का शुभारंभ किया गया है। हम देखते हैं कि भास विरचित सभी नाटकों का प्रारंभ इसी प्रकार हुआ है। उसमें महाकवि भास ने ''मंगलादीनि मंगलमध्यानि मंगलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते'' आचार्यों की इस प्राचीन परम्परा का निर्वाह किया है। नाटककार ने 'सूचयेद्वस्तुबीजं वा मुखं पात्रमथापि वा' नाट्यशास्त्र की इस परम्परा के अनुसार प्रथम पद्य में नाटक के चार प्रमुख पात्रों क्रमशः उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती एवं विदूषक वसन्तक के नामों को उपन्यस्त किया गया है। शास्त्रीय विधानानुसार नान्दी के बाद आमुख या प्रस्तावना का विधान है। तद्नुकूल ही स्वप्नवासवदत्तम् में भी नाटककार ने 'स्थापना' रखी है। यहां पर यह उल्लेखनीय है कि नाटककार भास के प्रायः सभी नाटकों में 'स्थापना' शब्द का प्रयोग किया गया है। भासोत्तरकालीन नाट्यकृतियों में 'प्रस्तावना' तथा 'आमुख' शब्दों के प्रयोग दिखाई देते हैं। प्रस्तावना, आमुख आदि का लक्षण लक्षण–ग्रंथों में पृथक्–पृथक् प्राप्त होता है। इनके भेद भी वहाँ प्रदर्शित किए गए हैं, जहाँ तक इस नाटक की प्रस्तावना का संबंध है, यह 'प्रयोगातिशय' नामक प्रस्तावना है। प्रस्तावना अथवा स्थापना का विधान नाटक में इस दृष्टि से रखा गया है कि उसके द्वारा सामाजिकों के ध्यान को अन्य दृष्टियों से हटाकर उनकी रुचि एवं ध्यान को एक ओर केवल नाटक के प्रति आकर्षित किया जाए। प्रस्तावना के द्वारा दर्शकों को नाटक के रचयिता व कृति के विषय में संक्षिप्त परिचय प्रदान कर दिया जाता है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' की प्रस्तावना में यद्यपि लेखक का परिचय तो नहीं कराया गया है परन्तु मगधराज की कन्या पद्मावती जो कि नाटक की एक प्रमुख पात्र है उसके विषय में सूचित किया गया है। नाट्यविधानानुसार प्रस्तावना के बाद नाटक का प्रारंभ होता है। सूत्रधार मगधराज की कन्या पद्मावती तथा उसके पीछे चलने वाले सेवकों को रंगमंच पर प्रस्तुत कर चला जाता है। इसके बाद दो सिपाही प्रवेश करते हैं तथा लोगों को हटाने का निर्देश देते हैं। इसी के साथ नाटक का शुभारंभ होता है। एक श्रेष्ठ नाटक के लिए 6 या 7 अंक होना आवश्यक बतलाया है। उस दृष्टि से 'स्वप्नवासवदत्तम्' छः अंकों का नाटक है। नाटककार ने कथावस्तु को छः अंकों में विभाजित कर घटना संयोजन में असाधारण कुशलता प्रदर्शित की है। घटनाओं का संयोजन इस प्रकार किया गया है कि उनमें पूर्णरूप से स्वाभाविकता ज्ञात होती है। प्रत्येक घटना सार्थक है। प्रत्येक घटना सार्थक होने के कारण कथानक के विकास में पूर्ण योग देती है। सम्पूर्ण नाटक की प्रत्येक घटना बहुत विचारपूर्वक यथास्थान रखी गई है। इसके परिणामस्वरूप नाटक की गति स्वाभाविक तथा अविच्छिन्न रहती है।

जहाँ तक कथावस्तु में अर्थ, प्रकृति, अवस्थाओं एवं संधियों में विनियोग का संबंध है नाटककार भास 'स्वप्नवासवदत्तम्' में इस दृष्टि से पूर्ण सफल कहे जा सकते हैं। कथानक का प्रारंभ, उसका मध्य एवं अंत सभी आकर्षक हैं। राजा उदयन एवं वासवदत्ता के प्रणय की कथा आधिकारिक है। महाकवि भास ने दोनों के प्रेम, यौगन्धरायण व रूमण्वान् की स्वामीभक्ति, विदूषक की मैत्री, पद्मावती व वासवदत्ता की विशालहृदयता का सुंदर चित्रण किया है। नायक उदयन का कलाप्रेम यदि एक ओर सहृदय हृदय

का आवर्जन करता है तो दूसरी ओर नीतिज्ञ यौगन्धरायण का बुद्धिविलास मस्तिष्क को चमत्कृत कर देता है। अंत में उदयन एवं वासवदत्ता का नाटकीय ढंग से मिलन अत्यन्त सुंदर बन पड़ा है।

टिप्पणी

नाटक का नामकरण राजा के द्वारा स्वप्न में 'वासवदत्ता' के दर्शन पर आधारित है। स्वप्न वाला दृश्य संस्कृत नाट्य साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है। पंचम अंक की यह घटना बड़ी ही सरस तथा हृदयावर्जक है। भास की कल्पना ने पद्मावती की शीर्षवेदना के व्याज से उद्यन तथा वासवदत्ता को एकत्र संघटित कर दिया है। कुछ लोग इस नाटक के नामकरण के विषय में कहते हैं कि इसका नाम 'पद्मावती परिणय' या 'उदयनोदय' होना चाहिए। परन्तु, जो सरसता और कल्पना का प्रसाद स्वप्न दृश्य में है वह इस नाटक की आत्मा है तथा उस आधार पर यह नामकरण सर्वथा यथार्थ एवं समुचित है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि 'स्वप्नवासवदत्तम्' का संविधानक सुलझा हुआ, रुचिकर एवं अन्तःसूत्र से अनुस्यूत है। प्रारंभ से अन्त तक पाठक व दर्शक को बांधे रखता है उनका औत्सुक्य उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता रहता है।

'नेता' (पात्र)– वस्तु के पश्चात् 'नेता' नाटक का द्वितीय महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। 'नेता' से तात्पर्य चरित्र–चित्रण से है। इस दृष्टि से भी स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक श्रेष्ठ कहा जायेगा। भास ने अपने इस नाटक में प्रायः सभी पात्रों के साथ समान व्यवहार किया है। इसमें उदयन, विदूषक वसन्तक, यौगन्धरायण एवं रूमण्वान् ये प्रमुख पुरुष पात्र तथा वासवदत्ता, पद्मावती, वृद्धा तापसी एवं धात्री ये स्त्री पात्र महत्त्वपूर्ण हैं। कालिदास के समान ही भास का चरित्र–चित्रण यद्यपि आदर्शोन्मुख है तथापि वह सर्वथा स्वाभाविक एवं सजीव है। नाटक के सभी पात्र इस लोक के ही पात्र हैं और उनका स्वाभाविक एवं यथार्थ चित्रण किया गया है।

रस–योजना– भारतीय नाट्य–समीक्षा के अनुसार 'रस' रूपक का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। दृश्य काव्य के तीन भेदक तत्त्वों में एक 'रस' भी है। वैसे तो कथा, आख्यायिका व महाकाव्य आदि सभी में रसास्वाद होता है परन्तु इसकी व्यंजना करना सामाजिकों के हृदय में रसोद्रेक उत्पन्न करना दृश्य काव्य का प्रमुख लक्ष्य है। रस क्या है? इस विषय में यहां हम इतना ही कहना चाहेंगे कि विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से सहृदयों को जो एक अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है, वही रस है तथा इस रस की प्रतीति करना या कराना रूपकों का मुख्य प्रयोजन है क्योंकि रस भेदक तत्व है, अतः विविध रूपकों में भिन्न–भिन्न प्रकार के रसों की प्रधानता और गौणता होती है। जहां तक प्रस्तुत रूपक का संबंध है यह 'नाटक' उच्च कोटि का है। अतः इसमें नाट्यशास्त्र के नियमानुसार श्रृंगार अथवा वीर रस प्रधान होता है तथा अन्य रस उसके अंग के रूप में विद्यमान रहते हैं। इस नाटक का प्रधान रस श्रृंगार है। वासवदत्ता एवं उदयन की दृष्टि से विप्रलंभ श्रृंगार का ही प्राधान्य है, इसमें श्रृंगार की अनेकानेक परिस्थितियां मर्मस्पर्शी बनकर आती हैं, क्या संचारी भाव, क्या विभाव, क्या अनुभाव सभी बिना प्रयत्न के पात्रों की नाट्यकला में अवतरित हुए हैं। भास की रसाभिव्यक्ति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि शब्दावली स्वाभाविक और सरल है, उसमें आडम्बर और कृत्रिमता नहीं है। श्रृंगार के अलावा हास्य रस का भी इसमें वर्णन प्राप्त होता है।

पद्मावती तथा वासवदत्ता के विनोद में शिष्ट हास्य दृष्टिगत होता है। विदूषक के वचनों से भी हास्य की उद्भावना होती है। नाटक के चतुर्थ अंक के प्रारंभ में विदूषक के कथन से हास्य रस की सुंदर उद्भावना होती है। इसी प्रकार पंचम अंक में भी राजा एवं विदूषक के वार्तालाप में सुमधुर हास्य रस की सृष्टि कवि द्वारा की गई है।

टिप्पणी

भाषा–शैली– किसी भी कवि या नाटककार का मूल्यांकन करने की महत्वपूर्ण कसौटी यदि कोई है तो वह उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा व शैली है जिसका कि उसने अपनी कृति में प्रयोग किया है। दृश्य या श्रव्य काव्य की कथावस्तु की सामग्री से हम उसके रचयिता का मूल्यांकन उतना नही कर सकते हैं जितना की भाषा शैली से। भाषा व शैली ही उसकी स्वयं की होती है जिसके माध्यम से वह अपने स्वयं व अन्य स्थानों तथा विभिन्न स्त्रोतों से ग्रहण किये गये भावों व विचारों को अपनी कृति में प्रकट करता है। कथानक कभी भी पूर्णरूप से आविष्कृत नहीं हो सकता। एक ही कथानक को अनेक रूपों में भाषा व शैली के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है। इस प्रकार एक काव्य में भाषा व शैली का महत्त्वपूर्ण स्थान है। काव्यों में भी मूलतः दृश्य काव्य में भाषा व शैली महत्त्वपूर्ण तत्व है, क्योंकि नाटक अथवा एकांकी प्रत्यक्ष दर्शन का साहित्य है, अतः उसकी भाषा व शैली सरल तथा सुबोध होनी चाहिए। वही नाटक दर्शकों को प्रभावित व आह्लादित कर सकता है जिसकी भाषा सहज बोधगम्य हो। सहज बोधगम्य होने के साथ–साथ भाषा का पात्रानुकूल होना भी आवश्यक है। एक बच्चा न तो प्रौढ भाषा बोले और न एक अशिक्षित साहित्यिक भाषा अथवा विदेशी भाषा। भाषा का महत्त्व इस दृष्टि से भी है कि भाषा के माध्यम से पात्रों का चरित्र–चित्रण होता है, क्योंकि बोलचाल से ही किसी का व्यक्तित्व आंका जा सकता है। अतः भाषा ऐसी होनी चाहिए जो कि प्रथम सहज बोधगम्य हो अर्थात् प्रसाद गुण से युक्त हो, द्वितीय पात्रानुकूल व परिस्थतियों के अनुकूल हो। अधिक आलंकारिक चमत्कारयुक्त भाषा में लिखित नाटक कभी भी दर्शकों को प्रभावित नहीं कर सकता। भाषा व शैली की कसौटी पर भास विरचित 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक एक खरा व अनुपम नाटक है। इसकी भाषा अत्यन्त सरल एवं प्रसादगुण युक्त है। भाषा में स्वाभाविक प्रवाह है, जैसे वास्तविक जीवन में बोली जा रही है। कवि ने समास प्रधान भाषा का अधिक प्रयोग नहीं किया है। इस नाटक में भास की भाषा शैली पात्रों के भावों और विचारों के अनुकूल है। सूक्तिपूर्ण वाक्यों के प्रयोग से भाषा–शैली को सशक्त बनाया है। शास्त्रीय दृष्टि से इनकी शैली में माधुर्य, ओज और प्रसाद इन तीनों गुणों का समावेश पाया जाता है। इनकी शैली के संदर्भ में श्री रामजी मिश्र का निम्न कथन उल्लेखनीय है–

''शैली की सारी विशेषताओं से विशिष्ट भास कवि की अभिव्यंजना बड़ी ही प्रभावोत्पादक है। प्रसाद और ओज के साथ–साथ माधुर्य की संयोजना सहृदयों को मुग्ध कर देती है। पूरे के पूरे नाटक पर जाइए– कहीं भी दूरारू कल्पना, समास बहुलता का प्रवाह में अवरोध नहीं मिलेगा। इसे कुछ विद्वानों ने रामायण का प्रभाव माना है। इनकी शैली अंलकारों पर नहीं भावनाओं के निखार पर गर्व करती है, जिससे कृत्रिमता की जगह स्वाभाविकता आ गई है। सरलता से समझ में आने वाले उन अलंकारों का प्रयोग भास ने किया है जिनसे वस्तु–चित्र और भी स्पष्ट हो गये हैं। भाषा–शैली में जैसी सफलता इन्हें मिली इनके पूर्ववर्ती किसी भी कवि को नहीं मिली।'' भास के इस नाटक में एक विचित्र अनूठापन है। लघुविस्तारी वाक्यों में जितना सरल पद न्यास प्रभावित करता है

उतने ही भाव भी रसाप्लावित करते हैं। मानव हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावदशाओं का चित्रण इस नाटक में सर्वत्र देखा जा सकता है। भास की भाषा–शैली को संक्षेप में निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर प्रस्तुत किया जा सकता है–

टिप्पणी

1. सरल व सरस भाषा, 2. प्रभावपूर्ण भाषा, 3. अद्भुत वाक्य संघटना, 4. पात्रानुकूल भाषा, 5. व्यंजकता एवं प्रभावोत्पादकता का समन्वय, 6. वाग्विस्तार का परिहार, 7. प्रसाद, ओज एवं माधुर्य का अद्भुत समन्वय, 8. सशक्त शैली का प्रयोग, 9. नाटक व काव्यत्व का संतुलन।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि भास सरल पद्धति के जनक हैं। इनके नाटक सामान्य संस्कृत ज्ञाताओं के लिए भी सहज सुबोध हैं।

देशकाल एवं वातावरण– देशकाल एवं वातावरण की दृष्टि से भी 'स्वप्नवासवदत्तम्' एक सफल नाटक है। कथानक के अनुसार तपोवन का सुन्दर वातावरण, संध्याकालीन शोभा का सजीव वर्णन, वासवदत्ता के वियोग में विरह पीड़ित उदयन की दशा का सजीव चित्रण, वासवदत्ता की मनोदशा का चित्रण, प्रकृति का सजीव वर्णन सभी बहुत सुन्दर हैं।

अभिनेयता– नाटक का एक अन्य महत्त्वपूर्ण तत्त्व अभिनेयता है क्योंकि नाटक दृश्य काव्य है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक इस कसौटी पर भी पूर्ण खरा उतरता है। देश एवं विदेश में यह नाटक अनेक बार रंगमंच पर प्रस्तुत किया जा चुका है। इसका कारण यह है कि इसमें न तो कहीं वर्णन की अधिकता है और न कहीं कथावस्तु का ही अनावश्यक विस्तार है। यह नाटकीय दृष्टि से चुस्त, व्यवस्थित एवं सुसंगठित है। पात्रों के संवाद भी विस्तृत नहीं हैं। प्रत्येक पात्र अपना मन्तव्य थोड़े शब्दों में व्यक्त करना ही पसन्द करता है। इन संक्षिप्त एवं सारगर्भित कथनों में वे ऐसी सूक्तियों का भी प्रयोग कर डालते हैं जो आज तक अमर हैं। सच बात तो यह है कि महाकवि भास संवाद तत्व के विशेष मर्मज्ञ हैं। उनमें यत्र–तत्र शिष्ट हास्य एवं व्यंग्य का भी पुट मिलता है जिससे दर्शकों का मन कभी ऊबने नहीं पाता।

अपनी प्रगति जांचिए

5. जमातुः स्नानं कुत्र भवति स्म?

(क) रजतभूम्याम् (ख) स्वर्णभूम्यां

(ग) हीरकभूम्याम् (घ) मणिभूम्याम्

6. वासवदत्ता किन्नाम्नः औषधस्य गुम्फनं परिहरित?

(क) अविधवाकरणम् (ख) शत्रुफ्जयम्

(ग) सपत्नीमर्दनम् (घ) मित्रघ्नम्

4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ग)
3. (ख)

4. (ख)
5. (घ)
6. (घ)

टिप्पणी

4.7 सारांश

पुस्तक की इस इकाई के अंतर्गत आपने 'स्वप्नवासवदत्तम्' क्रमशः तीन अंकों के कथावस्तु को संवादों व तदन्तर्वर्ति श्लोकों के माध्यम से जाना। प्रथमाङ्क के आदि में तपोवन के शांत वातावरण को प्रथमतः विध्वस्त होते हुए प्रदर्शित किया गया है तथा काञ्चुकीय के सभ्य व्यवहार से अपेक्षित शांत वातावरण की पुनः स्थापना होती है।

इसी शांत वातावरण में उदयन के अमात्य प्रमुख यौगन्धरायण को एक ऐसा स्वर्णिम अवसर प्राप्त होता है जिससे उसकी योजना में साफल्य की अभूतपूर्व संभावना उत्पन्न हो जाती है। इस स्वर्णिम अवसर का भरपूर उपयोग करते हुए वह प्रच्छन्न महारानी वासवदत्ता को उदयन की भाविनी वधू पद्मावती के पास न्यास रूप में स्थापित करने में सफल हो जाता है।

नाटक के द्वितीय अंक में पद्मावती और उदयन की विवाह संबंध की सूचना प्राप्त होती है तथा तृतीय अंक में अवन्तिका अर्थात् प्रच्छन्न महारानी वासवदत्ता के सामने एक ऐसी विडम्बना उपस्थित होती है जिसके अंतर्गत उसे अपनी ही सपत्नी के विवाहोत्सव के लिए वरमाला गुम्फन का निर्देश प्राप्त होता है। अपने मनोभावों को नियन्त्रित करते हुए वह किस प्रकार उस माला का गुम्फन करती है, यह समग्र घटनाक्रम आपने इस अंक के माध्यम से इस इकाई में जान लिया।

4.8 मुख्य शब्दावली

- **त्रास** – भय।
- **ग्रामीकरोति** – गांव जैसे बन रहा है।
- **चक्रारपङ्क्तिः** – पहिए के अर्शे का घेरा।
- **परुषम्** – कठोर।
- **स्वता** – अपनापन।
- **समीप्सितम्** – चाहा गया, अभीष्ट।
- **न्यास** – धरोहर।
- **विस्रब्धम्** – विश्वासयुक्त रूप से।
- **उपरमः** – मरण।
- **उपसर्पामि** – समीप जाती/जाता हूं।
- **बलपरिमाणम्** – सेना का आकार।
- **अविधवाभिः** – सुहागिन और अविवाहित कन्याओं के द्वारा।

टिप्पणी

4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. महाकवि भास के अन्य नाटकों के नाम बताइये।
2. वासवदत्ता की चारित्रिक विशेषताएं बताइये।
3. यौगन्धरायण का चरित्रचित्रण कीजिये।
4. पद्मावती का चरित्रचित्रण कीजिये।
5. भास की शैली का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. स्वप्नवासवदत्तम् नाटक की नाट्यशास्त्रीय विवेचना कीजिये।
2. स्वप्नवासवदत्तम् के आधार पर भास की नाट्यकला का एक संक्षिप्त निबंध लिखिए।
3. स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के प्रथम अंक की व्याख्या लिखिए।
4. स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के द्वितीय अंक की व्याख्या लिखिए।
5. स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के तृतीय अंक की व्याख्या लिखिए।

4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. स्वप्नवासवदत्तम्, डॉ. वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा–2
2. स्वप्नवासवदत्तम् व्याख्या, डॉ. जगन्नारायण पाण्डेय, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर।
3. भासकृत स्वप्नवासवदत्तम्, व्याख्याकार– डॉ. रूपनारायण त्रिपाठी, हंसा प्रकाशन, जयपुर।
4. स्वप्नवासवदत्तम्, व्याख्याकार– प्रो. सुभाष वेदालंकार, अलंकार प्रकाशन, जयपुर
5. स्वप्नवासवदत्तम्, डॉ. रामदेव साहू, श्याम प्रकाशन जयपुर।
6. स्वप्नवासवदत्तम्, व्याख्याकार– श्रीकृष्ण ओझा, अभिषेक प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर।
7. भासनाटकचक्र, रामजी उपाध्याय।
8. स्वप्नवासवदत्तम्, तारणीश झा।
9. स्वप्नवासवदत्तम्, जयपाल विद्यालंकार।
10. स्वप्नवासवदत्तम्, जगदीश प्रसाद पाण्डे।
11. भास नाटकचक्र, संस्कृत हिन्दी व्याख्या, सुधाकर मालवीय।
12. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पाण्डे एवं व्यास।
13. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय।
14. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी।
15. कवि दर्शन, भोलाशंकर व्यास।

इकाई 5 बृहत्त्रयी एवं लघुत्रयी का सामान्य परिचय

टिप्पणी

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 बृहत्त्रयी एवं लघुत्रयी का सामान्य परिचय
5.3 बृहत्त्रयी विमर्श
5.4 लघुत्रयी विमर्श
5.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.6 सारांश
5.5 मुख्य शब्दावली
5.6 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.7 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

पुस्तक के इस इकाई में संस्कृत साहित्य के त्रयीद्वय पर विचार विमर्श किया गया है। इनमें से प्रथम बृहत्त्रयी। किरातार्जुनयीम्, शिशुपालवधम् और नैषधीयचरितम्– बृहत्त्रयी में सम्मिलित इन तीन रचनाओं के प्रदाता तीन महाकवि क्रमशः भारवि, माघ और श्रीहर्ष हैं जबकि लघुत्रयी में सम्मिलित 'मेघदूतम्–रघुवंशम्–कुमारसम्भवम्' इन तीनों के रचयिता एकमात्र महाकवि कालिदास हैं। क्यों प्रथम तीन महाकाव्य बृहत्त्रयी कहे गए और क्यों कालिदास के रचना लाघव से प्रस्तुत उल्लिखित तीन महाकाव्य लघुत्रयी कहे जाते हैं, इस प्रश्न द्वय के विभिन्न उत्तरों पर इस इकाई में यथा प्रसंग विचार हुआ है। इसके अतिरिक्त इन सभी छह काव्यों के कथानक, रचनाकारों, रचनाशैली और काव्य लक्षणादि के संदर्भ का भी परिशीलन किया गया है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- बृहत्त्रयी के अंतर्गत आने वाले और लघुत्रयी के आने वाली तीन–तीन महाकाव्यों के नामों को जान लेंगे;
- त्रयीद्वय के अंतर्गत आने वाले छह महाकाव्यों के कवियों के परिचय प्राप्त करेंगे;
- छहों महाकाव्यों की कथावस्तु से परिचित होंगे;
- साथ ही महाकाव्यों के लक्षण आदि अन्य संबद्ध विषयों को भी भली–भांति जान लेंगे।

5.2 बृहत्त्रयी एवं लघुत्रयी का सामान्य परिचय

संस्कृत के छह प्रसिद्ध महाकाव्य हैं– बृहत्त्रयी और लघुत्रयी। किरातार्जनुयीयम (भारवि), शिशुपालवधम् (माघ) और नैषधीयचरितम् (श्रीहर्ष) बृहत्त्रयी कहलाते हैं।

कुमारसम्भवम, रघुवंशम् और मेघदूतम् (तीनों कालिदास द्वारा रचित) – लघुत्रयी कहलाते हैं।

वृहत्त्रयी– किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम्, नैषधीयचरितम्।

लघुत्रयी– रघुवंशमहाकाव्यम्, कुमारसंभवम्, मेघदूतम्।

टिप्पणी

बृहत्त्रयी का सामान्य परिचय

तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः।।

भारवि, माघ और श्रीहर्ष संस्कृत के उन महाकवियों में प्रतिष्ठित हैं जिनके काव्यों ने विद्ववर्ग को सदियों से मुग्ध किया है। विचित्र मार्ग के इन कवियों द्वारा प्रणीत किरातार्जुनीय, शिशुपालवध एवं नैषधीयचरित को विद्वानों ने 'बृहत्त्रयी' यह प्रशंसात्मक अभिधान प्रदान किया है। इन तीनों महाकाव्यों के लिए 'बृहत्त्रयी' शब्द का प्रयोग कब किया, यह ज्ञात नहीं हो सका है।

संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास को अत्युच्च स्थान प्राप्त है, फिर उनके काव्यों को 'बृहत्त्रयी' के अन्तर्गत क्यों नहीं रखा गया? कालिदास के कुमारसम्भव, रघुवंश और मेघदूत का अन्तर्भाव 'लघुत्रयी' में क्यों किया जाता है? इसके उत्तर में ऐसा प्रतीत होता है कि जब श्रीहर्ष के नैषधीयचरित की रचना हो चुकी थी, तब ये 'लघुत्रयी' तथा 'बृहत्त्रयी' शब्द प्रकाश में आये। तत्कालीन विद्वत्समाज ने कालिदास को सम्मान देने के लिए उनके तीन काव्यों को 'लघुत्रयी' यह नाम दिया। यहाँ 'त्रयी' शब्द का अर्थ है– तीन काव्य। लघु शब्द सम्भवतः उन काव्यों के कलेवर की दृष्टि से प्रयुक्त किया गया। यह वह समय था, जब विद्वत्समाज को कुन्तकनिर्दिष्ट विचित्रमार्ग के अनुसार कवियों द्वारा रचित 'किरातार्जुनीय' आदि काव्य कालिदास प्रभृति सुकुमार मार्ग के कवियों के काव्य से अधिक आनन्ददायक प्रतीत होते थे। तभी उन्होंने कालिदास के महत्त्व को तो समझा लेकिन उनके काव्यों के लिए 'लघुत्रयी' शब्द का प्रयोग किया और विचित्र मार्ग की परम्परा के आधार पर रचित किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषधीयचरित को 'बृहत्त्रयी' में स्थान दिया। इन तीनों काव्यों के लिए 'बृहत्' शब्द का प्रयोग उनकी काव्य–सम्पत्ति तथा उनकी कलेवर–सम्पत्ति दोनों को ही दृष्टि में रखकर किया गया है। जिस समय नैषधीयचरित की रचना हुई होगी, उस समय तक विचित्र मार्ग विद्वत्समाज में विशेष स्थान प्राप्त कर चुका था। इस प्रकार के काव्यों की रचना में कविगण अपना गौरव समझते थे। किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषधीयचरित में उन्हें विचित्र मार्ग के वे सभी गुण प्राप्त हो गये जो उन्हें काव्य–रसामृत सागर में आप्लावित करने में पूर्ण समर्थ थे।

अब प्रश्न उठता है कि इन तीनों काव्यों में किरातार्जुनीय का कलेवर तो बहुत छोटा है, फिर उसे किस प्रकार 'बृहत्त्रयी' में समाविष्ट किया गया? कारण यह है कि इस विचित्र मार्ग की परम्परा को अपनाकर काव्य–रचना करने वाले भारवि सर्वप्रथम कवि हैं। उन्हीं के अनुकरण पर माघ ने शिशुपालवध रचा और इन दोनों काव्यों को लक्ष्य में रखकर उनसे भी आगे बढ़ जाने वाले कवि हुए श्रीहर्ष, जिनके काव्य में विचित्र–मार्ग के काव्य के गुण अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार इन तीनों काव्यों के लिए 'बृहत्त्रयी' शब्द का प्रयोग किया है, वह पूर्णतः सार्थक है। विचित्र मार्ग की परम्परा पर अन्य भी अनेक महाकाव्य लिखे गये, किन्तु किरातार्जुनीय, शिशुपालवध

टिप्पणी

और नैषधीयचरित की समता करने का सामर्थ्य उनमें नहीं है। बृहत्त्रयी के काव्यों के प्रति सहृदयों का अनुराग बहुत प्राचीन समय से ही चला आ रहा है। इन तीनों ही काव्यों की कथावस्तु महाभारत से गृहीत है। 'लघुत्रयी' और 'बृहत्त्रयी' में कुछ विशेष अन्तर इस प्रकार है – 'लघुत्रयी' में एक ही कवि के तीन काव्यों का अन्तर्भाव है, जबकि 'बृहत्त्रयी' में तीन भिन्न कवियों के तीन काव्यों का समावेश है। 'लघुत्रयी' में दो महाकाव्यों (कुमारसम्भव एवं रघुवंश) तथा एक खण्ड–काव्य 'मेघदूत' का अन्तर्भाव है, जबकि 'बृहत्त्रयी' में सन्निविष्ट तीनों काव्य महाकाव्य–श्रेणी में आते हैं। 'लघुत्रयी' के तीनों काव्य सुकुमार मार्ग तथा 'बृहत्त्रयी' के तीनों काव्य विचित्र मार्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार कालिदास के उन तीन काव्यों तथा भारवि, माघ और श्रीहर्ष के काव्यों को विशेष सम्मान एवं गौरव प्रदान करने के लिए ही विद्वानों ने उन्हें 'लघुत्रयी' और 'बृहत्त्रयी' इन नामों से विभूषित किया। कालिदास के दोनों महाकाव्यों तथा 'बृहत्त्रयी' के तीनों महाकाव्यों को 'पञ्च–महाकाव्य' इस नाम से भी जाना जाता है जो इन पाँचों महाकाव्यों की लोकप्रियता का परिचायक है। इन पाँच काव्यों का सुकुमार मार्ग एवं विचित्र मार्ग की दृष्टि से विभाजन ही 'लघुत्रयी' और 'बृहत्त्रयी' इन शब्दों को प्रकाश में लाया है। इन पाँच काव्यों का सम–विभाजन तब तक सम्भव नहीं था जब तक उनमें एक काव्य को ओर न जोड़ा जाता। इसलिए उनमें मेघदूत का भी अन्तर्भाव किया गया और फिर कालिदास रचित काव्यों को 'लघुत्रयी' तथा अन्य अवशिष्ट काव्यों को 'बृहत्त्रयी' यह प्रशंसापरक अभिधान प्रदान किया गया है।

5.3 बृहत्त्रयी विमर्श

संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का प्रधान वाहन रहा है। उत्तम काव्य के माध्यम से ही कवि विश्व में चिरस्थायी बनता है। 'भामह' ऐसे प्रथम आचार्य हैं, जिन्होंने पूर्णतया स्पष्ट रूप से शब्द और अर्थ के सहित भाव को 'काव्य' माना है। "साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने संस्कृत काव्य के मुख्यतः दो भेद माने हैं–दृश्य एवं श्रव्यकाव्य।

दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।

दृश्यकाव्य– दृश्यकाव्य अभिनीत अभिनयों से आनन्दानुभूति कराते हैं।

श्रव्यकाव्य– जो काव्य मात्र सुनाया जा सके वह श्रव्यकाव्य है, यह दो भेद वाला होता है–गद्यकाव्य एवं पद्यकाव्य।

गद्यकाव्य– 'विश्वनाथ' ने साहित्य दर्पण में इसका लक्षण दिया है–'वृत्तंगन्धोज्झितं गद्यं अर्थात् छन्द के अंश से रहित काव्य गद्यकाव्य है।

पद्यकाव्य– छन्दों से रचित पद वाले, चार चरणों से युक्त मुक्तक काव्यरचना पद्य है।

पद्य भी पुनः दो प्रकार का होता है–अनिबद्ध और निबद्ध। अनिबद्ध में मुक्तक काव्य तो निबद्ध में प्रबन्ध काव्य, महाकाव्यादि दो भेद दृष्टिगत होते हैं।'

महाकाव्य शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ एवं परिभाषा

पद्यबद्ध रचनाओं में सर्वोपरि स्थान महाकाव्य का होता है। 'महा' शब्द दीर्घता का एवं 'काव्य' शब्द लयबद्धता का द्योतक है। महाकाव्य वह रचना है, जो विशालता के साथ–साथ संगीतमय पदों से युक्त होती है।

'शब्दकल्पद्रुम' में महाकाव्य की व्युत्पत्ति देते हुए कहा गया है।

टिप्पणी

संस्कृत आचार्यों द्वारा निर्धारित महाकाव्य लक्षण

महाकाव्य की परिभाषा लिखने वाले आचार्यों में 'भामह' का नाम सर्वप्रथम आता है। उनका कथन है–"सर्ग बन्ध रचना महाकाव्य है।" यह महान् व्यक्तियों के विषय में लिखा जाता है। शब्द और अर्थ नागरिकों के स्तर के होते हैं। रचना अलंकारमयी होती है। मंत्र, दूत, प्रयाण, युद्ध और नायक का अभ्युदय–इन पाँच सन्धियों से यह समन्वित होता है। 'आचार्य दण्डी' ने महाकाव्य की जो परिभाषा दी है, वह भामह द्वारा निर्देशित सभी तत्त्वों को समझने के पश्चात् दी है, जिसमें कुछ आवश्यक और विस्तृत तत्त्वों को जोड़ दिया गया है।

आधुनिक युग में 'बिधुशेखर भट्टाचार्य' ने काव्य विकास को गति दी, उन्होंने 'उमापरिणय' नामक काव्य लिखा। 20वीं शती तक आते–आते काव्य प्रवाह पूर्ण चरम पर स्थित हो गया। 'रुक्मिणीहरणम'– 'काशीनाथशर्मा', 'अहल्याचरितमहाकाव्यम्'– 'सखारामशास्त्री', 'पारिजातहरणम'– 'उमापतिशर्मा' इत्यादि संस्कृत के नई सदी के काव्य हैं।' उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है, महाकाव्य का विकास समय के प्रवाह में प्रवाहित होकर सदैव गतिशील रहा है।

इस प्रकार कहा जा सकता है, महाकाव्य विधा का आरम्भ में उज्ज्वल स्वरूप था। भाषा की कठिनता के कारण जब वेदों, उपनिषदों और ब्राह्मण साहित्य की भाषा जन सामान्य की पहुँच से दूर हो गयी, तब कविता ने नये रूप को ग्रहण कर जनमानस को 'महाकाव्य' आलोक से प्रकाशित किया। इस प्रकार महाकाव्य को सर्वोच्च आसन पर बिठाया गया। इससे स्पष्ट है कि महाकाव्य के उद्‌भव की नित्यता और अनन्तता के साथ–साथ उसके विकास की धारा भी अनादि और अनन्त है।

महाकाव्यों की परम्परा में बृहत्त्रयी

संस्कृत के विशाल महाकाव्य–इतिहास में कालिदासोत्तर–परम्परा के प्रतिनिधि तीन महाकाव्यों को काव्यरसिक पण्डितमण्डली में 'बृहत्त्रयी' कहकर सम्बोधित किया है। बृहत्त्रयी शब्द 'बृहत्' और 'त्रयी' इन दो शब्दों से बना है, जिसका अर्थ है–''तीन विशालतम ग्रन्थों का समूह।'' बृहत्–काव्य सम्पत्ति तथा कलेवर सम्पत्ति, त्रयी = तीन काव्य।' बृहत्त्रयी के अंन्तर्गत संस्कृत के तीन महाकाव्य आते हैं–भारविकृत 'किरातार्जुनीयम्', माघविरचित 'शिशुपालवधम्' तथा श्रीहर्षप्रणीत 'नैषधीयचरितम्'। तीनों महाकाव्यों ने काव्य गङ्गा को निरन्तर प्रगतिशील धारा प्रदान की है। सहज–संवेदनाओं और भावों से ओत–प्रोत ये महाकाव्य की उच्च कोटि की श्रेणी में रखे गये हैं। कालिदास, अश्वघोष, कुमारदास, क्षेमेन्द्र आदि महाकवियों के काव्य को उतना समादर प्राप्त नहीं हुआ, जितना कि भारवि, माघ, श्रीहर्ष ने प्राप्त किया। इसका प्रमुख कारण है कि भारवि, माघ और श्रीहर्ष विचित्र–मार्ग के महाकवि रहे हैं। 'विचित्र–मार्ग' का लक्षण देते हुए 'कुन्तक' ने माना है–जहाँ किसी कमनीय वैचित्र्य से परिपोषित और सरल अभिप्राय वाले पदार्थों का स्वभाव वर्णन किया जाता है, वह विचित्र मार्ग है।'

टिप्पणी

बृहत्त्रयी' की प्रसिद्धि का कारण बताते हुए 'बलदेव उपाध्याय' का मत है कि साहित्यिक भाषा में इस 'बृहत्त्रयी' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किसने किया–यह तो ज्ञात नहीं किन्तु इससे सहृदयों की उस परिवर्तित मनोभूमि का परिचय प्राप्त होता है, जहाँ रस और भाव के सहज–स्वभाविक मार्ग से पृथक् एक नई विचित्र शैली, अलंकृत भाषा को कवियों ने महत्त्व प्रदान किया। बृहत्त्रयी के इन तीन महाकाव्यों ने संस्कृत साहित्य जगत् में इतनी प्रसिद्धि पायी, कि आज भी ये विश्व वाङ्मय के लिए रोचक एवं विस्मयोत्पादक बने हुए हैं।

बृहत्त्रयी के रचयिताओं का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

1. भारवि का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

संस्कृत–साहित्य के समालोचनात्मक इतिहास में महाकाव्यकारों में भारवि को प्रथम स्थान दिया जाता है।

भारवि से पूर्व संस्कृत–काव्यों में भावपक्ष को अधिक महत्त्व दिया था। परन्तु भारवि ने उस काव्यधारा को एक नया मोड़ प्रदान किया। उन्होंने काव्य की रचना में भावाभिव्यञ्जना के साथ–साथ कलापक्ष को भी महत्त्व प्रदान किया। काव्य में दो पक्ष होते हैं – भावपक्ष और कलापक्ष। भारवि का मत था कि कविता–कामिनी में केवल भावात्मक सौन्दर्य ही पर्याप्त नहीं है। उसको सुन्दर अलंकारों में सजाया जाना भी आवश्यक है। भारवि ने अपने काव्य में इस मान्यता को समुचित रूप से निभाया है। उनके काव्य में एक ओर सुन्दर भावों की अभिव्यक्ति है और पदों के अर्थों का गाम्भीर्य है, तो दूसरी ओर विविध मनोरम अलंकारों की शोभा का चमत्कार भी है। कुछ आलोचकों ने भारवि को विकृत रुचि का दोषी ठहराया है और उनके अत्यधिक श्रम साध्य चित्रकाव्य को मूर्खतापूर्ण बताया है। कुछ आलोचकों के मत से भारवि ने महाकवि कालिदास की काव्य–परम्परा का उत्तराधिकारी होकर भी भावपक्ष की मार्मिकता की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया। कुछ आलोचकों का मत है कि भारवि का काव्य संस्कृत की काव्य–परम्परा को स्वाभाविकता से कृत्रिमता की ओर ले जाने वाला हुआ और इस प्रकार भारवि ने संस्कृत–साहित्य में ह्रास युग को प्रारम्भ किया। उनका कहना है कि भारवि काव्य–सौन्दर्य को प्रदर्शित करने की अपेक्षा पाण्डित्य के प्रदर्शन की ओर अधिक रुचि रखते हैं। परन्तु इस प्रकार की कटु आलोचनाएं भारवि के महत्त्व को कम नहीं करती। भारवि के पदों में जो अर्थ की गरिमा है, पदों का सुन्दर विन्यास है और चमत्कारपूर्ण अलंकारों की सजावट है, ये सभी तत्त्व अन्य स्थानों पर एक साथ कठिनता से ही दृष्टिगोचर हो सकेंगे। भारवि के काव्य के अध्ययन से प्रतीत होता है कि वे राजनीति के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने विविध शास्त्रों का समुचित अध्ययन किया था। उन्होंने मानव–स्वभाव और प्रकृति को सूक्ष्मतम रूप से देखा था और उनमें काव्य–रचना करने का स्वभाविक कौशल था।

वस्तुतः भारवि की कविता का आस्वादन करने के लिये कुछ परिश्रम करने की आवश्यकता होती है। उनकी कविता में विविध रसों का माधुर्य तो भरा हुआ है परन्तु उसको पीने के लिए थोड़ी बुद्धि के प्रयोग की आवश्यकता होती है। उनका काव्य उस नारियल के समान मधुर है जो कठोर छिलके से ढका है तथा उस छिलके को तोड़कर ही उसे चखा जा सकता है। टीकाकार मल्लिनाथ ने ठीक कहा है–

टिप्पणी

नारिकेलफलसम्मितं वचो भारवेः सपदि तद् विभज्यते।
स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम्।।

भारवि की मेधा की दीप्ति सभी जगह अर्थगौरव प्रकाशित करती है। केवल एकाक्षर से ही भारवि ने एक श्लोक की रचना की है।' इसी विशेषता के आधार पर तत्त्वज्ञों ने इसको ''भारवेरर्थगौरवम्" की संज्ञा दी है।

भारवि का समय

संस्कृत के अन्य कवियों के समान भारवि के समय के सम्बन्ध में भी कोई निश्चित जानकारी नहीं प्राप्त होती। न तो भारवि ने अपने समय, स्थिति और जीवनवृत्तान्त के सम्बन्ध में कोई संकेत दिया है और ना ही उनके किसी प्रशंसक या समालोचक ने इस सम्बन्ध में कोई निश्चित एवं प्रमाणिक तथ्य उपस्थित किया है। अतः बहिरङ्ग साक्ष्यों के द्वारा ही उनके स्थितिकाल के सम्बन्ध में अनुमान लगाना पड़ता है। इन साक्ष्यों के द्वारा ही भारवि का समय छठी शताब्दी का उत्तरार्ध निर्धारित किया जा सकता है।

भारवि का कृतित्व

महाकवि भारवि द्वारा सातवीं शती ई. में रचित महाकाव्य 'किरातार्जुनीयम्' है जिसे संस्कृत साहित्य में महाकाव्यों की 'बृहत्त्रयी' में स्थान प्राप्त है। महाभारत में वर्णित किरातवेषी शिव के साथ अर्जुन के युद्ध की लघु कथा को आधार बनाकर कवि ने राजनीति, धर्मनीति, कूटनीति, समाजनीति, युद्धनीति, जनजीवन आदि का मनोरम वर्णन किया है। यह काव्य विभिन्न रसों से ओतप्रोत है किन्तु यह मुख्यतः वीररसप्रधान रचना है !

किरातार्जुनीयम् भारवि की एकमात्र उपलब्ध कृति है, जिसने एक सांगोपांग महाकाव्य का मार्ग प्रशस्त किया। माघ–जैसे कवियों ने उसी का अनुगमन करते हुए संस्कृत साहित्य भण्डार को इस विधा से समृद्ध किया और इसे नई ऊँचाई प्रदान की। कालिदास की लघुत्रयी और अश्वघोष के बुद्धचरितम् में महाकाव्य की जिस धारा का दर्शन होता है, अपने विशिष्ट गुणों के होते हुए भी उसमें वह विशदता और समग्रता नहीं है, जिसका सूत्रपात भारवि ने किया। संस्कृत में किरातार्जुनीयम् की कम से कम 37 टीकाएँ हुई हैं, जिनमें मल्लिनाथ की टीका घंटापथ सर्वश्रेष्ठ है। सन 1912 में कार्ल कैप्पलर ने हारवर्ड ओरियेंटल सीरीज के अंतर्गत किरातार्जुनीयम् का जर्मन अनुवाद किया। अंग्रेजी में भी इसके भिन्न–भिन्न भागों के छह से अधिक अनुवाद हो चुके हैं।

किरातार्जुनीयम् की कथा

राजनीति और व्यवहार–नीति में भारवि के विशेष रुझान के चलते यह युक्तियुक्त ही था कि वे किरातार्जुनीयम् का कथानक महाभारत से उठाते। उन्होंने वनपर्व के पाँच अध्यायों से पांडवों के वनवास के समय अमोघ अस्त्र के लिए अर्जुन द्वारा की गई शिव की घोर तपस्या के फलस्वरूप पाशुपतास्त्र प्राप्त करने के छोटे–से प्रसंग को उठाकर उसे अठारह सर्गों के इस महाकाव्य का रूप दे दिया।

जब युधिष्ठिर कौरवों के साथ संपन्न द्यूतक्रीड़ा में सब कुछ हार गये तो उन्हें अपने भाइयों एवं द्रौपदी के साथ 13 वर्ष के वनवास पर जाना पड़ा। उनका अधिकांश

टिप्पणी

समय द्वैतवन में बीता। वनवास के कष्टों से खिन्न होकर और कौरवों द्वारा की गयी साजिश को याद करके द्रौपदी युधिष्ठिर को अक्सर प्रेरित करती थीं कि वे युद्ध की तैयारी करें और युद्ध के माध्यम से कौरवों से अपना राजपाट वापस लें। भीम भी द्रौपदी की बातों का पक्ष लेते हैं।

गुप्तचर के रूप में हस्तिनापुर भेजे गए एक वनेचर (वनवासी) से सूचना मिलती है कि दुर्योधन अपने सम्मिलित राज्य के सर्वांगीण विकास और सुदृढ़ीकरण में दत्तचित्त है, क्योंकि कपट–द्यूत से हस्तगत किए गए आधे राज्य के लिए उसे पांडवों से आशंका है। पांडवों को भी लगता है कि वनवास की अवधि समाप्त होने पर उनका आधा राज्य बिना युद्ध के वापस नहीं मिलेगा। द्रौपदी और भीम युधिष्ठिर को वनवास की अवधि समाप्त होने की प्रतीक्षा न कर दुर्योधन पर तुरंत आक्रमण के लिए उकसाते हैं, लेकिन आदर्शवादी, क्षमाशील युधिष्ठिर व्यवहार की मर्यादा लाँघने को तैयार नहीं।

उधर आ निकले व्यास सलाह देते हैं कि भविष्य के युद्ध के लिए पांडवों को अभी से शक्ति–संवर्धन करना चाहिए। उन्हीं के द्वारा बताए गए उपाय के अनुसार अर्जुन शस्त्रास्त्र के लिए इन्द्र (अपने औरस पिता) को तप से प्रसन्न करने के लिए एक यक्ष के मार्गदर्शन में हिमालय–स्थित इन्द्रकील पर्वत की ओर चल पड़ते हैं। वहां एक आश्रम बनाकर की गई तपस्या के फलस्वरूप अप्सराओं आदि को भेजकर परीक्षा लेने के बाद इंद्र एक वृद्ध मुनि के वेष में उपस्थित होते हैं और तपस्या के नाशवान लौकिक लक्ष्य को निःसार बताते हुए परमार्थ की महत्ता का निदर्शन करते हैं। अर्जुन इसकी काट में कौरवों द्वारा किए गए छल एवं अन्याय का लेखा–जोखा प्रस्तुतकर शत्रु से प्रतिशोध लेने की अनिवार्यता, सामाजिक कर्तव्य–पालन तथा अन्याय के प्रतिकार का तर्क देकर इंद्र को संतुष्ट कर देते हैं। फलस्वरूप इंद्र अपने वास्तविक रूप में प्रकट होकर अर्जुन को मनोरथ–पूर्ति के लिए शिव की तपस्या करने की सलाह देते हैं।

अर्जुन फिर से घोर, निराहार तपस्या में लीन हो जाते हैं। अर्जुन इंद्रकील के लिए एक अजनबी तपस्वी है, जटा, वल्कल और मृगचर्म तो उसके पास हैं लेकिन साथ ही शरीर पर कवच भी है, यज्ञोपवीत की जगह प्रत्यंचा–समेत गांडीव धनुष है, दो विशाल तरकस हैं और एक उत्तम खड्ग भी। उसे मुनिधर्म–विरोधी समझकर वहाँ के अन्य तपस्वी आतंकित हैं और शंकर के पास निवेदन के लिये पहुँच जाते हैं। तब शिव जी किरातों की स्थानीय जनजाति के सेनापति का वेश धारणकर अपने गणों की सेना लेकर अर्जुन के पास पहुँच जाते हैं। तभी 'मूक' नाम का एक दानव अर्जुन की तपस्या को देवताओं का कार्य समझकर, विशाल शूकर का शरीर धारणकर, उसको मारने के लिए झपटता है। शिव और अर्जुन दोनों द्वारा एक साथ चलाए गए एक–जैसे बाण से उस सूअर की इहलीला समाप्त हो जाती है। शिव का बाण तो उसके शरीर को बेधता हुआ धरती में धँस जाता है और अर्जुन जब अपना बाण उसके शरीर से निकालने जाते हैं तो शिव अपने एक गण को भेजकर विवाद खड़ा करा देते हैं। परिणामतः दोनों के बीच युद्ध आरम्भ हो जाता है। अर्जुन गणों की सेना को तो बाण–वर्षा से भागने को मजबूर कर देते हैं पर शिव के साथ हुए युद्ध में परास्त हो जाते हैं। पराजय से हताश अर्जुन किरात–सेनापति के वेश में शिव को पहचानकर समर्पण कर देते हैं, जिससे प्रसन्न होकर शिव प्रकट होते हैं और पाशुपतास्त्र

प्रदानकर उसका प्रशिक्षण देते हैं। इस तरह अर्जुन का मंतव्य पूरा होने के साथ महाकाव्य–विधा के भी सारे मंतव्य सिद्ध हो जाते हैं।

नीति

टिप्पणी

किरात वेशधारी शिव के इस लोकोत्तर मिथक से इतर इस प्रसंग की अपनी एक विशिष्ट जनजातीय अभिव्यंजना भी है, जो इस काव्य को वर्तमान भावबोध के करीब लाती है। युधिष्ठिर और गुप्तचर बने वनेचर के बीच घटित संवाद में वनेचर की जो अटूट स्वामिभक्ति, अदम्य निर्भीकता और उच्च राजनीतिक समझ सामने आती है, वह वनवासियों के प्रति भारवि के अनुराग में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ती। वनेचर शुरू में ही स्पष्ट कर देता हैं।

क्रियासु युक्तैर्नृपचारचक्षुषो न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।।1.4।।

स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपं हितान्न यः संशृणुते स किंप्रभुः।
सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसंपदः।।1.5।।

(किसी कार्य के लिए नियुक्त कर्मचारी द्वारा स्वामी को धोखा नहीं दिया जाना चाहिए। अस्तु, मैं प्रिय या अप्रिय आपको जो भी बताऊँ, उसके लिए क्षमा करेंगे। वस्तुतः ऐसी वाणी, जो हितकारी भी हो और मनोहर भी लगे, दुर्लभ है। वह मंत्री कैसा जो उचित (किंतु अप्रिय लगनेवाली) सलाह न दे, और वह राजा कैसा जो हितकारी (किंतु कठोर) बात न सुन सके। राजा और मंत्री में परस्पर अनुकूलता (पूर्ण विश्वास) होने पर ही राज्य के प्रति सभी प्रकार की समृद्धियां अनुरक्त होती हैं।)

इस पूरे प्रकरण के आरम्भ में द्रौपदी की बातों के समर्थन में भीम द्वारा युधिष्ठिर के प्रति कुछ नीतिवचन कहे गये हैं। उन्हीं में से एक नीचे उद्धरित है–

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः।।30।।

(किरातार्जुनीयम्, द्वितीय सर्ग)

(किसी कार्य को बिना सोचे–विचारे अनायास नहीं करना चाहिए। विवेकहीनता आपदाओं का परम आश्रय है। गुणों की लोभी संपदाएं अच्छी प्रकार से विचार करने वाले का स्वयमेव वरण करती हैं, अर्थात् उसके पास स्वयं चली आती हैं।)

काव्यसौन्दर्य एवं अर्थगौरव

भारवि अपने अर्थ–गौरव (गहन भाव–सम्पदा) के लिए जाने जाते हैं –'उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्'। इस अर्थ–गौरव से मेल खाती एक विदग्ध भाषा और अभिव्यक्ति–कौशल उनकी सम्पदा है। राजनीति और व्यवहार–नीति सहित जीवन के विविध आयामों में उनकी असाधारण पैठ है। आदर्श और व्यवहार के द्वंद्व तथा यथार्थ जीवन के अतिरेकों के समाहार से अर्जित संतुलन उनके लेखन को 'समस्तलोकरंजक' बनाता है। लेकिन भारवि मूलतः जीवन की विडंबनाओं और विसंगतियों के कवि हैं, उनका सामना करते हैं और उनके खुरदुरे यथार्थ के बीच संगति बिठाने का प्रयास करते हैं। किरातार्जुनीयम् के पहले सर्ग में द्रौपदी और दूसरे में भीम द्वारा युधिष्ठिर को दुर्योधन के विरुद्ध युद्ध

टिप्पणी

की घोषणा के लिए उकसाने और युधिष्ठिर द्वारा उसे अनीतिपूर्ण बताकर अस्वीकार कर देने के क्रम में भारवि ने राजनीति के दो छोरों के बीच के द्वंद्व पर बहुत सार्थक विमर्श प्रस्तुत किया है। इसी तरह ग्यारहवें सर्ग में मोक्ष के स्थान पर शक्ति और प्रभुता के लिए किए जा रहे अर्जुन के तप को इन्द्र द्वारा गर्हित बताए जाने पर, अर्जुन के प्रत्युत्तर के रूप में भारवि ने जीवन–व्यवहार में अन्याय के प्रतिकार, लौकिक सफलता, यश और आत्म–सम्मान के महत्व पर जो गम्भीर विचार दिए हैं, वे स्वस्थ इहलौकिक जीवन का एक संतुलित आदर्श का चित्र उपस्थित करते हैं।

भाषा पर अपने अप्रतिम अधिकार के चलते चित्रकाव्य के जिस भाषिक चमत्कार (किरातार्जुनीयम् के पंद्रहवें सर्ग में) की परम्परा भारवि ने शुरू की, उनके बाद के कवियों के लिए वह कसौटी बन गई और माघ (शिशुपालवधम्) में जाकर वह चरमोत्कर्ष पर पहुँची।

निम्नलिखित पंक्तियों में चित्रालंकार देखिए–

"न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत्।।"

अनुवाद : हे नाना मुख वाले (नानानन)! वह निश्चित ही (ननु) मनुष्य नहीं है जो जो अपने से कमजोर से भी पराजित हो जाय। और वह भी मनुष्य नहीं है (ना–अना) जो अपने से कमजोर को मारे (नुन्नोनो)। जिसका नेता पराजित न हुआ हो वह हार जाने के बाद भी अपराजित है (नुन्नोऽनुन्नो)। जो पूर्णतः पराजित को भी मार देता है (नुन्ननुन्ननुत्) वह पापरहित नहीं है (नानेना)।

इसी प्रकार निम्नलिखित श्लोक को ध्यान से देखिये। इसे सर्वतोभद्र (सभी तरफ से सुन्दर) कहते हैं। इसमें पहली पंक्ति को बायें से पढिये या दायें से– समान है। इसी तरह सभी पंक्तियों के प्रथम अक्षर (मात्रा सहित) लीजिये या अन्तिम अक्षर लीजिये–

"देवाकानिनि कावादे
वाहिकास्वस्वकाहि वा।
काकारेभभरे का का
निस्वभव्यव्यभस्वनि।।"

एक अन्य श्लोक देखिये। इसमें महायमक अलंकार है। एक ही पद (विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा) चार बार आया है किन्तु अर्थ भिन्न–भिन्न हैं।

"विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणाः।
विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणा विकाशमीयुर्जगतीशमार्गणाः।।"

संरचना

किरातार्जुनीयम् के तीसरे सर्ग में व्यास कौरव पक्ष के भीष्म, द्रोण, कर्ण–जैसे धुरंधरों को पांडवों द्वारा अजेय बताते हुए 13 साल की अवधि में हर तरह से शक्ति–संवर्धन करने और भविष्य के अवश्यम्भावी युद्ध की तैयारी के लिए उसका उपयोग करने की सलाह देते हैं। इसके लिये वे अर्जुन को उच्च कोटि के शस्त्रास्त्र हेतु तपस्या से इंद्र को प्रसन्न करने के लिए प्रेरित करते हैं और अपने साथ लाए एक यक्ष को भी छोड़ जाते हैं जो

टिप्पणी

अर्जुन को इंद्र की तपस्या के लिए उपयुक्त स्थान तक ले जाएगा। चौथे सर्ग में यक्ष के मार्गदर्शन में अर्जुन की द्वैतवन से हिमालय तक की यात्रा का सजीव एवं रोचक वर्णन है, जिसमें शरद ऋतु की स्थिर और संयत प्रकृति और उसके साथ घुले–मिले जन–जीवन का उल्लास नाना रूपों में तरंगित है। पाँचवाँ सर्ग यक्ष के साथ अर्जुन के यात्रा–प्रसंग से गिरिराज हिमालय के पर्वतीय प्रदेश के विशद, अलंकारिक वर्णन की छटा से दीप्त है।

छठे सर्ग का वर्ण्य विषय है अर्जुन की आँखों से देखी इंद्रनील की अप्रतिम शोभा। वहाँ पहुंचकर अर्जुन द्वारा तप का प्रारम्भ, प्रकृति के विभिन्न उपादानों का तप में सहयोग, वहाँ तैनात वनदेवों द्वारा अमरावती पहहुँचकर इन्द्र को सूचित करना, इंद्र द्वारा देवांगनाओं को उनके सहचर गंधर्वों के साथ वहाँ जाकर अपने हाव–भाव और सौन्दर्य से अर्जुन की तपस्या में विघ्न डालने का आदेश देना, ताकि उनकी निष्ठा की परीक्षा हो सके। सातवें सर्ग में अप्सराएँ तथा उनके सहचर गन्धर्व पूरे उल्लास–विलास के साथ आकाश मार्ग से विशेष प्रकार के हाथियों और रथों पर सवार देव गंगा के किनारे–किनारे अमरावती से इंद्रकील तक की यात्रा करते हैं। इंद्रकील के पास नीचे उतरकर वे पृथ्वी–गंगा के रम्य तट पर अपनी माया से गंधर्व–नगरी जैसा दिव्य शिविर बना लेते हैं। आठवें सर्ग में अप्सराएँ अपने शिबिरों से वन–विहार के लिए निकलती हैं। यहाँ से शृंगार रस का रंग चढ़ना शुरू होता है, जो इसी सर्ग में वर्णित जल–क्रीड़ा में गाढ़ा होता है और नवें सर्ग में मद्य–पान के साथ सम्पन्न काम–केलि में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। दसवाँ सर्ग अप्सराओं द्वारा अर्जुन का ध्यान खींचकर उसे तपस्या से च्युत करने के अभियान और उसकी असफलता का है।

ग्यारहवें सर्ग में वयोवृद्ध मुनि के वेष में इन्द्र के आगमन और उनके द्वारा तपस्या के सांसारिक लक्ष्य की निस्सारता का निदर्शन है जिसके प्रत्युत्तर में अर्जुन लौकिक जीवन के मूल्यों, प्राथमिकताओं का अपना आख्यान रचते हैं। इस सर्ग के अंत में अर्जुन के तर्क से संतुष्ट देवराज अपने स्वरूप में प्रकट होकर उसके लक्ष्य के अनुरूप शिव की आराधना का उपदेश देते हैं। बारहवें सर्ग में अर्जुन घोर तपस्या आरम्भ कर देते हैं जिससे घबराकर अन्य सन्यासी शंकर के पास जा पहुंचते हैं। शंकर किरात का वेश धरकर अर्जुन से मिलते हैं। तेरहवें सर्ग में अर्जुन और किरात रूपधारी शिव दोनों सूकर रूपधारी (मूक दानव) पर तीर से आक्रमण करते हैं।

किरातार्जुनीयम् के अंतिम पाँच सर्ग (14 से 18) अपनी गण–सेना के साथ किरातवेशधारी शिव और अर्जुन के बीच युद्ध को समर्पित हैं। 15वें सर्ग में, जिसमें युद्ध का यह चरण आता है, भारवि ने चित्रकाव्य (अलंकारिक छंद) का प्रयोगकर महाकाव्य के दायरे के भीतर एक नई परम्परा का सूत्रपात किया है।

2. महाकवि माघ – महाकाव्य – शिशुपालवध

महाकवि माघ का सामान्य परिचय

संस्कृत साहित्य के काव्यकारों में माघ का उत्कृष्ट स्थान रहा है। यही कारण है कि उनके द्वारा विरचित 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य को संस्कृत की बृहत्त्रयी में विशिष्ट स्थान मिला है। महाकवि 'माघ' ने काव्य के के अन्त में प्रशस्ति के रूप में लिए हुए पाँच श्लोकों में अपना स्वल्पपरिचय अंकित कर दिया है जिसके सहारे तथा काव्य में

यत्र–तत्र निबद्ध संकेतों से तथा अन्य प्रमाणों के आधार पर कविवर माघ के जीवन की रूप रेखा अर्थात् उनका जन्म समय, जन्म स्थान तथा उनके राजाश्रय को जाना जा सकता है।

टिप्पणी

प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने प्रशस्तिरूप में लिखे इन पाँच श्लोकों की व्याख्या नहीं की है। केवल वल्लभदेव कृत व्याख्या ही हमें देखने को मिलती है। इसी प्रकार 15वें सर्ग में प्रथम 39वें श्लोक के पश्चात् द्वयर्थक 34 श्लोक रखे गये हैं। इसके पश्चात् 40वाँ श्लोक है। यहीं से मल्लिनाथ ने उनकी व्याख्या नहीं की है उसी प्रकार प्रशस्ति के पाँच श्लोकों को भी प्रक्षिप्त मानकर मल्लिनाथ ने व्याख्या नहीं की है। किन्तु मल्लिनाथ के पूर्ववर्ती टीकाकार वल्लभदेव ने उन 34 श्लोकों तथा कविवंश वर्णन के पाँच श्लोकों की टीका लिखी है। अतः वल्लभदेव से पूर्ववर्ती होने के कारण यह विश्वास किया जाता है कि कविवंश वर्णन के आदि में जो ''अधुना कविमाघो निजवंशवर्णनं चिकीर्षुराहु'' लिखा है, वह सत्य है अर्थात् अन्य द्वारा लिखा हुआ यह कविवंश वर्णन नहीं है।

''कविवंशवर्णन के पाँच श्लोक प्रक्षिप्त है'– वह कहना केवल कपोल कल्पना है।

कवि द्वारा लिखे हुए वंश–वर्णन के पाँचवें श्लोक में स्पष्ट लिखा हुआ है कि दत्तक के पुत्र माघ ने सुकवि–कीर्ति को प्राप्त करने की अभिलाषा से 'शिशुपालवधम्' नामक काव्य की रचना की है, जिसमें श्रीकृष्ण चरित वर्णित है और प्रतिसर्ग की समाप्ति पर 'श्री' अथवा उसका पर्यायवाची अन्य कोई शब्द अवश्य दिया गया है। यहाँ ध्यातव्य यह है कि जिस कवि ने 19वें सर्ग के अन्तिम श्लोक (क्र. 120) 'चक्रबन्ध' में किसी रूप में बड़ी ही निपुणता से 'माकाव्यमिदम्' शिशुपालवधम्'' तक अंकित कर दिया है। कविवर माघ का जन्म राजस्थान की इतिहास प्रसिद्ध नगरी 'भीनमाल' में राजा वर्मलात के मन्त्री सुप्रसिद्ध शाक द्वितीय ब्राह्मण सुप्रभदेव के पुत्र कुमुदपण्डित (दत्तक) की धर्म पत्नी ब्राह्मी के गर्भ से माघ की पूर्णिमा को हुआ था। कहा जाता है कि इनके जन्म समय की कुण्डली को देखकर ज्योतिषी ने कहा था कि यह बालक उद्भट विद्वान अत्यन्त विनीत, दयालु, दानी और वैभव सम्पन्न होगा। किन्तु जीवन की अन्तिम अवस्था में यह निर्धन हो जायेगा। यह बालक पूर्ण आयु प्राप्त करके पैरों पर सूजन आते ही दिवंगत हो जायेगा। ज्योतिषी की भविष्यवाणी पर विश्वास करके उनके पिता कुमुद पण्डित–दत्तक ने जो एक श्रेष्ठी (श्रेष्ठ धनादिकम् अस्ति यस्य, श्रेष्ठ + इनि) (धनी) थे, प्रभूतधनरत्नादि की सम्पत्ति को भूमि को घड़ों में भर कर गाड़ दिया और शेष बचा हुआ धन माघ को दे दिया था। कहा जाता है कि 'शिशुपालवधम्' काव्य के कुछ भाग की रचना इन्होंने परदेश में रहते हुए की थी और शेष भाग की रचना वृद्धावस्था में घर पर रहकर ही की। अन्तिम अवस्था में ये अत्यधिक दरिद्रावस्था में थे। 'भोज–प्रबन्ध' में उनकी पत्नी प्रलाप करती हुई कहती हैं कि जिसके द्वार पर एक दिन राजा आश्रय के लिए ठहरा करते थे आज वही व्यक्ति दाने–दाने के तरस रहा है। क्षेमेन्द्रकृत 'औचित्य विचार–चर्चा' में पं. महाकवि माघ का अधोलिखित पद्य माघ की उक्त दशा का निदर्शक है–

बुभुक्षितैव्याकरणं न भुज्यते न पीयते काव्यरसः पिपासितैः।
न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः क्रियाः।।

उक्त वाक्य से ऐसा प्रतीत होता है कि दरिद्रता से धैर्यहीन हो जाने के कारण अत्यन्त कातर हुए माघ की यह उक्ति है। कविवर माघ 120 वर्ष की पूर्ण आयु प्राप्त

टिप्पणी

करके सन् 880 ई. के आसपास दिवंगत हुए साथ ही उनकी पत्नी सती हो गई। इनकी अन्तिम क्रिया तक करने वाला कोई व्यक्ति इनके परिवार में नहीं था। 'भोजप्रबन्ध' ''प्रबन्धचिन्तामणि'' तथा ''प्रभावकचरित'' के अनुसार भोज की जीवितावस्था में दिवंगत हुए, क्योंकि भोज ने ही पुत्रवत माघ का दाह संस्कार किया था।

माघ का स्थिति काल

माघ के समय निर्धारण में स्थित काल प्रमाण भी मिलते हैं, जिनकी सहायता से हम उनका समय जान सकते हैं। नौवीं शती के आनन्दवर्धन (840 ई.) ने अपने ध्वन्यालोक (द्वितीय उद्योत्) में माघ के दो पद्यों को उद्धृत किया है। प्रथम पद्य है– 'रम्या इति प्राप्तवतीः पताकाः' (3153) तथा द्वितीय है– 'त्रासाकुल' परिपतन् परितो निकेतान्।' (5126) इस प्रकार माघ निःसन्देह आनन्दवर्धन (850 ई.) के पूर्ववर्ती हैं।

आनन्दवर्धन द्वारा माघ के श्लोक उद्धृत किए जाने के कारण माघ आनन्दवर्धन के पूर्ववर्ती भी हो सकते हैं या समकालीन भी हो सकते हैं क्योंकि यशोलिप्सा के कारण माघ स्थिर रूप में किसी एक स्थान पर न रह पाए हों तो उन्होंने निश्चित रूप से उत्तर भारत में कश्मीर तक भ्रमण किया था जिसका प्रमाण काव्य के प्रथम सर्ग का नारद मुनि की जटाओं का वर्णन है। यहीं पर सम्भव है ध्वन्यालोक में उद्धृत श्लोकों को किसी काव्यगोष्ठी में श्री आनन्दवर्धन ने माघ के मुख से सुने हों और उत्तम होने के कारण आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में उन्हें उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया।

एक शिलालेख से भी माघ के समय–निर्धारण में सहायता मिलती है। राजा वर्मलात का शिलालेख वसन्त गढ़ (सिरोही राज्य में) से प्राप्त हुआ। यह शिलालेख शक संवत् 682 का है शक संवत् 682 में 78 वर्ष जब जोड़ दिए जाते हैं तब ई. वी. सन् का ज्ञान होता है। इस प्रकार यह शिलालेख सन् 760 ई. का लिखा हुआ होना चाहिए। माघ ने 20वें सर्ग के अन्त में 'कविवंशवर्णनम्' में लिखा है कि उसके पितामाह सुप्रभदेव के आश्रयदाता राजा वर्मल (वर्मलात) थे। सुप्रभदेव का समय 760 ई. के आसपास होना चाहिए। उनके पौत्र कवि माघ का शैशवकाल सन् 780 के आसपास। इतना तो निश्चित है कि माघ आनन्दवर्धन के पश्चाद्वर्ती थे। जिस अतीत के इतिहास को अपने काव्य का कथानक बनाता है, उसी अतीत की अन्य स्थितियाँ भी निम्नांकित करने का भरसक प्रयत्न करता है। किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो वहाँ भी उसका वर्तमान समाज झाँकता परिलक्षित होता है, क्योंकि उसका अतीत या भविष्य से सम्बद्ध सम्पूर्ण कल्पनाओं का आधार वर्तमान ही रहता है। कवि की कल्पना वर्तमान की नींव पर अतीत तथा भविष्य के प्रसादों का निर्माण किया करती है। इसलिए माघ में अंकित रीतिबद्धता की बढ़ी हुई प्रवृत्ति तथा समाज का शृङ्गारिक वातावरण भी हमें माघ की उक्त तिथि निश्चित करने में सहायक है। संक्षेप में माघ एक ऐसे युग की देन हैं जिसके प्रमुख लक्षण शृङ्गारिकता में अत्यधिक रुचि और चमत्कार एवं विद्वता प्रदर्शन की प्रवृत्ति आदि है। मदिरा एवं प्रमदा का जो साहचर्य माघ काव्य में देखने को मिलता है वह आठवी से दसवीं शताब्दी के उत्तर भारतीय राजपूत जीवन का इतिहास है।

इस तरह माघ का काल प्रायः 8वीं और 9वीं शताब्दियों के बीच स्थिर होता है। भोज प्रबन्ध के अनुसार माघ भोज के समकालीन थे, क्योंकि भोज प्रबन्ध में माघ के सम्बन्ध में यह किंवदन्ती प्रचलित है कि एक बार माघ ने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दानकर

दी थी। निर्धन स्थिति में उन्होंने एक श्लोक की रचना की। जिसे उन्होंने राजा भोज के सभा में भेजा था। वह श्लोक इस प्रकार है–

कुमुदवनमपत्रि श्रीमदम्भोजखण्डे,
मुदति मुदमूलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिनिहसतानां हा विचित्रो विपाकः।।2।।

टिप्पणी

जब राज सभा में उक्त श्लोक को पढ़कर सुनाया गया तो भोज अत्यन्त प्रसन्न हुए उन्होंने माघ की पत्नी को बहुत सा धन देकर विदा किया। माघ की पत्नी जब वापस लौट रही थी, तो रास्ते में बालक माघ की दानशीलता की प्रशंसा करते हुए उससे भी कुछ माँगने लगे। माघ की पत्नी ने सारा धन याचकों में बाँट दिया। जब पत्नी रिक्तहस्त घर पहुँची तो माघ को चिन्ता हुई कि अब कोई याचक आया तो उसे क्या देंगे? माघ की इस चिन्ताजनक स्थिति को देखकर किसी याचक ने यह कहा था–

आश्वास्य पर्वतकुलं तपनोष्णतप्त
मुद्दामदामविधुराणि च काननानि।
नानानदीनदशतानि च पूरयित्वा।
रिक्तोऽसि यज्जलद सैव तवोत्तमा श्रीः।।

डॉ. कीलहार्न को राजपूताने के वसन्तगढ़ नामक स्थान से वर्मलात नामक किसी राजा का 682 विक्रमी अर्थात् 625 ई. का शिलालेख प्राप्त हुआ था। इसके प्राप्तिकर्ता के अनुसार ये वर्मलात और श्री वर्मल एक ही थे और ये ही माघ के पितामाह सुप्रभदेव के आश्रयदाता थे। इस दृष्टि से सुप्रभदेव का समय 628 ई. के आस–पास और उनके पौत्र माघ का अनुमानित समय 650–757 वि.सं. से 757 वि.सं. (700) के बीच हो सकता है।''(4) अन्य विद्वानों ने भी इस विषय पर प्रभूत अन्वेषण एवं विचार किया है तदनुसार इनका स्थिति–काल सातवीं शती ईसवी के उत्तरार्द्ध में माना जाना चाहिए। इसके मत के प्रत्यायक कुछ वाह्य प्रमाणों का सारांश इस प्रकार है–

1. आनन्दवर्धन (850 ई.) ने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक में शिशुपालवधम् के दो श्लोक उद्धृत किए हैं।
2. शिशुपालवध (1992) का एक पद्य, जिसमें माघ ने श्लेष द्वारा राजनीति की तुलना व्याकरणशास्त्र से की है स्पष्टरूप से व्याख्या के दो प्रथित ग्रन्थों, वृत्ति (काशिकावृत्ति) 650 ई. और 'न्यास' (सम्भवतः जिनेन्द्रबुद्धिविरचित 'न्यास' या 'विवरण–पि०जका' समय 700 ई.) का संकेत करता है। इस मत की पुष्टि में एम. एस. भण्डार ने कुछ अन्य प्रमाण भी उपस्थित किए हैं। उनका मत है माघ अपने काव्य के अनेक श्लोकों में न्यासकार (जिनेन्द्रबुद्धि) के ही विचारों को प्रकट करते प्रतीत होते हैं। नीचे उद्धृत किए जा रहे न्यासकार के इन वाक्यों की छाया शिशुपालवधम् के एक श्लोक में मिलती है। दोनों तुलनीय प्रसंग इस प्रकार हैं–

   परितो व्यापृता परिभाषा।
   न्यास (2/9/9)

   परिभाषात्वेकदेशस्थाऽपि सर्वशास्त्रे व्याप्रियते।
   शिशुपालवध (9/6/80)

टिप्पणी

परितः प्रमिताक्षराऽपि सर्वविषयं प्राप्तवर्ती गता प्रतिष्ठाम्।
न खलु प्रतिहन्यते कुतश्चित् परिभाषेव गरीयसी यदाज्ञा

किन्तु इस धारणा का समर्थन सभी विद्वान् नहीं करते। उनका कथन है कि 'अनुसूत्रपदन्यासा' आदि पद्य में जो 'न्यास' संकेतित हुआ है वह जिनेन्द्रबुद्धिकृत 'न्यास' नहीं अपितु उससे भी पहले का कोई एतत्वनामक व्याकरण ग्रन्थ होना चाहिए क्योंकि स्वयं जिनेन्द्रबुद्धि ने भी अपने से पूर्व अनेक न्यास ग्रन्थों के नाम दिए हैं और जिनेन्द्रबुद्धि से पूर्ववर्ती बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित में भी 'न्यास' संज्ञक' व्याकरण ग्रन्थ का संकेत किया है। अतएव माघ का समय सप्तम शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही स्वीकारना युक्तिसंगत है।'

माघ का पाण्डित्य

संस्कृत साहित्यकोश में महाकवि माघ एक जाज्वल्यमान नक्षत्र के समान हैं जिन्होंने अपनी काव्यप्रतिभा से संस्कृत जगत् को चमत्कृत किया है। ये एक ओर कालिदास के समान रसवादी कवि हैं तो दूसरी ओर भारवि सदृश विचित्रमार्ग के पोषक भी। कवियों के मध्य महाकवि कालिदास सुप्रसिद्ध हैं तो काव्यों में माघ, अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं–

काव्येषु माघः कविकालिदासः।

माघ अलंकृत शैली के पण्डित कवि माने जाते हैं। जहाँ काव्य के आन्तरिक तत्त्व की अपेक्षा बाह्य तत्त्व शब्द और अर्थ के चमत्कार देखे जा सकते हैं। इनकी एकमात्र कृति 'शिशुपालवधम्' जिसे महाकाव्य भी कहा जाता है, वृहत्त्रयी में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इस महाकवि के आलोडन के पश्चात् किसी विद्वान् ने इसके महत्त्व के विषय में कहा है– 'मेघ माघे गतं वयः। माघ विद्वानों के बीच पण्डित कवि के रूप में भी सुप्रसिद्ध हैं। समीक्षकों का कहना है कि माघ ने भारवि की प्रतिद्वन्दिता में ही महाकाव्य की रचना की, क्योंकि माघ पर भारवि का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। भले ही माघ ने भारवि के अनुकरण पर अपने महाकाव्य की रचना की हो लेकिन माघ उनसे कहीं अधिक आगे बढ़ गए हैं इसीलिए कहा जाता है,

तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।

माघ जिस शैली के प्रवर्तक थे उनमें प्रायः रस, भाव, अलंकार काव्य वैचित्र्य बहुलता आदि सभी बातें विद्यमान थी। माघकवि की कविता में हृदय और मस्तिष्क दोनों का अपूर्व मिश्रण था। माघकाव्य में प्राकृतिक वर्णन प्रचुर मात्रा में हुआ है। इनके काव्य में भावगाम्भीर्य भी है। 'शिशुपालवधम्' में कतिपय स्थलों पर भावागाम्भीर्य देखकर पाठक अक्सर चकित रह जाते हैं। कठिन पदन्यास तथा शब्दबन्ध की सुश्लिष्टता जैसी इस महाकाव्य में देखने को मिलती है वैसी अन्यत्र बहुत कम काव्यों में मिलती है। इनके काव्य को पढ़ते समय मस्तिष्क का पूरा व्यायाम हो जाता है।

कलापक्ष की दृष्टि से भी माघ परिपक्व कवि सिद्ध होते हैं। कवि के भाषापक्ष को ही साहित्यकारों ने कलापक्ष नाम दिया है। महाकवि माघ की भाषा के स्वरूप और सौष्ठव को समझने के लिए उनके शब्दकोष, पदयोजना, व्याकरण शब्दशक्ति, प्रयोगकौशल तथा अलंकार आदि सभी को सूक्ष्म रूप से देखना होगा। कालिदास की सरल सुगम कविता की तुलना में माघ की पाण्डित्यपूर्ण कविता में प्रवेश पाने के लिये अध्येता को काव्यशास्त्रीयज्ञान होना आवश्यक है। वाणी के पीछे अर्थ का स्वतः अनुगमन करने

(वाचामर्थोऽनुधावति) की जो दृष्टि भवभूति की रही है, तदनुरूप माघ का भी कहना है कि रस भाव के ज्ञाता कवि को ओज, प्रसाद आदि काव्यगुणों का अनुगमन करने की आवश्यकता नहीं है। वे तो कवि की वाणी का स्वतः अनुगमन करते हैं–

नैकमोजः प्रसादो वा रसभावाविदः कवेः।

टिप्पणी

माघ के प्रकृति चित्रण में भी उनका वैशिष्ट्य देखने को मिलता है। यद्यपि माघ ने सरोवर, वन, उपवन, पर्वत, नदी, वृक्ष, सन्ध्या, प्रातः रात्रि, अन्धकार आदि प्रकृति के विभिन्न रूपों का चित्रण उद्दीपन के रूप में किया है फिर भी वह इतना सजीव और हृदयस्पर्शी है कि कोई भी पाठक उसमें डूब जाता है। शिशुपालवधम् का नौंवां और ग्यारहवां सर्ग इस दृष्टि से अवलोकनीय'' है। नवम सर्ग में संध्याकाल का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि–

सन्ध्याकाल में पश्चिम दिशा नये कदम्ब के समान लाल बादलों से आच्छादित हो गयी है और समस्त दिङ्मण्डल भी सूर्य रश्मियों में परिव्याप्त हो गया हे।

इसी प्रकार ग्यारहवें सर्ग में कवि प्रातः काल का वर्णन करते हुए लिखता है–

अरुणजलजराजीमुग्धहस्ताग्रपादा बहुलमधुपमालाकज्जलेन्दीवराक्षी।
अनुपतितविरावैः पत्रिणां व्याहरन्ती रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्या सुतेव।।

अर्थात् रात्रि की विदाई पर ऊषा उसका अनुगमन करती हुई ऐसी शोभायमान हो रही है जैसे वह रजनी की सद्यः प्रसूता कन्या हो। यहाँ रक्तकमलों की पंक्तियों की तुलना ऊषारूपी नायिका की हथेली से और पंखुड़ियों की तुलना उसकी अंगुली से की गयी है। इस प्रकार माघ के प्रकृतिचित्रण में वर्ण्यवस्तु के अनुरूप वातावरण और उसके समस्त अंगों का स्वाभाविक वर्णन देखने को मिलता है। अन्य कृतियों की अपेक्षा माघ के प्रकृतिचित्रण में यह वैशिष्ट्य देखने को मिलता है कि उन्होंने काव्यशास्त्रीय दृष्टि का पूर्ण निर्वाह करते हुए उसे जन सुलभ बनाने का प्रशंसनीय प्रयास किया है।

माघ का शृंगार वर्णन भी उच्चकोटि का है। उन्होंने शृंगार के संयोगपक्ष का ही विस्तृत वर्णन किया है, वियोगपक्ष का नहीं। संयोग शृंगार का वर्णन भी उन्होंने आलम्बन के रूप में ही किया है। शिशुपालवधम् के सातवें सर्ग में इस प्रकार के अनेक सन्दर्भ दिखायी पड़ते हैं। उदाहरणार्थ–

अतिशयपरिणाहवान् वितेने बहुतरमर्पितरत्नकिङ्किणीकः।
अलघुनि जघनस्थलेऽपरस्या ध्वनिमधिकं कलमेखलाकलापः।।

उपर्युक्त प्रसंग में नायिका का अत्यन्त ही शृंगारिक वर्णन किया गया है। माघ रसवाधि कवि होने के साथ ही विचित्र्य तथा चमत्कार से अपनी कविता को कलात्मक के उच्च शिखर पर पहुँचा दिया है। एक ही वर्ण में सम्पूर्ण श्लोक की रचना करना उनके पाण्डित्य का परिचायक है–

ददादो दुद्दुदुद्दादी दादादो दूददीददोः।
दुद्दादे दददे दुद्दे ददाऽददददोऽददः।।14।।

इस प्रसंग में महाकवि माघ ने 'द' वर्ण का प्रयोग कर अपनी विद्वत्ता का परिचय दिया है। इसी प्रकार उन्होंने केवल दो वर्णों से भी अनेक श्लोकों की रचना की है जिसका एक उदाहरण प्रस्तुत है।

वरदोऽविवरो वैरिविवारी वारिराऽऽरवः।
विववार वरो वैरं वीरो रविरिवैर्वरः।।15।।

टिप्पणी

यहाँ केवल 'व' और 'र' वर्णों का प्रयोग कर कवि ने अपने वर्णनचातुर्य को प्रदर्शित किया है। इसके अतिरिक्त अनेक अनुलोम–प्रतिलोम प्रयोग विशेष प्रसिद्ध हैं। इनके एकक्षरपादः, सर्वतोभद्र, गोमुत्रिका, बन्धमुरजबन्ध और यर्थवाची, तथा चतुरर्थवाची, आदि जटिलतम चित्रबन्धों की रचना तत्कालीन कवि समाज की परम्परा की द्योतक है। शिशुपालवधम् के उन्नीसवें सर्ग में यही शब्दार्थ कौशल दिखायी पड़ता है।

इस प्रकार माघ ने चित्रालंकार के द्वारा अपने शब्दकौशल का परिचय दिया है। यद्यपि यह शब्द कौशल कुछ बोझिल हो गया है। मम्मट के अनुसार चित्रकाव्य अधम कोटि के अन्तर्गत आते हैं। किन्तु फिर भी माघ की शब्दकुशलता का लोहा तो माना ही जा सकता है। काव्य के कथानक के वर्णनचातुर्य को देखकर भी माघ एक कल्पनाशील एवं वर्णनप्रधान कवि प्रतीत होते हैं। शिशुपालवधम् की एक छोटी सी घटना को महाभारत के सभापर्व से ग्रहण कर विशालकाय बीस सर्गों के महाकाव्य की रचना माघ के अपूर्व वर्णन कौशल पर परिचायक है। शिशुपालवधम् के तीसरे से तेरहवें सर्ग तक आठ सर्गों में माघ ने अपनी मौलिक कल्पना द्वारा वर्णनचातुर्य को प्रदर्शित किया है जहाँ मुख्य विषय गौण हो गया है। उन्होंने चतुर्थ और पञ्चम सर्ग में केवल रैवतक पर्वत का वर्णन अत्यन्त ही रोचकतापूर्ण किया है। रैवतक पर्वत को गज के समान तथा दो घण्टे की तुलना चन्द्र और सूर्य से कर माघ ने बहुत सुन्दर निर्दशना प्रस्तुत की है, जिस पर समीक्षकों द्वारा माघ को 'घण्टामाघ' की उपाधि प्रदान की गयी है। रैवतक एक ऐसा पर्वत है जिसका वर्णन माघ के अतिरिक्त किसी दूसरे कवि ने अपने काव्य में नहीं किया है।

वर्णनकुशलता, अलंकारप्रियता, प्रकृति समुपासना के साथ ही माघ एक सफल काव्यशास्त्री भी रहे हैं। उनके महाकाव्य के अनुशीलन से माघ के विविधशास्त्रविशेषज्ञ होने का ज्ञान होता है। उन्होंने अपने महाकाव्य के माध्यम से हृदय पाठकों एवं कवियों को प्रायः सभी शास्त्रों का सूक्ष्म ज्ञान करा दिया है। काव्यशास्त्रीय सभी विषयों में उनकी गति दिखायी पड़ती है। विविध विषयों जैसे– श्रुतिविषय (वेद), व्याकरणशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र, योग, वेदान्त, मीमांसा, बौद्धमत, सामरिकज्ञान, नाट्यशास्त्र, आयुर्वेदशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, पशुविद्या, संगीतशास्त्र, कामशास्त्र पाकंशास्त्र, साहित्यशास्त्र, व्यावहारिकज्ञान और पौराणिकज्ञान इत्यादि का सूक्ष्म परिचय इस काव्य के अनुशीलन से प्राप्त होता है। उपर्युक्त सभी विषयों के ज्ञान का प्रमाण इस प्रकार है– महाकवि माघ का श्रुतिविषयकज्ञान अत्यन्त प्रशंसनीय है। शिशुपालवधम् के ग्यारहवें सर्ग में प्रातःकाल के समय इन्होंने अग्निहोत्र यज्ञ का सुन्दर वर्णन किया है–

प्रतिशरणमषीर्णज्योतिरग्न्याहितानां
विविधहितविरब्धैः सामिधेनीरधीत्य।
कृतगुरुदुरितौघध्वंसमध्वर्युवर्यै–
र्हुतमयमुपलीढे साधु सात्राध्यमग्निः।।23।।

अग्नि का आह्वान करने लगे अग्निहोत्रियों के प्रत्येक घर में प्रचण्ड ज्वाला अग्नि जलने लगी है जिसमें ब्राह्मण पुरोहित वैदिक स्वरों के साथ मन्त्रों का उच्चारण करके हवन करने लगे हैं। इस प्रकार महाकवि माघ का वैदिक ज्ञान शिशुपालवधम् में

दिखायी पड़ता है। माघ व्याकरण के प्रकाण्ड पण्डित थे ऐसा शिशुपालवधम् में दिखायी पड़ता है।

टिप्पणी

माघ व्याकरण के प्रकाण्ड पण्डित थे। शिशुपालवधम् का प्रत्येक पद्य उनके व्याकरण के पाण्डित्य का साक्षी है। काव्यशास्त्र का भट्टिरचित 'भट्टिकाव्य' वैयाकरणिक महाकाव्य माना जाता है। तत्पश्चात् काव्यशास्त्र जगत् में माघकाव्य ही पाठकों को व्याकरण की शिक्षा देने वाला ग्रन्थ माना गया है 'शिशुपालवधम्' के द्वितीय सर्ग में वर्णित है कि वह राजनीतिज्ञ किस काम का जिसमें सब कुछ रहते हुए भी वर्णन करने वाला मर्मज्ञ गुप्तचर नहीं है। इसमें शब्दविद्या और राजनीति दोनों का उपमानोंपमेय भाव दिखाते हुए कवि ने अपने वैयाकरणिकज्ञान का परिचय दिया है। यहाँ अपस्पशा के शब्दश्लेष, सद्वृत्ति, सत्रिबन्धना के अर्थश्लेष अनुत्सूत्रपद न्याय के उभयश्लेष और शब्दविहीन के पूर्णोपमा की छटा द्रष्टव्य है–

अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
शब्दविद्यैव नो भाति राजनीतिरपस्पशा।।24।।

महाकवि माघ ज्योतिषशास्त्र में भी प्रवीण थे। तृतीय सर्ग में श्रीकृष्ण के रथारूढ़ होने का वर्णन करते हुए वे कहते हैं–

रराज सम्पादकमिष्टसिद्धेः सर्वासुदिक्ष्वप्रतिधिदृमार्गम्।
महारथः पुष्यरथं रथाङ्गी क्षिप्रं क्षपानाथ इवाधिरूढः।

सुदर्शन चक्र को धारण करने वाले भगवान श्रीकृष्ण इच्छापूर्ति करने वाले सभी दिशाओं में बिना बाधा के चलने वाले और पूर्ण वेग से चलने वाले पुष्य नामक रथ पर ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे– इच्छापूर्ति करने वाले सब दिशाओं में यात्रा हेतु प्रशस्त और क्षिप्रनामक पुष्य नक्षत्र में स्थित चन्द्रमा शोभित हो रहा है। यहाँ पर पुष्यनामक रथ की उपमा पुष्य नक्षत्र से दी गई है जो ज्योतिषशास्त्र में इष्टसिद्धि का सम्पादक है। प्रस्तुत पद्य में माघ ने ज्योतिष विषयक पुष्य नक्षत्र की चर्चा कर अपने ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान का परिचय दिया है। इसी प्रकार प्रथम सर्ग के अन्तिम पद्य में भी नारद द्वारा शिशुपाल के वध के लिए दिए गये सन्देश के प्रत्युतर में भी माघ के ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान परिलक्षित होता है। महाकाव्य के परिशीलन से यह भी पता चलता है कि माघ पशु विद्या में भी महारथी थे। इन्होंने यथास्थान हाथियों, घोड़ों, ऊँटों, सांडों इत्यादि का वर्णन कर पशु विद्या से भी अपना सम्बन्ध दर्शाया है। अट्ठारहवें सर्ग में गजशास्त्र का वर्णन करते हुए वे कहते हैं–

सान्द्रत्वक्का स्तल्पलाश्लिष्टकक्षा आङ्गीं शोभामासुवन्तश्चचतुर्थीम्।
कल्पस्यान्ते मारुतेनोपनुत्राश्चेलुश्चण्ड मण्डशैलाइवेमाः।।46।।

मजबूत कवच वाले पीठ से सटाकर बांधे गये रस्से वाली, चालीस वर्ष की अवस्था से युक्त हाथी प्रलयकाल में वायु द्वारा गति देने से पर्वतों की बड़ी–बड़ी चट्टानों के समान चल पड़े।

गजशास्त्र के अनुसार हाथियों की पूर्ण आयु 120 वर्ष होती है जिसमें 12 दशायें होती हैं अतः चतुर्थी दशा वाले हाथी की आयु 40 वर्ष होती है। इस प्रकार यहाँ हाथियों के आयु सम्बन्धी सूक्ष्मज्ञान को माघ ने बताया है। इसी प्रकार शिशुपालवधम् में अन्य पशु पक्षियों से सम्बन्ध ज्ञान का भी परिचय प्राप्त होता है।

टिप्पणी

संगीत के बिना जीवन नीरस माना जाता है। अतः माघ ने अन्य शास्त्रों के साथ–साथ संगीतशास्त्र को भी आवश्यक माना जाता है। प्रथम सर्ग में नारद की वीणा का वर्णन करते हुए माघ कहते हैं–

रणादिभराघट्टनया नभस्वतः पृथग्भिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः।
स्फुटीभवद्भ्रमविशेषमूर्च्छनामवेक्षमाणं महती मुहुर्मुहुः।48।

वायु के प्रहार से शब्दायमान अनेक श्रुतिसमूह से युक्त स्वरों द्वारा प्रस्फुटित विभिन्न ग्राम मूर्च्छनाओं वाली महती नामक वीणा को बार–बार देखते हुए उस व्यक्ति को श्रीकृष्ण ने नारद समझा।

प्रस्तुत पद्य में माघ ने संगीत से सम्बन्ध सात स्वर (सा–रे–ग–म–प–ध–नी) तीन ग्राम तथा इक्कीस मूर्च्छना की चर्चा कर अपनी संगीतशास्त्र के ज्ञान को उपस्थित किया है। इसी प्रकार अन्यत्र भी संगीतशास्त्र से सम्बन्ध उदाहरण महाकाव्य में मिलते हैं।

माघ कामशास्त्र के भी ज्ञाता थे। संभवतः इन्होंने वात्सयायन विरचित कामसूत्र का भी अध्ययन किया था क्योंकि शिशुपालवधम् में इसका उल्लेख प्राप्त होता है। दसवें सर्ग में इसका उदाहरण देते हुए वे कहते हैं–

सीत्कृतानि भणितं करुणोक्तिः स्निग्धमुक्तमलमर्थवचांसि।
हासभूषणरवाश्च रमण्याः कामसूत्रपदतामुपजग्मुः।।50।।

रमणी के सीत्कार द्वारा किया गया अव्यक्त शब्द विशेष, करुण वचन, प्रेमयुक्त कथन निषेधार्थक वचन हंसने और आभूषणों की ध्वनि ये सभी मानो वात्स्यायन विरचित कामसूत्र के पद हो गए। प्रस्तुत पद्य के अनुशीलन से यही स्पष्ट होता है कि माघ ने कामशास्त्र का सूक्ष्म अध्ययन किया था। इससे उनके प्रत्येक विषय में गहन अध्ययन का संकेत मिलता है।

शिशुपालवधम् के द्वितीय सर्ग में माघ के पाकशास्त्र निपुण होने का उल्लेख है–

सामवादाः सकोपस्य तस्य प्रत्युत दीपकाः।
प्रतप्तस्येव सहसा सर्पिषस्तोयबिन्दवः।।

क्रोधी शिशुपालवध के साथ सन्धि इत्यादि की शान्तिपूर्ण वार्ता इस समय उसी प्रकार उत्तेजनापूर्ण रहेगी जिस प्रकार खौलते हुए घी के ऊपर शीतल जल के छीटें।

यहाँ पर 'घी' इत्यादि शब्दों के प्रयोग से उनके पाकशास्त्र के ज्ञान का पता चलता है। माघ का 'शिशुपालवधम्' सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त महाकाव्य है, परन्तु इस ग्रन्थ के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि यह महाकाव्य साहित्यशास्त्र का ही ग्रन्थ हो सकता है क्योंकि इस महाकाव्य में अनेक ऐसे उद्धरण आए हैं जो साहित्यशास्त्र की अच्छी व्याख्या करते हैं साथ ही छन्द, अलंकार, रस एवं गुणों के सम्यक् प्रयोग विस्तार से हुए हैं। इनका महाकाव्य उस समय की अलंकृत शैली का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करता है।

इस महाकाव्य में अलंकार का बहुत अधिक प्रयोग देखने को मिलता है। इनका अलंकार प्रयोग बहुत ही अनुपम है। यमक अलंकार के उदाहरण के रूप में सर्वत्र उद्धृत माघ का प्रस्तुत पद्य प्रसिद्ध है।

टिप्पणी

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।
मृदुलतान्तलताऽन्तमलोकयत्स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः।।52।।

श्रीकृष्ण ने नये पत्तों से युक्त पलाश वन वाले खिले हुए तथा पराग से पूर्ण कमलों वाले, गर्मी से मलिन पुष्पों वाले तथा पुष्प, समूहों से सुरभित वसन्त ऋतु को देखा। यहाँ पर 'पलाश–पलाश'' पराग–पराग'' लतान्त–लतान्त' तथा सुरभि–सुरभि पदों में यमक अलंकार का प्रयोग दर्शनीय है। इसी प्रकार माघ ने यथावसर अर्थान्तरयास अतिशोक्ति, उपमा, श्लेष, निदर्शना इत्यादि अलंकारों का सुन्दरतम प्रयोग कर शिशुपालवधम् को एक अलंकृत महाकाव्य के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

इसी तरह काव्य के अन्तः तत्त्व छन्द, रस, और गुण, का भी समुचित प्रयोग इन्होंने अपने महाकाव्य में किया है।

महाकवि माघ ने शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित होने के साथ ही व्यवहारिकता की ओर भी पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। वे कहते हैं कि मनुष्य को न तो भाग्य के भरोसे रहना चाहिए और न ही पुरुषार्थ पर अहंकार करना चाहिए। जिस प्रकार सुकवियों के लिए शब्द और अर्थ दोनों आवश्यक होते हैं उसी प्रकार जीवन में भाग्य और पुरुषार्थ दोनों का अवलम्बन करना चाहिए–

नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते।।56।।

उपर्युक्त उद्धरण में उनके व्यावहारिक ज्ञान के दर्शन होते हैं।

महाकवि माघ का पौराणिक ज्ञान भी असीम था। महाकाव्य के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि कवि को पुराणों, महाभारत, भागवत और गीता इत्यादि का पूर्णज्ञान था। माघ के प्रायः प्रत्येक श्लोक से कोई न कोई पौराणिक कथा सम्बद्ध है जगत् के समस्त प्राणी भगवान् के अंगों से उत्पन्न हुए हैं इत्यादि संकेत प्रस्तुत प्रद्य से ज्ञात होता है।

प्रजा इवाङ्गादरविन्दनाभे शम्भोर्जटाजूटतटादिवापः।
मुखादिवाऽथ श्रुतयो विधातुः पुरान्निरीयुर्मुरजिद्ध्वजिन्यः।।57।।

जिस प्रकार विष्णु के शरीर से सभी प्रजाएं, भगवान शंकर की जटाओं से गंगा और ब्रह्मा के मुख से वेद की उत्पत्ति हुई है उसी प्रकार श्रीकृष्ण की सेनाएं द्वारकानगरी से बाहर निकली।

उपर्युक्त पद्य में कमलनाभ भगवान् श्रीहरि की पौराणिक कथा गंगा की उत्पत्ति और विधाता के मुख से वेदोत्पत्ति इत्यादि कथाओं का संकेत मिलता है। इस तरह हम देखते है कि महाकवि ने पुराणों की कथा को आधार बनाकर न केवल अपने पौराणिक ज्ञान का परिचय दिया है अपितु कथाओं से पद्य के अर्थ को अभिव्यक्त करने में तथा उसमें चमत्कार लाने में भी सफलता प्राप्त की है।

इस प्रकार माघ के पाण्डित्य का विवेचन करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि माघ बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे, शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित थे, प्रत्येक विषय का सूक्ष्म ज्ञान उन्हें था, उन्होंने काव्य के आवश्यक पहलुओं पर ध्यान दिया एवं उन्हें जीवन से जोड़ने का भी प्रयास किया। वे कवि एवं सहृदय पाठक दोनों के लिए आदर्श रहे हैं। इनकी रचना में चमत्कार गेयता, वैचित्र्य, अलंकार रस तथा व्यावहारिक जीवन के अनुभव प्राप्त होते हैं।

टिप्पणी

माघ का कर्तृत्व

'एकश्चन्द्रस्तमोहन्ति' उक्ति के अनुसार महाकवि माघ की कीर्ति उनके एकमात्र उपलब्ध महाकाव्य 'शिशुपालवधम्' पर आधारित है, जिसका बृहत्त्रयी और पंचमहाकाव्य में विशिष्ट स्थान है। 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य के अतिरिक्त माघ की अन्य रचनाएं प्राप्त नहीं होती। यद्यपि सुभाषित ग्रन्थों में माघ के नाम से कुछ फुटकर पद्य भी मिलते हैं जिनसे प्रतीत होता है कि माघ की और भी रचनाएं रही होंगी जो कालान्तर में नष्ट हो गयी। माघ के नाम से जिन ग्रन्थों में उनके पद्य मिलते हैं उनका सन्दर्भ अधोलिखित हैं–

बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते पिपासितैः काव्यरसो न पीयते।
''विद्यया केनचिदुद्धृतं, कुलं हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः क्रियाः।।

प्रस्तुत श्लोक महाकवि क्षेमेन्द्र की 'औचित्यविचार चर्चा' में माघ के नाम से उल्लिखित है जो 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य में नहीं मिलता। 'सुभाषिरत्न भण्डागार' में यह पद्य माघ के नाम से प्राप्त होते हैं–

अर्थाः न सन्ति न च मुञ्चति मां दुराशा दानान्न सकुंचितं दुर्ललितं मनो मे।
याञ्चा च लाघवकारी स्ववधे च पापं प्राणाः स्वयं व्रजत किं नु विलम्बितेन।।

इसके अतिरिक्त इनमें ग्रीष्मवर्णनम्, सामान्य नीति, दरिद्रनिन्द्रा, तेजस्वीप्रशंसा, पानगोष्ठीवर्णनम्, चन्द्रोदयवर्णनम्, सुरतकेलिकथनम्, कथनम्, कूटानि तथा रति स्वभाव निन्दा इत्यादि में भी माघ के पद्य प्राप्त होते हैं।

उपर्युक्त सभी पद्यों के अतिरिक्त महाकवि माघ से सम्बन्ध अन्य पद्य भी हैं जो भोजप्रबन्ध और 'प्रबन्धचिन्तामणि' में माघ के मुख द्वारा मुखरित हुए हैं। ये पद्य माघ विरचित किसी प्रकाशित या अप्रकाशित ग्रन्थ से सम्बन्ध हो अथवा न हो किंतु माघ को अमरता प्रदान करने के लिये उनका 'शिशुपालवधम्' ही पर्याप्त है।

'पुरातन–प्रबन्ध–संग्रह' में माघ द्वारा एकमात्र महाकाव्य की रचना किये जाने का कारण बताया गया है। माघ काव्य रचना करने के पश्चात् जब अपने पिता को दिखाते तब वे उनकी प्रशंसा करने के स्थान पर उनके काव्य की निंदा किया करते थे। इसलिये माघ ने काव्य रचना करने के पश्चात् उसे रसोई घर में रख दिया कुछ समय पश्चात् जब वह पुस्तक एक प्राचीन पाण्डुलिपि के समान प्रतीत होने लगी तब माघ उसे अपने पिता के पास ले गये जिसको देखकर उनके पिता ने प्रसन्न होकर कहा कि यह वास्तविक कविता है किन्तु जब माघ ने उन्हें सम्पूर्ण वस्तुस्थिति से अवगत करवाया तो उन्होंने क्रोधित होकर माघ को शाप दिया कि तुमने मुझसे छल किया है, अतः अब तुम कुछ नहीं लिख पाओगे। तत्पश्चात् उनके पिता का स्वर्गवास हो गया और अत्यन्त धनी होने के कारण माघ का जीवन विलासिता पूर्ण हो गया। किन्तु उनके महाकाव्य 'शिशुपालवधम्' ने उनको प्रसिद्ध महाकवि की उपाधि से विभूषित कर दिया।

'शिशुपालवधम्' महाकाव्य 20 सर्गों में विभक्त है जिसमें 1650 पद्य हैं। माघ ने महाभारत को आधार बनाकर अपनी मौलिक कल्पनाओं द्वारा इस महाकाव्य की रचना की है। इसके अन्तर्गत रस, गुण, अलंकारिक काव्य तत्त्वों का एक विशाल संदोह दिखायी पड़ता है। महाकवि माघ यश प्राप्ति के लिये श्रीकृष्ण का गुणकीर्तन कविवंशवर्णनम् के प्रसंग में करते हुए–

श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्य लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारू।
तस्यात्मजः सुकविकीर्तिदुराशयाऽदः काव्यं व्यधत्तशिशुपालवधम्।।68।।

टिप्पणी

संस्कृत समीक्षकों में माघ के प्रति यह भी धारणा प्रचलित है कि महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य के निर्माण से पूर्व भारवि कृत ''किरातार्जुनीयम्'' का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया होगा और उन्हें (भारवि) परास्त करने के लिये ही 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य की रचना की होगी। ''तावद् भा भारवेर्भाति यावन्याघस्य नोदयः उक्ति का भी ही तात्पर्य है क्योंकि ''किरातार्जुनीयम्'' और 'शिशुपालवधम्' के अध्ययन से महाकवि माघ पर भारवि का स्पष्ट प्रभाव दिखायी पड़ता है। अतएव शिशुपालवधम् महाकाव्य लिखने का प्रेरणास्रोत भारवि का किरातार्जुनीयम् भी माना जा सकता है।

इस प्रकार महाकवि माघ का एकमात्र उपलब्ध ग्रन्थ 'शिशुपालवधम्' प्राप्त होता है। लेकिन महाकवि माघ की कृति सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य जगत एवं समीक्षकों के समक्ष अमरकृति बन गयी। एकमात्र रचना से ही महाकवि माघ जीवन के विभिन्न अनुभवों का संदेश पाठकों एवं कवियों के लिए दे गये।

शिशुपालवधम् का महाकाव्यत्व

'काव्य' शब्द संस्कृत भाषा में बहुत प्राचीन है जिसे 'कवि' के कर्म के रूप में देखा जाता है। 'कवेः कर्म काव्यम्' (कवि + व्यत्) यह 'कवि' शब्द च्कु अथवा च्कव् धातु (भ्वादि आत्मनेपद) से बना है जिसके तीन अर्थ हैं–

1. ध्वनि करना,
2. विवरण देना, और
3. चित्रण करना।

इस प्रकार शब्दों के द्वारा किसी विषय का आकर्षक विवरण देना या चित्रण करना ही काव्य कहलाता है। लौकिक संस्कृत भाषा में काव्य–रचना का आरम्भ महर्षि वाल्मीकि से हुआ। इन्होंने राम को नायक बनाकर आदिकाव्य 'रामायण' की रचना की। महर्षि वाल्मीकि ने जिस काव्यपद्धति का आरम्भ किया था उसे कुछ कालतक सर्गबन्ध रचना कहा जाता रहा। बाद में इसे ही महाकाव्य कहा गया। अधिकांश विद्वानों की मान्यता है कि संस्कृत में 'महाकाव्य' विद्या की कल्पना का मूल 'आदिकाव्य' 'वाल्मीकि रामायण' है जिसके उत्तरकाण्ड में निम्नलिखित श्लोक मिलता है।

किम्प्रमाणमिदं काव्यं का प्रतिष्ठा महात्मनः।
कर्ता काव्यस्य महतः क्व चासौ कविपुङ्गव।।69।।

'महाभारत' में भी 'महत' शब्द के प्रयोग के औचित्य को बताया गया है।

महत्त्वाद् भारतत्वाद्च्च महाभारतमुच्यते

महाकाव्य को विधा के रूप में प्रतिष्ठापित करने वाले आचार्यों की लम्बी परम्परा रही है। जिसमें आचार्य भामह, दण्डी, रुद्रट मम्मट, विश्वनाथ और जगन्नाथ इत्यादि प्रमुख हैं। लक्ष्यग्रन्थ पहले बना तत्पश्चात् लक्षणग्रन्थों का निर्माण हुआ। आदिकाव्य 'रामायण' तथा कालिदास के काव्यों का अध्ययन करने के पश्चात् समालों–चकों ने महाकाव्य के शास्त्रीय स्वरूप को तथा आलंकारिकों ने उसके लक्षण को अपने अलंकार ग्रन्थों में प्रस्तुत किया। आलंकारिकों में आचार्य दण्डी का महाकाव्य लक्षण प्राचीनतम्

टिप्पणी

माना जाता है। आचार्य रुद्रट ने काव्यांलंकार में आचार्य दण्डी द्वारा निर्दिष्ट काव्यलक्षणों को कुछ विस्तार से दुहराया है। रुद्रट ने उतने ही विषय के समावेश तथा अलंकार को उचित माना है जिससे कथावस्तु का विच्छेद न हो सके। इन्होंने रस पर विशेष बल दिया है जो उनकी विशेषता है। वे नगर, उद्यानादि वर्णनों को अनिवार्य मानते हैं। प्रामाणिक रूप में आचार्य विश्वनाथ के लक्षण को स्वीकार किया जाता है। इनके समय 1350 ई. तक प्रमुख महाकाव्य लिखे जा चुके थे। 'साहित्यदर्पण' में महाकाव्य का लक्षण इन्होंने इस प्रकार किया है।

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।।
सद्वंश क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।।
शृंङ्गांरवीरशान्तानामेकोऽपि रस इष्यते।
अगांनि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः।।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वासज्जनाश्रयम्।
चत्वारतस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
कवचिन्निन्दा खलादीनाम् सतां च गुणकीर्तनम्।।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।।

1. महाकाव्य का सर्गबद्ध होना आवश्यक है जो प्रबन्ध तत्त्व के गुणार्थ सन्धियों से युक्त हो।
2. उसका नायक पाठकों को संदेश देने वाला धीरोदात्त, क्षत्रिय अथवा देवता होना चाहिए।
3. यह आठ सर्गों से बड़ा और उनके वृत्त्वों (छन्दो) से युक्त होना चाहिए।
4. महाकाव्य की कथा इतिहास प्रसिद्ध हो जिसमें जीवन जगत तथा प्रस्फुटित विभिन्न अंगों का चित्रण सुन्दर रूप में किया जाय।
5. शृंगार वीर और शान्त रसों में से कोई एक रस अंगी रूप में होता है।
6. प्रकृति वर्णन के रूप में नगर, समुद्र पर्वत, सन्ध्या, प्रातःकाल, संग्राम यात्रा तथा ऋतुओं इत्यादि का वर्णन भी अपेक्षित है।
7. शैली में काव्य–सौष्ठव तथा काव्य के समस्त गुण होने चाहिए।

'शिशुपालवधम्' में श्रीकृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर के राज सूय यज्ञ में चेदि नरेश शिशुपाल के वध का वर्णन है। इसमें वर्णनों की प्रचुरता को देखकर यदि इसे वर्णन प्रधान महाकाव्य कहे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। विषय प्रधान काव्य के अन्तर्गत भी यदि इसको लिया जाय तो भी असंगत नहीं होगा। वास्तव में यह काव्य विषय प्रधान ही प्रतीत होता है।

टिप्पणी

इसके नायक श्रीकृष्ण का चरित एक योद्धा के रूप में है। अन्य पात्रों में भी शौर्य प्रधान गुण अधिक मात्रा में मिलते हैं। इस काव्य के आद्योपान्त पारायण से ज्ञात होता है कि उसमें श्रीकृष्ण के चरित के साथ ही क्षत्रिय जाति के क्रियाकलापों का भी सुन्दर वर्णन है। कथानक की दृष्टि से यह उच्चकोटि का महाकाव्य प्रतीत होता है। काव्यशास्त्रीय लक्षणकारों के अनुसार इसमें महाकाव्य के सम्पूर्ण लक्षण प्राप्त होते हैं। काव्य का मुख्य रस वीर है। अन्य रसों का भी यथोचित वर्णन हुआ है। इसका कथानक 'महाभारत' से लिया गया है। यह कथानक श्रीकृष्ण के जीवन की एक मुख्य घटना है। 15 सर्गों में निबद्ध इस काव्य के प्रत्येक सर्ग में न तो 50 से न्यून और नहीं 150 से अधिक श्लोक हैं। काव्य का प्रारम्भ वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण से हुआ है–

श्रियः पतिः श्रीमति शासितु जगज्जगान्निवासो वसुदेवसद्मनि।
वसन् ददर्शावतरन्तमम्बराद्धिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनि हरिः।।75।।

'शिशुपालवधम्' के प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द है तथा एक ही छन्द का प्रयोग मिलता है। सर्ग के अन्त में लक्षणानुसार छन्द परिवर्तन किया गया है। केवल चतुर्थ सर्ग ही इसका अपवाद है जिसमें अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है। 'शिशुपालवधम्' में सूर्योदय, सूर्यास्त इत्यादि का वर्णन भी मिलता है जिसे लक्षणकारों में अपेक्षित माना है। तृतीय सर्ग में द्वारिका नगरी अथवा समुद का वर्णन प्राप्त होता है। सम्पूर्ण चतुर्थ सर्ग में रैवतक पर्वत का मनोहारी वर्णन किया गया है। पंचम सर्ग में मुख्य रूप से श्रीकृष्ण के शिबिर का वर्णन है। षष्ठ, सप्तम और अष्टम सर्ग सहऋतुओं के वर्णन से चमत्कृत है जहाँ पुष्प–चयन और जल–क्रीड़ा का भी प्रसंग आया है। नवम सर्ग में नायिका नायक एवं चन्द्रोदय को वर्णित किया गया है। दशम सर्ग में रतिक्रीड़ा का वर्णन है। एकादश सर्ग प्राभाविक सौन्दर्य को दर्शाता है। द्वादश सर्ग में श्रीकृष्ण की सेना का रैवतक पर्वत से इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान करने एवं यमुना नदी का वर्णन है। अन्तिम तीन सर्गों में युद्ध का वर्णन है।

'शिशुपालवधम्' में प्रसंगानुसार कहीं–कहीं दुर्जनों की निन्दा और सज्जनों की प्रशंसा की गई है। सात्यकि ने भगवान् श्रीकृष्ण और शिशुपाल के व्याज से क्रमशः प्रशंसा और निन्दा की है। सज्जन और दुर्जन के गुण दोषों को सोलहवें सर्ग में बताया गया है। इस महाकाव्य में यज्ञ का भी विवरण मिलता है।

विषय के आधार पर शिशुपालवधम् महाकाव्य का नामकरण किया गया है, क्योंकि शिशुपाल का वध करना ही इस महाकाव्य का अभीष्ट है। माघ के पाण्डित्य ने 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य को आदर्श महाकाव्य का रूप प्रदान कर उसे उच्चकोटि के महाकाव्यों में स्थान दिलाया है। मल्लिनाथ ने 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य की विशिष्टता को इस प्रकार बताया है–

नेताऽस्मिन्यदुनन्दनः स भगवान् वीरप्रधानो रसः
शृंगारादिभिरवांन् विजयते पूर्णा पुनर्वर्णना।
इन्द्रप्रथ गमाद्युपायविषयश्चैद्यावसादः फलं
धन्यो महाकविर्वयं तु कृतिनस्तत्सूक्तिसंसेवनात्।।78।।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह सिद्ध होता है कि शिशुपालवधम् सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त एक महाकाव्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि लक्षणकारों ने महाकाव्य को आधार बनाकर ही महाकाव्य के लक्षण निर्धारित किये हैं।

टिप्पणी

3. श्रीहर्ष – नैषधीयचरित

नैषधीयचरित, श्रीहर्ष द्वारा रचित संस्कृत महाकाव्य है। यह वृहत्त्रयी नाम से प्रसिद्ध तीन महाकव्यों में से एक है। महाभारत का नलोपाख्यान इस महाकाव्य का मूल आधार है। महाभारत हिन्दुओं का एक प्रमुख काव्य ग्रंथ है, जो स्मृति वर्ग में आता है। कभी कभी केवल 'भारत' कहा जाने वाला यह काव्यग्रंथ भारत का अनुपम धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक और दार्शनिक ग्रंथ हैं। विश्व का सबसे लंबा यह साहित्यिक ग्रंथ और महाकाव्य, हिन्दू धर्म के मुख्यतम ग्रंथों में से एक है। इस ग्रन्थ को हिन्दू धर्म में पंचम वेद माना जाता है। यद्यपि इसे साहित्य की सबसे अनुपम कृतियों में से एक माना जाता है, किन्तु आज भी यह ग्रंथ प्रत्येक भारतीय के लिये एक अनुकरणीय स्रोत है। यह कृति प्राचीन भारत के इतिहास की एक गाथा है। इसी में हिन्दू धर्म का पवित्रतम ग्रंथ भगवद्गीता सन्निहित है। पूरे महाभारत में लगभग 1,10,000 श्लोक हैं, जो यूनानी काव्यों इलियड और ओडिसी से परिमाण में दस गुणा अधिक हैं। हिन्दू मान्यताओं, पौराणिक संदर्भो एवं स्वयं महाभारत के अनुसार इस काव्य का रचनाकार वेदव्यास जी को माना जाता है। इस काव्य के रचयिता वेदव्यास जी ने अपने इस अनुपम काव्य में वेदों, वेदांगों और उपनिषदों के गुह्यतम रहस्यों का निरूपण किया हैं। इसके अतिरिक्त इस काव्य में न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, ज्योतिष, युद्धनीति, योगशास्त्र, अर्थशास्त्र, वास्तुशास्त्र, शिल्पशास्त्र, कामशास्त्र, खगोलविद्या तथा धर्मशास्त्र का भी विस्तार से वर्णन किया गया है।

भारतीय संस्कृति में संस्कृत भाषा की जो महत्ता देखी जाती है, उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान संस्कृत साहित्य का भी है। संस्कृत साहित्य में न केवल काव्यशास्त्र समृद्ध है प्रत्युत काव्य परम्परा को दृढ. बनाने वाली कविमाला भी विस्तृत और विलक्षण रही है। वर्तमान समय में काव्य जगत में प्रमुख रूप से दस कवियों को समादृत किया गया है–

आदौ कालिदासः स्यादश्वघोषस्ततः परं
भारविश्च तथा भट्टिः कुमारश्चापि पञ्चमः।
माघरत्नाकरौ पश्चात् हरिश्चन्द्रस्तथैव च
कविराजश्च श्रीहर्षः प्रख्यातः कवयो दश।।

श्रीहर्षरचित नैषधीयचरितम् महाकाव्य बृहत्त्रयी (किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम्, नैषधीयचरितम्) एवं पञ्च महाकाव्य (रघुवंशम्, कुमारसम्भवम्, किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम् एवं नैषधीयचरितम्) की श्रेणी में परिगणित होता है। इन महाकाव्यों को संस्कृत साहित्य के पञ्च प्राण कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। नैषध के लिए उक्त 'नैषधं विद्वदौषधं' सर्वथा समीचीन प्रतीत होता है क्योंकि कार्य के अनुकूल परिणाम के लिए यथा स्वास्थ्य का निरामय होना आवश्यक है, उसी प्रकार ज्ञान वृद्धि हेतु धी का परिमार्जन भी परमावश्यक है। नैषध विद्वज्जनों के लिए वह रामबाण औषधि है, जिसके अध्ययनोपरान्त पाठक के पास स्वस्थ (विद्वान) होने के अतिरिक्त कोई विकल्प शेष नहीं रह जाता। नल कथा का निरूपण करने वाली अमृत वाक् का आस्वादन करके विद्वानों की बुद्धि और प्रखर हो जाती है। जैसा कि स्वयं महाकवि का कथन है–

निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथाः
तथाद्रियन्ते न बुधाः सुधामपि।
नलः सितच्छत्रितकीर्तिमण्डलः
स राशिरासीन्महसां महोज्ज्वलः।। (नैषध 1/1)

टिप्पणी

अर्थात् समस्त दिशाओं में व्याप्त यश वाले राजा नल की कथा का पान करके विबुध जन अर्थात् विद्वज्जन एवं देवता भी स्वस्पृहणीय अमृत का वैसा आदर नहीं करते। ऐसी अमृत से भी उत्कृष्ट नल कथा के प्रणेता, विविध विद्याओं के ज्ञाता, अप्रतिहत मेधा सम्पन्न, प्रकाण्ड पण्डित, कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः की सदुक्ति को चरितार्थ करने वाले महाकवि श्रीहर्ष ने संस्कृत साहित्य के महाकाव्यों की मणिमाला में सुमेरु सदृश उस अत्यन्त विशाल ग्रन्थ रत्न को पिरोया, जिसकी आभा मरकत, वैदूर्य, माणिक्य इत्यादि रत्नों की आभा से कहीं उत्कृष्ट है। यथा हीरे की परख करने में जौहरी ही सक्षम होता है, तथैव नैषधीयचरित महाकाव्य भी रससिद्ध विद्वज्जनों की प्रज्ञा का विषय है, सामान्य मति का नहीं।

तात्पर्य यह है कि नैषध महाकाव्य एक ऐसा सम्पूर्ण शास्त्र है जो वैदुष्य की धारा प्रवाह के कुन्द हो जाने पर उसे पुनः प्रखर बनाने में समर्थ है। परमशास्त्रज्ञ श्रीहर्ष ने अपने महाकाव्य को शृङ्गारामृतशीतगुः ही नहीं बनाया वरन् भारतीय संस्कृति एवं अनेक गम्भीर विषयों से अलङ्कृत किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह महाकाव्य मात्र कृति न रहकर ज्ञान की विविध सरणियों का बृहत्कोश बन गया है। यही कारण है कि नैषध को नैषधं विद्वदौषधं एवं माघ तथा भारवि की रचनाओं से उत्कृष्ट माना जाता है–

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।।
तावद् भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः
उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भरविः।।

नैषध में अर्थगौरव, पदलालित्य एवं उपमा की मंजुलता ही नहीं वरन् भारतीय संस्कृति के प्राण रूप पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम और मोक्षपरक जीवन मूल्यों की भी अभिव्यक्ति होती है। नैषधीयचरित महाकाव्य की विशिष्टता यह रही कि प्रत्येक सर्ग के अन्त में मणिरत्न श्रीहर्ष ने अपने माता–पिता का स्मरण और अपनी रचनाओं का सङ्केत किया, यह अद्भुत कार्य अन्यत्र दुर्लभ है। श्रीहर्ष ने अपने पिता के लिये 'कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरः' और स्वयं के लिये 'मातृचरणाम्भोजिमौलि' विशेषणों का प्रयोग किया, जिससे उनकी अपने पिता के प्रति अतिशय आदर सम्मान एवं माता के प्रति अगाध श्रद्धा का द्योतन होता है। पाण्डित्य और वैदग्ध्यपूर्ण इस कृति के सन्दर्भ में स्वयं महाकवि द्वारा उक्त गर्वोक्ति मिथ्या नहीं कही जा सकती।

महाकाव्य के नायक (नल) और नायिका (दमयन्ती) की जीवनशैली चूंकि कृष्ण अथवा राम सदृश आदर्श तो प्रस्तुत नहीं करती तथापि इनके जीवन से सम्बद्ध किञ्चित् वृत्तान्त तत्कालीन और वर्तमानकालिक समाज की व्यवस्थाओं एवं रीति रिवाजों को अवश्य प्रभावित करते हैं। नल की अपेक्षा दमयन्ती का चरित्र अधिक प्रभावी सिद्ध होता है क्योंकि उसने अपने आचरण से सतीत्व का जो आदर्श रखा वह युगों–युगों तक नारियों के लिये अनुकरणीय और कल्याणकारी है। जैसा कि महाकवि श्रीहर्ष नैषध में उद्धृत करते हैं–

पवित्रमत्रातनुते जगद्युगे स्मृता
रसाक्षालनयेव यत्कथा।
कथं न सा मद्गिरमाविलामपि
स्वसेविनीमेव पवित्रयिष्यति।। (नैषध 1/3)

टिप्पणी

नैषधीयचरित महाकाव्य शृङ्गार रसपरक वह कलश है जिसमें दर्शनशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, अश्वशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र, पाकशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, शकुनशास्त्र इत्यादि अनेक औषधियों का समावेश मिलता है। यह कृति काव्यजगत् के आकाश में सञ्चरण करने वाली आकाश गङ्गा के समान है। अनेक शास्त्रों की परिगणना से यह कहना सम्यक् प्रतीत होता है कि यह महाकाव्य न केवल भारतीय संस्कृति का परिचायक है, प्रत्युत मानव के आचरण में मानवता, सदाचार और बन्धुत्व का वपन करने में भी समर्थ है। इसकी नवीनता के विषय में कवि स्वयं कहते हैं कि–

तस्यागादयमेकविंशगणनः काव्येऽतिनव्ये कृतौ।
भैमीभर्तृचक्रवर्णनमये निसर्गनिसर्गोज्ज्वलः।।

महाकवि श्रीहर्ष की विद्वत्ता के दर्शन नैषध में यत्र तत्र देखने को मिलते हैं किन्तु महाकाव्य में किया गया पञ्चनली वर्णन अपना विशिष्ट स्थान रखता है। दमयन्ती की अभिलाषा से इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण चारों देव भी नल का रूप धारण कर स्वयंवर में पहुँचे। स्वयंवरार्थी राजाओं का परिचय देने के बाद देवी सरस्वती ने दमयन्ती के सन्देह निवारणार्थ छद्म वेषधारी देवों एवं वास्तविक नल का श्लेषोक्ति और काकु वक्रोक्ति से अद्भुत वर्णन प्रस्तुत किया है–

देवः पतिर्विदुषि! नैष धराजगत्या
निर्णीयते न किमु न ब्रियते भवत्या।
नायं नलः खलु तवातिमहानलाभो
यद्येनमुज्झसि वरः कतरः परस्ते।। (नैषध 13/34)

श्लोक में प्रयुक्त पदों के भिन्न–भिन्न पदच्छेद करने पर पाँचों नलों का वर्णन सम्भव है। यथा– धराजगत्या पद का इन्द्र पक्ष में धरा अज ऐसा पदच्छेद होने पर इन्द्र का देवत्व व्यक्त होता है अथवा धरान् पर्वतान् अजति क्षिपति धराजः इन्द्रः। प्रकाशाख्याकार के विभिन्न अर्थों के अनुसार ये देव भू–लोक के स्वामी नहीं हैं। ये देव हैं और पर्वत क्षेपण में समर्थ है। क्या तुम ये निश्चय नहीं करती हो? और इन्हें वरण नहीं करती हो अपितु तुम्हें इन्हें इन्द्र जानकर वरण करना चाहिए अथवा पूर्व दिशा के स्वामी ये इन्द्र निश्चय ही नल नहीं है किन्तु अतितेजस्वी नलाभा से युक्त है अथवा यह नल नहीं देवेन्द्र हैं। अत एव इसके वरण से तुम्हें बडे–बडे. उत्सव, स्वर्ग में नन्दन वन में विहार और सुमेरु पर्वत का क्रीड़ा आदि का लाभ होगा।

'धरो वाहनम् अजः छागः इति धराजः, स एव गतिशरणं' इस प्रकार पुनः देवी का अग्नि के विषय में कथन है कि 'हे दमयन्ती! अज वाहन वाला अग्नि ही जिसकी गति है, ऐसा वह अग्नि कोण रूप दिशा का स्वामी अनल है। क्या यह निर्णय नहीं करती हो? और यदि निर्णय कर लिया है, तो वरण क्यों नहीं करती हो? अपितु तुम्हें इसका वरण करना चाहिए यह निश्चयतः नल नहीं है, नलाभ है अर्थात् नल के समान आभा वाला है अथवा ना–एषः न यह मनुष्य नहीं अपितु कृत्रिम स्वरूप में अग्नि है। जो मात्र तृण में तेजस्विता वाला है शत्रु में नहीं अर्थात् नैषधराज नल ही गति है जिसकी ऐसी तुम प्रकाशमान अग्नि का निर्णय अवश्य ही करती हो, जो कि उचित ही है। अतः यह तुम्हारे द्वारा वरणीय नहीं है।

यम के पक्ष में 'अजति शृङ्गाभ्यां खुरैर्वा तेन या गतिर्गमनं तयोपलक्षितः' अर्थात् पर्वतों को फेंकने वाले महिष की गति से युक्त धर्म नियन्त्रक होने से संसार के रक्षक इस

टिप्पणी

यम का क्या तुम निश्चय नहीं करती हो? अपितु अवश्य करती हो, फिर वरण क्यों नहीं करती? यह दक्षिण दिशा का स्वामी है, यदि तुम इसे छोड़.ती हो तो अन्य कोई श्रेष्ठ वर नहीं मिलेगा अथवा यह नल नहीं है किन्तु तुम्हारे प्राणों का लाभ है। अतः अत्यधिक पूजनीय है। यदि इसे छोड़ोगी तो इससे बड़ा शत्रु कौन होगा? अपितु इसके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं होगा अथवा इसके त्यागोपरान्त क अर्थात् वरुण तुम्हारा वर होगा। यहीं पर देवी दमयन्ती को यम का त्याग करने का सङ्केत भी करती हैं कि धर्मराज जानकर तुम इसमें देव का निश्चय नहीं करती हो ऐसा नहीं है। अपितु अवश्य ही निश्चय करती हो। इसीलिये वरण नहीं करती हो, यही उचित है। यह दैत्यों को आक्रान्त करने वाला यम ही है, नल नहीं। कपटपूर्वक यह नलाकृति वाला दिखाई देता है। इसका त्याग करोगी तो क–तर अर्थात् सुख समुद्र रूप श्रेष्ठ (नल) वर ही प्राप्त होगा।

नल के पक्ष में 'भूलोकस्य रक्षकः राजा, भूकामदेवः नलः' अर्थ प्राप्त होता है। नैषधराज नल हैं गति जिसकी, देवों से भिन्न गुण विशिष्ट मनुष्य नल में तुम पति का निश्चय क्यों नहीं करती? और क्यों वरण नहीं करती? अपितु इसे नल मनुष्य जानकर वरण करना चाहिए। यदि इसे छोड़ती हो तो तुम्हारा अलाभ (हानि) ही होगा क्योंकि इससे भिन्न श्रेष्ठ कौन है? अर्थात् कोई नहीं अथवा यह देव नहीं वरन् भू लोक का स्वामी है अथवा धराजों (मनुष्यों) की गति से इसमें राजा का निश्चय क्यों नहीं करती हो? अथवा यह पृथ्वी पर अज अर्थात् कामदेव है। अत एव इसे मनुष्य जानकर नल का निर्णय कर वरण क्यों नहीं करती हो? अपितु यह वास्तविक नल है, छद्म नहीं। अतः तुम्हें इसका वरण करना चाहिए। अतिमा अर्थात् अत्यन्त सुन्दर बने हुए छद्म नलों (देवताओं) के त्याग में ही लाभ है। स्वाभाविक सौन्दर्य सम्पन्न नल का निश्चय कर उसका वरण करो। इससे श्रेष्ठ अन्य कोई लाभ नहीं होगा। इस प्रकार के विशिष्ट प्रयोग करके देवी ने दमयन्ती को वास्तविक नल और छद्म नलों के भेद से अवगत करवाने का प्रयास किया है। यहाँ कवि की वक्रोक्ति कुशलता व्यञ्जित होती है। विद्वज्जन अपनी प्रज्ञा से दूसरों के आशय को भलीभांति जान लेते हैं। नैषधीयचरितम् के अध्ययनोपरान्त यहाँ मनोवैज्ञानिक पक्ष का भी दिग्दर्शन होता, जहाँ नलाश्व चंचल होने पर भी मौन था क्योंकि वह जानता था कि राजा नल उसके मनोगत भावों से परिचित हैं–

चलाचलप्रोथतया महीभृते
स्ववेगदर्पानिव वक्तुमुत्सुकम्।
अलं गिरा वेद किलायमाशयं
स्वयं हयस्येति च मौनमास्थितम्।। (नैषध 1/60)

न्याय के अनुमान प्रमाण से 'यत्र यत्र धूमः तत्र तत्र अनलः' अर्थात् जहाँ जहाँ धूम है वहाँ अनल है का अनुमान होता है, इसी व्याप्ति को आधार बनाकर सखियों ने दमयन्ती के अश्रु प्रवाह से 'यत्र यत्र वाष्पः तत्र तत्र अनलः' अर्थात् न नलः ऐसा अनुमान से जाना। सखियों का यह ज्ञान भी व्यभिचारी होने से अद्भुत है क्योंकि दमयन्ती के अश्रु प्रवाह को देखकर सखियों ने अनल रूप नल का ज्ञान कर लिया। इससे दमयन्ती की सखियों की अनुमान करने में निपुणता और विवेक का द्योतन होता है। यहाँ सखियों का भैमी के अश्रु प्रवाह की अतिशयता से उसके मनोभिप्राय को जानना उनकी प्रगाढ. मैत्री और विद्वत्ता को ध्वनित करता है क्योंकि विज्ञजन ही पराशय को शीघ्र जान लेते हैं।

टिप्पणी

गिरौ गिरः पल्लवनार्थलाघवे मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता।

(नैषध 9/8)

वाग्मिता अर्थात् 'प्रशस्ता वाक् अस्ति यस्य स वाग्मी, वाग्मिनो भावः'। 'वाचोयुक्ति पटुर्वाग्मी' इत्यमरः। यहाँ वाच से वाचो ग्मिनिः (5/2/124) सूत्र से ग्मिनि प्रत्यय और वाग्मिन् से भावार्थ में तल् प्रत्यय होकर वाग्मिता पद निष्पन्न होता है। वाणी का विस्तार और अर्थ सङ्कुचन दोनों ही वाणी के लिए विष रूप है और अल्प किन्तु सारयुक्त वचन ही पाण्डित्य है। अतः नल ने प्रत्युत्तर देते समय ऐसी ही वाणी का प्रयोग किया जो संक्षिप्त थी। इससे नल की पारदर्शिता और वैदुष्य सूचित होता है। यहाँ महाकवि द्वारा अभिप्राय व्यक्त किया गया है कि विबुद्ध जन सदा ही श्लिष्ट एवं सारगर्भित वाणी में अपना मन्तव्य प्रस्तुत करते हैं।

स धर्मराजः खलु धर्मशीलया त्वयास्ति चित्तातिथितामवापितः।
ममापि साधुः प्रतिभात्ययं क्रमश्चकास्ति योग्येन हि योग्यसङ्गमः।।

(नैषध 9/56)

धर्मशीलया अर्थात् 'धर्मं शीलयतीति धर्मशीला तया' यहाँ धर्म उपपद में रहते शीलि उपधारणे धातु से 'शीलिकामिभक्ष्याचरिभ्योणः (वा. 3/2/1)' से अभ्यस्त अर्थ में ण प्रत्यय का प्रयोग है। धर्माचारिणी दमयन्ती ने धर्मराज को अपने चित्त का अतिथि बना लिया अर्थात् धर्म में अभ्यस्त दमयन्ती का अन्य की ओर आकृष्ट न होकर धर्मराज को अपनी और आकृष्ट करना उचित ही है क्योंकि योग्य से योग्य का सम्बन्ध ही अनुकूल है। यहाँ दमयन्ती की काम की अपेक्षा धर्मप्रधानता व्यक्त होती है। साथ ही 'चकास्ति योग्येन हि योग्यसङ्गमः' सदुक्ति कवि के इस भाव को भी व्यक्त कर देती है कि यथा नैषध जैसे विलक्षण महाकाव्य का प्रणेता उत्कृष्ट एवं मेधा सम्पन्न है तथैव इसका अध्येता भी प्रखर प्रज्ञावान् होना आवश्यक है क्योंकि अयोग्य की योग्य से सम्बद्धता अशोभनीय होती है। योग्य सम्बन्ध की सार्थकता महाभारत में भी द्रष्टव्य है–

ययोरेवं समं वित्तं ययोरेव समं श्रुतम्।
तयोर्विवाहः सख्यं च न तु पुष्टविपुष्टयोः।। (महाभारत – आदिपर्व 131/10)

अपनी प्रगति जांचिए

1. इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए अर्जुन किस पर्वत पर गए?
   (क) इन्द्रवज्र (ख) इन्द्रकील
   (ग) इन्द्रबाण (घ) इन्द्राक्ष
2. तावद् भारवेः भाति यावत् कस्य नोदयः?
   (क) माघस्य (ख) श्रीहर्षस्य
   (ग) किरातस्य (घ) दण्डेः
3. नलस्य अश्वस्य तुलना नैषधीयचरिते श्रीविष्णोः केन अवतारेण सह कृता?
   (क) वराहावतारेण (ख) वामनावतारेण
   (ग) नृसिंहावतारेण (घ) मत्स्यावतोरण

5.4 लघुत्रयी विमर्श

टिप्पणी

संस्कृत के प्रमुख कवियों की सूची में लघुत्रयी के रचनाकार कालिदास का नाम सर्वोपरि है। इनकी बहुत सी प्रसिद्ध रचनाएं हैं। इनका श्रेष्ठ रस "श्रृंगार रस" और अलंकार " उपमा अलंकार" है।इनको निम्नलिखित उपाधियां प्रदान की गयी है – उपमा सम्राट, रघुकर, दीपशिखा, कविता कामिनी विलास, कविकुलगुरु इत्यादि।

कालिदास संस्कृत भाषा के महान कवि और नाटककार थे। उन्होंने भारत की पौराणिक कथाओं और दर्शन को आधार बनाकर रचनाएं की और उनकी रचनाओं में भारतीय जीवन और दर्शन के विविध रूप और मूल तत्व निरूपित हैं। कालिदास अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण राष्ट्र की समग्र राष्ट्रीय चेतना को स्वर देने वाले कवि माने जाते हैं और कुछ विद्वान उन्हें राष्ट्रीय कवि का स्थान तक देते हैं। अभिज्ञानशाकुंतलम् कालिदास की सबसे प्रसिद्ध रचना है। यह नाटक कुछ उन भारतीय साहित्यिक कृतियों में से है जिनका सबसे पहले यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद हुआ था। यह पूरे विश्व साहित्य में अग्रगण्य रचना मानी जाती है। मेघदूतम् कालिदास की एक ऐसी श्रेष्ठ रचना है जिसमें कवि की कल्पनाशक्ति और अभिव्यंजनावादभावाभिव्यञ्जना शक्ति अपने सर्वोत्कृष्ट स्तर पर है और प्रकृति के मानवीकरण का अद्‌भुत स्वरूप से खंडकाव्य में दिखता है। कालिदास वैदर्भी रीति के कवि हैं और तदनुरूप वे अपनी अलंकार युक्त किन्तु सरल और मधुर भाषा के लिए विशेष रूप से जाने जाते हैं। उनके प्रकृति वर्णन अद्वितीय हैं और विशेष रूप से अपनी उपमाओं के लिये जाने जाते हैं। साहित्य में औदार्य गुण के प्रति कालिदास का विशेष प्रेम है और उन्होंने अपने शृंगार रस प्रधान साहित्य में भी आदर्शवादी परंपरा और नैतिक मूल्यों का समुचित ध्यान रखा है।

कालिदास की तीन रचनाओं को मिलाकर एक नाम दिया गया है 'लघुत्रयी'– मेघदूतम, कुमारसंभवम्, रघुवंशम्।

1. मेघदूत

मेघदूतम् महाकवि कालिदास द्वारा रचित विख्यात दूतकाव्य है। इसमें एक यक्ष की कथा है जिसे यक्षराज अलकापुरी से निष्कासित कर देते हैं। निष्कासित यक्ष रामगिरि पर्वत पर निवास करता है। वर्षा ऋतु में उसे अपनी प्रेमिका की याद सताने लगती है। कामार्त यक्ष सोचता है कि किसी भी तरह से उसका अलकापुरी लौटना संभव नहीं है, इसलिए वह प्रेमिका तक अपना संदेश दूत के माध्यम से भेजने का निश्चय करता है। अकेलेपन का जीवन गुजार रहे यक्ष को कोई संदेशवाहक भी नहीं मिलता है, इसलिए उसने मेघ के माध्यम से अपना संदेश विरहाकुल प्रेमिका तक भेजने की बात सोची। इस प्रकार आषाढ़ के प्रथम दिन आकाश पर उमड़ते मेघों ने कालिदास की कल्पना के साथ मिलकर एक अनन्य कृति की रचना कर दी।

मेघदूत की लोकप्रियता भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से ही रही है। जहाँ एक ओर प्रसिद्ध टीकाकारों ने इस पर टीकाएँ लिखी हैं, वहीं अनेक संस्कृत कवियों ने इससे प्रेरित होकर अथवा इसको आधार बनाकर कई दूतकाव्य लिखे। भावना और कल्पना का जो उदात्त प्रसार मेघदूत में उपलब्ध है, वह भारतीय साहित्य में अन्यत्र विरल है।

टिप्पणी

मेघदूतम् काव्य दो खंडों में विभक्त है। पूर्वमेघ में यक्ष बादल को रामगिरि से अलकापुरी तक के रास्ते का विवरण देता है और उत्तरमेघ में यक्ष का वह प्रसिद्ध विरहदग्ध संदेश है जिसमें कालिदास ने प्रेमीहृदय की भावना को उड़ेल दिया है। कुछ विद्वानों ने इस कृति को कवि की व्यक्तिव्यंजक (आत्मपरक) रचना माना है। 'मेघदूत' में लगभग 115 पद्य हैं, यद्यपि अलग अलग संस्करणों में इन पद्यों की संख्या हेर–फेर से कुछ अधिक भी मिलती है। डॉ. एस. के. दे के मतानुसार मूल 'मेघदूत' में इससे भी कम 111 पद्य हैं, शेष बाद के प्रक्षेप जान पड़ते हैं।

भाषा, भावप्रवणता, रस, छन्द और चरित्र–चित्रण समस्त दृष्टियों से मेघदूत अनुपम खण्डकाव्य है। सहृदय रसिकों ने मुक्त कण्ठ से इसकी सराहना की है। समीक्षकों ने इसे न केवल संस्कृत जगत् में अपितु विश्व साहित्य में श्रेष्ठ काव्य के रूप में अंकित किया है। मेघदूत में कथानक का अभाव सा है। वस्तुत यह प्रणयकार हृदय की अभिव्यक्ति है।

विषयवस्तु

अलका नगरी के अधिपति धनराज कुबेर अपने सेवक यक्ष को कर्तव्य–प्रमाद के कारण एक वर्ष के लिए नगर – निष्कासन का शाप दे देते हैं। वह यक्ष अलका नगरी से सुदूर दक्षिण दिशा में रामगिरि के आश्रमों में निवास करने लगता है। सद्योविवाहित यक्ष जैसे – तैसे आठ माह व्यतीत कर लेता है, किंतु जब वह आषाढ़ मास के पहले दिन रामगिरि पर एक मेघखण्ड को देखता है, तो पत्नी यक्षी की स्मृति से व्याकुल हो उठता है। वह यह सोचकर कि मेघ अलकापुरी पहुँचेगा तो प्रेयसी यक्षी की क्या दशा होगी, अधीर हो जाता है और प्रिया के जीवन की रक्षा के लिए सन्देश भेजने का निर्णय करता है। मेघ को ही सर्वोत्तम पात्र के रूप में पाकर यथोचित सत्कार के अनंतर उससे दूतकार्य के लिए निवेदन करता है। रामगिरि से विदा लेने का अनुरोध करने के पश्चात् यक्ष मेघ को रामगिरि से अलका तक का मार्ग सविस्तार बताता है। मार्ग में कौन–कौन से पर्वत पड़ेंगे जिन पर कुछ क्षण के लिए मेघ को विश्राम करना है, कौन–कौन सी नदियाँ जिनमें मेघ को थोड़ा जल ग्रहण करना है और कौन–कौन से ग्राम अथवा नगर होंगे, जहाँ बरस कर उसे शीतलता प्रदान करना है या नगरों का अवलोकन करना है, इन सबका उल्लेख पूर्व मेघ के पद्यों में हुए हैं। उज्जयिनी, विदिशा, दशपुर आदि नगरों, ब्रह्मावर्त, कनखल आदि तीर्थों तथा वेत्रवती, गम्भीरा आदि नदियों को पार कर मेघ हिमालय और उस पर बसी अलका नगरी तक पहुँचने की कल्पना यक्ष करता है। उत्तरमेघ में अलकानगरी, यक्ष का घर, उसकी प्रिया और प्रिया के लिए उसका सन्देश– यह इस गीतिका की विषयवस्तु है।

मेघदूत के स्रोत

मेघदूत के स्रोत के विषय में इन टीकाकारों ने विशद विचार किया है। दक्षिणावर्तनाथ का कथन है कि रामायण से सीता के प्रति हनुमान के मुख से राम के द्वारा प्रेषित सन्देश को मन में रख कर मेघदूत के यक्ष रूप में उपस्थित करते हुए कवि कालिदास ने इस काव्य की रचना की – इल खलु कविः सीतां प्रति हनूमता हारितसन्देशहृदयेन, समुद्वहन् तत्स्थानीयनायकाद्युत्पादनेन सन्देशं करोति।

मल्लिनाथ ने दक्षिणावर्तनाथ की व्याख्या का आधार स्वीकार करते हुए रामायण की प्रेरणा मेघदूत की रचना में पृष्ठभूमि माना है। पर रामायण के पात्रों और मेघदूत के

टिप्पणी

पात्रों के अध्यवसान का उन्होंने न समर्थन किया है, न विरोध ; जबकि पूर्णसरस्वती ने रामायण से कालिदास को प्रेरित मानते हुए दक्षिणावर्तनाथ की इस मान्यता का कड़ा विरोध किया है कि यक्ष – यक्षिणी – वृत्तांत में राम – सीता – वृत्तांत की समाधि है। उनका तर्क है कि यदि मेघदूत में सीता – राघववृत्त का अध्यवसान होता तो कवि उसका उपमान के रूप में या अन्यथा पृथक् उल्लेख क्यों करता?

पर इसके साथ ही पूर्णसरस्वती ने कालिदास को 'रामायण रसायन परायण महाकवि' कह कर उनके कई पद्यों में रामायण की छाया निदर्शित की है। पूर्णसरस्वती ने मेघदूत पर महाभारत का भी प्रभाव माना है। स्थूणाकर्ण नामक यक्ष को कुबेर द्वारा शाप दिये जाने की महाभारतोक्त कथा को उन्होंने विस्तार से साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार नलकूबर और मणिग्रीव नामक यक्षों के शापग्रस्त होने का वृत्तांत भी मेघदूत की रचना में प्रेरक हो सकता है।

तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेघदूत की रचना प्रक्रिया में आदि कवि वाल्मीकि की सर्वातिशायी प्रतिभा और सीताराघव वृत्तांत तथा हनुमत्सन्देश प्रकरण की प्रेरणा आद्यंत बनी रही है। दक्षिणावर्तनाथ तथा पूर्णसरस्वती आदि टीकाकरों ने तो अनुसन्धानपूर्वक रामायण के ऐसे अनेक स्थल मेघदूत के पद्य की व्याख्या में उद्धत किये हैं, जिनका अप्रस्तुत विधान, कल्पना या भाव लेकर कवि ने अन्यच्छाया योनि काव्य का अत्यंत उत्कृष्ट उदाहरण मेघदूत में प्रस्तुत किया है। मेघदूत की यक्षिणी के लिये कवि ने उपमा उत्कृष्ट उदाहरण मेघदूत में प्रस्तुत किया है। मेघदूत की यक्षिणी के लिए कवि ने उपमा दी है – यक्ष को लगता है कि उसकी प्रिया शिशिर में मुरझाई पद्मिनी जैसी हो गयी होगी।

पूर्णसरस्वती के अनुसार यह उत्प्रेक्षा रामायण में सीतावर्णन के निम्नलिखित पद्य पर आधारित है–

हिमहतनलिनीव नष्टशोभा व्यसनपरम्परया निपीयमाना।
सहचररहितेव चक्रवाकी जनकसुता कृपणां दशां प्रपन्ना।।

इसी प्रकार यक्षिणी के वर्णन में कवि ने प्रेम की अनन्यनिष्ठ भावोत्तानता की जो कारुणिक छवि अंकित की है, उसका भी आधार रामायण में हनुमान के द्वारा सीता के दर्शन के समय की गयी इस अभिव्यक्ति में पूर्णसरस्वती ने पाया है–

नैषा पश्यति राक्षस्यो नेमान पुष्पफलद्रुमान्।
एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति।
नैव दंशांश्च मशकान् न कीटान् न सरीसृपान्
राघवापनयेद् गात्रात् त्वदगतेनांतरात्मनाम्।।19।।

इसी प्रकार यक्ष जब कहता है– हे मेघ तुम्हारी सखी यक्षिणी का मन मेरे लिये स्नेह से लबालब भरा है, तो पूर्णसरस्वती इसमें सीता की प्रेममयता प्रतिबिम्बित पाते हैं–

'अन्योन्या राघवेणाहं भास्कर प्रभा यथा'।

इसी प्रकार दक्षिणावर्तनाथ तथा पूर्णसरस्वती ने मेघदूत के अनेक पद्यों में रामायण से भावसाम्य तथा रामायण की प्रेरणा का दिग्दर्शन कराया है। उदाहरणार्थ–

त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या
मीनक्षोभाच्चलकुवलय श्रीतुलामेष्यतीतिम।।

टिप्पणी

मछली के उछलने से हिलते नीलकमल का नेत्र के लिए यह उपमान वाल्मीकि ने विरह–विधुरा सीता के लिए सदृश प्रसंग में प्रयुक्त किया– श्प्रास्पन्दतैकं नयनं सुकेश्या मीनाहतं पद्ममिवातिताम्रम।

अगले छन्द में कालिदास ने यक्ष के मुख से पुनः उत्प्रेक्षा करायी है–

यास्यत्यूरु सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम।

यहाँ भी वाल्मीकि की इस अभिव्यक्ति की छाया इन टीकाकारों ने देखी है–

"प्रस्पन्दमानरू पुनरूरस्था रामरू पुरस्तात स्थितमाचचक्षे।"

वस्तुतः दूतकाव्य की परम्परा का मूल वैदिक संहिताओं में है, जिस पर सन्देशकाव्य विषयक अध्याय में विचार किया गया है।

कथा की पृष्ठभूमि

मेघदूत में महाकाव्य – खण्डकाव्यादि के समान कथा कहना कवि का लक्ष्य नहीं है। कथा का संकेत पहले पद्य में बहुत सूक्ष्म रूप से करके वह यक्ष की मनोदशाओं की गहन मीमांसा तथा तज्जन्य रससिद्धि में तल्लीन हो जाता है। कुछ टीकाकारों ने योगवासिष्ठ में एक पक्ष के शापग्रस्त होने की कथा को मेघदूत के कथानक की इस भूमिका का आधार माना जाता है। तो जैन टीकाकारों ने अलग–अलग रूप में इस कथा का प्रतिपादन किया है। एक कथा में कुबेर को पूजा के लिए सद्योविकसित कमलपुष्प देने के स्थान पर एक दिन पूर्व तोड़े गये बासी पुष्प देने पर यक्ष शापग्रस्त होता है। अन्य कथा में कुबेर के उद्यान का द्वार असावधानी से खुला छोड़ देने पर ऐरावत के द्वारा घुस कर उद्यान तहस–नहस कर दिये जाने के कारण। अन्य कथा में कुबेर के लिए यक्ष ने जो पुष्पशय्या बनायी थी, उस पर स्वयं सो जाने के अपराध के कारण उसे दण्ड विधान दिलाया गया है। एक अन्य कथा में वह पूजा के लिये निर्मित माला पहले अपनी प्रिया को पहना देता है। वस्तुतः मेघदूत में यक्ष की भावाकुलता और यक्ष – यक्षिणी के प्रगाढ़ अनुराग के चित्रण के आधार पर टीकाकारों ने अपने–अपने ढंग से इस प्रकार की कथाओं की कल्पना कर डाली है।

रससृष्टि

मेघदूत विप्रलम्भ श्रृंगार का संस्कृत साहित्य में साहित्य में सर्वोत्कृष्ट काव्य कहा जा सकता है। विरह वेदना की तीव्रता, प्रेम की अनन्यता तथा भावैकतानता का ऐसा अनूठा चित्रण, वह भी गम्भीर जीवनदृष्टि तथा सांस्कृतिक मूल्यबोध के साथ, अन्यत्र नहीं मिलता। कवि ने अपना काव्य उस यक्ष की उस मनोदशा के चित्रण के साथ आरम्भ किया है, जब रामगिरि पर अभिशप्त जीवन व्यतीत करते–करते उसने किसी तरह आठ महीने बिता दिए हैं। मिलन का समय निकट आता जा रहा है, उसकी प्रिया के लिए चिंता और उससे मिलने की आतुरता बढ़ती जा रही है। यक्ष बावला और अर्धविक्षिप्त सा हो गया है। ऐसे में वह स्वप्न, कल्पना और अभिव्यक्ति के द्वारा अपने आप को जिलाए रखना चाहता है। उत्कृष्ट जिजीविषा, भावसान्द्रता और मनुष्य के कल्पनालोक की रम्यता का बेजोड़ समवाय मेघदूत में हम अनुभव करते हैं। हृदय की सुकुमारता और प्रेम के प्रसार का भी बोध मेघदूत देता है, वह भारतीय साहित्य में अन्य सुदुर्लभ है। यक्ष का चित्त कामातुर है, पर प्रेम और विरह की आंच उसके कलुष को धोती चली गयी है। इस प्रकार मेघदूत की रससृष्टि में मनोविज्ञान और चित्त के संस्कार की प्रक्रिया को कविप्रतिभा ने बड़ी कुशलता से मेघदूत में पिरों दिया है।

टिप्पणी

छन्दोविधान तथा भाषाशैली

मेघदूत में आद्यंत केवल 'मन्दाक्रांता' छंद का ही प्रयोग है। इस छन्द की विशिष्ट लय तथा यति से यह समग्र काव्य वेदना, उच्छ्वास–निःश्वास तथा मेघ की द्रुतविलम्बित गति का अनुभव देता है। वस्तुतः कालिदास के द्वारा इस छ्न्द के इतने सटीक प्रयोग के कारण ही आचार्य–परम्परा में यह मान्यता स्थापित हुई कि वर्षा, प्रवास तथा व्यसन के वर्णन के लिये 'मन्दाक्रांता छन्द' विशेष उपयुक्त है। क्षेमेन्द्र कालिदास के मन्दाक्रांता–प्रयोग की सराहना करते हुए कहते हैं–

प्रावृट्प्रवास–व्यसने मन्दाक्रांता विराजते ।27।।

इस छन्द की विशिष्ट संरचना गति, लय, त्वरा और मंथरता का एक साथ बोध कराती है और कालिदास ने तदनुरूप सारे काव्य में भाषा और पदावली का भी अनुकूल प्रयोग किया है, जिसमें यक्ष के अंतर्जगत तथा बाह्य जगत् उसके मन की आतुरता और गम्भीरता, व्यथा और विवेक तथा मेघ को शीघ्र भेजने और त्वरित गति के लिए उसका निर्देश, फिर भी सारे देश में प्रत्येक सुरम्य या पवित्र स्थल पर अटक–अटक कर उसे आगे ले जाने की चाह–इन सबका पर्यावरण इस विशिष्ट भाषा–शैली के द्वारा रचता चला गया है। त्वरा और मंथरता दोनों का भाव समेकित करती हुई शब्दावली भी सजल होकर कवि ने यहाँ गूंथी है – जो लघुगतिः (16), गंतुमाशु व्यस्येत (23), वाहयेदध्वशेषम्– मन्दायंते न खलु सुह्रदामभ्युपेतार्थकृत्याः (41), उत्पतोदङ्मुखः खम्–आदि में पदावली की गत्यात्मकता और त्वरा की अभिव्यक्ति तथा 'खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गंतासि यत्र, क्षीण क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपभुज्य – (13), स्थित्वा तस्मिन् वनचरवधूमुक्तकुञ्जे मुहूर्तम् – (19), कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते (23) नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतोः (26), स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः (37), नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात् खिन्नविद्युत्कलत्रः (41), प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि (44), नानाचेष्टैर्जलद ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम्– (65) – ठहर–ठहर कर अटक–अटक कर आगे बढ़ने का भाव प्रकट करती चलती है। वस्तुतः मेघदूतम् छन्दोविधान और भाषा–शैली की दृष्टि से संस्कृत साहित्य की अनुपम निधि है।

2. रघुवंशमहाकाव्यम्

लघुत्रयी का द्वितीय रत्न है 'रघुवंशम्'।

रघुवंश का आख्यान– इसकी परिधि अत्यंत विशाल है और इसके आख्यान– तत्व का वैविध्य अन्यत्र किसी महाकाव्य में द्रष्टव्य नहीं है। ऐसे आख्यान का परम लाभ है कि कवि को मनोवांछित वर्णनों के सन्निवेश के लिए कोई कृत्रिम प्रयोग नहीं करना पड़ा और साथ ही रस–निष्पत्ति में भावादिकों का उसे एक पूरा संसार ही मिल गया है। इस आख्यान के आधिकारिक और प्रासंगिक भागों में देव, मानव, ऋषि, असुर और राक्षस से लेकर पशु– पक्षी तक विचरण करते हुए मिलते हैं, जिनसे कवि का सहानुभूतिमय काव्यात्मक परिचय है। महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्रवृत्तियों को समान रूप से प्रतिष्ठित किया गया है। निःसंदेह सभी आख्यान– तत्वों को रमणीय काव्यात्मक परिधान देने में कालिदास को सफलता मिली है। पुरातनतम आख्यान– वृत्तों को भी कालिदास ने इस प्रकार चित्रित किया है कि वे शाश्वत जीवंत प्रतीत होते हैं।

टिप्पणी

रघुवंश कालिदास रचित महाकाव्य है। इस महाकाव्य में उन्नीस सर्गों में रघु के कुल में उत्पन्न 29 राजाओं का इक्कीस प्रकार के छन्दों का प्रयोग करते हुए वर्णन किया गया है। इसमें दिलीप, रघु, दशरथ, राम, कुश और अतिथि का विशेष वर्णन किया गया है। वे सभी समाज में आदर्श स्थापित करने में सफल हुए। राम का इसमें विशद वर्णन किया गया है। उन्नीस में से छः सर्ग उनसे ही संबन्धित हैं।

आदिकवि वाल्मीकि ने राम को नायक बनाकर अपनी रामायण रची, जिसका अनुसरण विश्व के कई कवियों और लेखकों ने अपनी–अपनी भाषा में किया और राम की कथा को अपने–अपने ढंग से प्रस्तुत किया। कालिदास ने यद्यपि राम की कथा रची परंतु इस कथा में उन्होंने किसी एक पात्र को नायक के रूप में नहीं उभारा। उन्होंने अपनी कृति 'रघुवंश' में पूरे वंश की कथा रची, जो दिलीप से आरम्भ होती है और अग्निवर्ण पर समाप्त होती है। अग्निवर्ण के मरणोपरांत उसकी गर्भवती पत्नी के राज्याभिषेक के उपरान्त इस महाकाव्य की इतिश्री होती है।

रघुवंश की कथा का आरंभ महाराज दिलीप से होता है। कालिदास ने दिलीप के पहले के राजाओं की चर्चा करते हुए कहा है कि इस वंश का प्रादुर्भाव सूर्य से हुआ है और इसमें मनु पृथ्वी– लोक के सर्वप्रथम राजा हैं। उस मनु वंश में राजा दिलीप हुए। रघुवंश में दिलीप के विषय में तीन सर्ग हैं, जो महाराज रघु के प्रादुर्भाव की भूमिका–रूप में है। रघु के नाम पर इस महाकाव्य को रघुवंश नाम दिया गया है। रघु कालिदास का आदर्श राजा है, क्योंकि वह दिग्विजयी था। दिग्विजय का आख्यान चतुर्थ सर्ग में है। दिग्विजय के प्रसंग से समग्र भारत के विविध प्रदेशों में रघु को घुमाते हुए कवि को उन– उन प्रदेशों की विशेषताओं का वर्णन करते हुए 'रघुवंश' की कथा को कालिदास ने 19 सर्गों में बाँटा है जिनमें राजा दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम, लव, कुश, अतिथि तथा बाद के 29 रघुवंशी राजाओं की कथा गूँथी गई है। इस वंश का पतन उसके अन्तिम राजा अग्निवर्ण के विलासिता की अति के कारण होता है और यहीं इस कृति की इति भी होती है।

इक्कीस सर्गों में वर्णित रघुवंशी राजाओं की नामावली क्रमानुसार निम्नलिखित है– यथा–

दिलीप –रघु–अज–दशरथ– राम–कुश– अतिथि–निषध– नल– नभ– पुण्डरीक– क्षेमधन्वा– देवानीक –अनीह–पारियात्र–शिल–उन्नाभ–वज्रनाभ– शंखण– व्युषिताश्व – विश्वसह–हिरण्यनाभ– कौसल्य– ब्रह्मिष्ठ –पुत्र–पुष्य– ध्रुवसन्धि– सुदर्शन– अग्निवर्ण।

इस कथा के माध्यम से कवि कालिदास ने राजा के चरित्र, आदर्श तथा राजधर्म जैसे विषयों का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। भारत के इतिहास में सूर्यवंश के इस अध्याय का वह अंश भी है जिसमें एक ओर यह संदेश है कि राजधर्म का निर्वाह करनेवाले राजा की कीर्ति और यश देश भर में फैलती है, तो दूसरी ओर चरित्रहीन राजा के कारण अपयश व वंश–पतन निश्चित है, भले ही वह किसी भी उच्च वंश का वंशज ही क्यों न रहा हो!

समालोचकों ने कालिदास का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य रघुवंश को माना है। आदि से अन्त तक इसमें निपुण कवि का विलक्षण कौशल व्यक्त होता है। दिलीप और सुदक्षिणा के तपोमय जीवन से प्रारम्भ इस काव्य में क्रमशः रघुवंशी राजाओं की व

टिप्पणी

दान्यता, वीरता, त्याग और तप की एक के बाद एक कहानी उद्घाटित होती है और काव्य की समाप्ति कामुक अग्निवर्ण की विलासिता और उनके अवसान से होती है। दिलीप और सुदक्षिणा का तपःपूत आचरण, वरतंतु के शिष्य कौत्स और रघु का संवाद, इंदुमती स्वयंवर, अजविलाप, राम और सीता की विमानयात्रा, निर्वासित सीता की तेजस्विता, संगमवर्णन, अयोध्या नगरी की शून्यता आदि का चित्र एक के बाद एक उभरता जाता है और पाठक विमुग्ध बना हुआ मनोयोग से उनको देखता जाता है। अनेक कथानकों का एकत्रीकरण होने पर भी इस महाकाव्य में कवि ने उनका एक दूसरे से एक प्रकार समन्वय कर दिया है जिससे उनमें स्वाभाविक प्रवाह का संचार हो गया है। 'रघुवंश' के अनेक नृपतियों की इस ज्योतिर्मयी नक्षत्रमाला में कवि ने आदिकवि वाल्मीकि के महिमाशाली राम को तेजस्विता और गरिमा प्रदान की है। वर्णनों की सजीवता, आगत प्रसंगों की स्वाभाविकता, शैली का माधुर्य तथा भाव और भाषा की दृष्टि से 'रघुवंश' संस्कृतमहाकाव्यों में अनुपम है।

रघुवंश महाकाव्य की शैली क्लिष्ट अथवा कृत्रिम नहीं वरन् सरल और प्रसादगुणमयी है। अलंकारों का सुरुचिपूर्ण प्रयोग स्वाभाविक एवं सहज सुंदर है। चुने हुए कुछ शब्दों में वर्ण्य विषय की सुंदर झाँकी दिखाने के साथ कवि ने 'रघुवंश' के तेरहवें सर्ग में इष्ट वस्तु के सौंदर्य की पराकाष्ठा दिखलाने की अद्भुत युक्ति का आश्रय लिया है। गंगा और यमुना के संगम की, उनके मिश्रित जल के प्रवाह की छटा का वर्णन करते समय एक के बाद एक उपमाओं की शृंखला उपस्थित करते हुए अन्त में कवि ने शिव के शरीर के साथ–साथ उसकी शोभा की उपमा दी है और इस प्रकार सौंदर्य को सीमा से निकालकर अनंत के हाथों सौंप दिया–

हे निर्दोष अंगोंवाली सीते, यमुना की तरंगों से मिले हुए गंगा के इस प्रवाह को जरा देखो तो सही, जो कहीं कृष्ण सर्पों से अलंकृत है और कहीं भस्मांगराग से मंडित भगवान् शिव के शरीर के समान सुंदर प्रतीत हो रहा है।

कालिदास मुख्यतः कोमल और रमणीय भावों के अभिव्यंजक कवि है। इसीलिए प्रकृति का कोमल, मनोरम और मधुर पक्ष उनकी इस कृति में भी अंकित हुआ है।

रघुवंश काव्य के आरंभ में महाकवि ने रघुकुल के राजाओं का महत्त्व एवं उनकी योग्यता का वर्णन करने के बहाने प्राणिमात्र के लिए कितने ही प्रकार के रमणीय उपदेश दिये हैं। रघुवंश काव्य में कालिदास ने रघुवंशी राजाओं को निमित्त बनाकर उदारचरित पुरुषों का स्वभाव पाठकों के सम्मुख रखा है। रघुवंशी राजाओं का संक्षेप में वर्णन जानना हो तो रघुवंश के केवल एक श्लोकयुग्म में उसकी परिणति इस प्रकार है–

त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम्।।
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्न्ते तनुत्यजाम्।।

(सत्पात्र को दान देने के लिए धन इकट्ठा करनेवाले, सत्य के लिए मितभाषी, यश के लिए विजय चाहनेवाले, और संतान के लिए विवाह करनेवाले, बाल्यकाल में विद्याध्ययन करने वाले, यौवन में सांसारिक भोग भोगने वाले, बुढ़ापे में मुनियों के समान रहने वाले और अन्त में योग के द्वारा शरीर का त्याग करने वाले (राजाओं का वर्णन करता हूँ))

टिप्पणी

रघुवंश की कथा

'रघुवंश' की कथा दिलीप और उनकी पत्नी सुदक्षिणा के ऋषि वसिष्ठ के आश्रम में प्रवेश से प्रारम्भ होती है। राजा दिलीप धनवान, गुणवान, बुद्धिमान और बलवान हैं, साथ ही धर्मपरायण भी। वे हर प्रकार से सम्पन्न हैं परंतु कमी है तो संतान की। संतान प्राप्ति का आशीर्वाद पाने के लिए दिलीप को गोमाता नंदिनी की सेवा करने के लिए कहा जाता है। रोज की तरह नंदिनी जंगल में विचर रही है और दिलीप भी उसकी रखवाली के लिए साथ चलते हैं। इतने में एक सिंह नंदिनी को अपना भोजन बनाना चाहता है। दिलीप अपने आप को अर्पित कर सिंह से प्रार्थना करते हैं कि उन्हें वह अपना आहार बनाए। सिंह प्रार्थना स्वीकार कर लेता है और उन्हें मारने के लिए झपटता है। इस छलांग के साथ ही सिंह ओझल हो जाता है। तब नन्दिनी बताती है कि उसी ने दिलीप की परीक्षा लेने के लिए यह मायाजाल रचा था। नंदिनी दिलीप की सेवा से प्रसन्न होकर पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद देती है। राजा दिलीप और सुदक्षिणा नंदिनी का दूध ग्रहण करते हैं और उन्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है। इस गुणवान पुत्र का नाम रघु रखा जाता है जिसके पराक्रम के कारण ही इस वंश को रघुवंश के नाम से जाना जाता है।

रघु के पुत्र अज भी बड़े पराक्रमी हुए। उन्होंने विदर्भ की राजकुमारी इन्दुमती के स्वयंवर में जाकर उन्हें अपनी पत्नी बनाया। कालिदास ने इस स्वयंवर का सुंदर वर्णन 'रघुवंश' में किया है। रघु ने अज का राज–कौशल देखकर अपना सिंहासन उन्हें सौंप दिया और वानप्रस्थ ले लिया। रघु की तरह अज भी एक कुशल राजा बने। वे अपनी पत्नी इन्दुमती से बहुत प्रेम करते थे। एक बार नारदजी प्रसन्नचित्त अपनी वीणा लिए आकाश में विचर रहे थे। संयोगवश उनकी वीणा का एक फूल टूटा और बगीचे में सैर कर रही रानी इंदुमति के सिर पर गिरा जिससे उनकी मृत्यु हो गई। राजा अज इंदुमती के वियोग में विह्वल हो गए और अन्त में उन्होंने जल–समाधि ले ली।

कालिदास ने 'रघुवंश' के आठ सर्गों में दिलीप, रघु और अज की जीवनी पर प्रकाश डाला। बाद में उन्होंने दशरथ, राम, लव और कुश की कथा का वर्णन आठ सर्गों में किया। जब राम लंका से लौट रहे थे, तब पुष्पक विमान में बैठी सीता को दण्डकारण्य तथा पंचवटी के उन स्थानों को दिखा रहे थे जहाँ उन्होंने सीता की खोज की थी। इसका बड़ा ही सुंदर एवं मार्मिक दृष्टांत कालिदास ने 'रघुवंश' के तेरहवें सर्ग में किया है। इस सर्ग से पता चलता है कि कालिदास की भौगोलिक जानकारी कितनी गहन थी।

पंचम सर्ग में रघु की सभा में कौत्स नामक स्नातक के गुरुदक्षिणा के लिए आने की चर्चा है। रघु ने यद्यपि विश्वजित् यज्ञ में सर्व दान दे दिया था, फिर भी उसने कौत्स को पूरी दक्षिणा देने की व्यवस्था की। अंत में कौत्स के आशीर्वाद से उसे अज नामक पुत्र हुआ। युवावस्था में अज ने विदर्भ राजकन्या इंदुमती के स्वयंवर में भाग लेने के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में उसने नर्मदा तट पर एक विशाल वन्य गज को मारा। वह मरते ही गंधर्व बन गया। उसने अज को सम्मोहनास्त्र दिया। विदर्भ पहुँचने पर अज का विशेष स्वागत हुआ।

छठे सर्ग में इंदुमती अज को स्वयंवर में चुनती है। सातवें सर्ग में लौटते हुए मार्ग में अज का अन्य राजाओं से युद्ध होता है। वे सब पराजित होते हैं। अज का अयोध्या में स्वागत होता है। रघु ने उसे राज्य भार देकर सन्यास ग्रहण किया। आठवें सर्ग में

टिप्पणी

रघु के देहांत का वर्णन है। अज का पुत्र दशरथ हुआ। कालान्तर में इंदुमती नारदवीणा से च्युत पुष्प के आघात से मर गई। अज का रोना– धोना आदि बतलाते हुए कवि ने सर्ग को समाप्त किया है। नौवें से बारहवें सर्ग तक दशरथ और रामविषयक वाल्मीकि– रामायण की कथा संक्षेप में कही गई है।

तेरहवें सर्ग में विमान द्वारा राम के सीता को लेकर अयोध्या लौटने की कथा है। मार्ग में अनेक दृश्य स्थलों से राम के भाविक संबंध थे, जिनकी चर्चा उन्होंने सीता से की। चौदहवें सर्ग में राम का राजकुल के सदस्यों से मिलन का मार्मिक वर्णन है। भरत ने उन्हें अपना राज्य लौटा दिया। रामराज्य का समारंभ हुआ। उस समय सीता गर्भवती थीं। उन्हें गंगा के तट पर बसे हुए तपोवनों को देखने की इच्छा हुई। इधर भद्र नामक दूत ने राम से कहा कि प्रजा आपके द्वारा सीता के पुनर्ग्रहण को ठीक नहीं समझती। राम ने लक्ष्मण से कहा कि सीता को वन में छोड़ आओ। लक्ष्मण ने ऐसा ही किया। वहाँ सीता की रक्षा करने के लिए वाल्मीकि– मुनि आ पहुँचे। वाल्मीकि ने राम के इस कुकृत्य की भर्त्सना की और सीता को अपनी पुत्री की भाँति रखा। इधर अयोध्या में राम ने अश्वमेध यज्ञ का समारंभ किया।

पंद्रहवें सर्ग में शत्रुघ्न राम के द्वारा नियोजित होने पर मथुरा– प्रदेश के लिए प्रयाण करते हैं। वहाँ उन्हें ऋषियों के संतापक लवणासुर को मारना था। शत्रुघ्न वाल्मीकि के आश्रम पर रात में रहे। उसी रात सीता को दो पुत्र हुए। शत्रुघ्न को यह समाचार मिला। उन्होंने मथुरा जाकर लवणासुर का वध किया।

वाल्मीकि ने सीता के पुत्र लव और कुश को संस्कार संपन्न करके, उन्हें अपनी कृति रामायण का गायन सिखाया। शम्बूक– वध के पश्चात् राम ने अश्वमेध का घोड़ा छोड़ा।

सोलहवें से उन्नीसवें सर्ग तक कुश से लेकर अग्निवर्ण तक राजाओं का क्रमशः चरिताख्यान है। कुश ने एक दिन स्वप्न देखा कि अयोध्या की अधिष्ठात्री देवी नगरी की दुर्दशा का वर्णन कर रही है। तब तो कुश ने कुशावती श्रोत्रियों को दे डाली और अयोध्या आ गए। सरयू में विहार करते हुए कुश को कुमुद्वती नामक नाग– कन्या विवाह के लिए मिली। सत्रहवें सर्ग में कुश के इंद्र के लिए युद्ध करते हुए मारे जाने का वर्णन है। उसके पश्चात् उसका पुत्र अतिथि राजा हुआ। अठारहवें सर्ग में निषध नल, नभ, पुण्डरीक, क्षेमधन्वा, देवानीक, अनीह, शिल, उन्नाभ, वज्रनाभ, शंखण, व्युषिताश्व, विश्वसह, हिरण्यनाभ, कौशल्य, ब्रह्मिष्ठ, कमललोचन, पुष्य, ध्रुवसंधि और सुदर्शन राजा हुए। उन्नीसवें सर्ग में सुदर्शन का पुत्र अग्निवर्ण राजा हुआ। वह नाममात्र का शासक था। उसने सारा समय रानियों के साथ विलास में बिताया। उसे अंत में यक्ष्मारोग हो गया, जिससे वह निस्संतान मर गया। उसके मरने के समय उसकी पटरानी गर्भवती थी। वही सिंहासन पर बैठी। यहीं काव्य का अंत होता है।

कालिदास के महाकाव्य का नाम रघुवंश ही क्यों है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। हरिवंश के नाम पर रघुवंश का नाम कालिदास के स्मृति– पटल पर आया होगा – ऐसा प्रतीत होता है। हरिवंश में रघुवंश के राजाओं की नामावली भी मिलती है, पर इस सूची में दिलीप से पहले के और अग्निवर्ण से परवर्ती राजाओं की भी गणना की गई है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि रघुवंश की आख्यान– परिधि अत्यंत विशाल है और इसके आख्यान– तत्त्व का वैविध्य अन्यत्र किसी महाकाव्य में द्रष्टव्य नहीं है। ऐसे

टिप्पणी

आख्यान का परम लाभ है कि कवि को मनोवांछित वर्णनों के सन्निवेश के लिए कोई कृत्रिम प्रयोग नहीं करना पड़ा है और साथ ही रस– निष्पत्ति में उसे भावादिकों का एक पूरा संसार ही मिल गया है। इस आख्यान के आधिकारिक और प्रासंगिक भागों में देव, मानव, ऋषि, असुर और राक्षस से लेकर पशु– पक्षी तक विचरण करते हुए मिलते हैं, जिनसे कवि का सहानुभूतिमय काव्यात्मक परिचय है। महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्रवृत्तियों को समान रूप से प्रतिष्ठित किया गया है। निस्संदेह सभी आख्यान– तत्वों को रमणीय काव्यात्मक परिधान देने में कालिदास को सफलता मिली है। पुरातनतम आख्यान– वृत्तों को भी कालिदास ने इस प्रकार चित्रित किया है कि वे शाश्वत जीवंत प्रतीत होते हैं।

नायक की श्रेष्ठता ओर उच्चता से रघुवंश का काव्य– गौरव सर्वातिशाली है। इस महाकाव्य के आरंभ में रघुवंश की गुणगरिमा का सम्पुट पाठ करके दिलीप का जो वर्णन किया गया है, वह काव्य को उच्चतम स्तर पर ला देता है। यथा–

तं वेधा विदधे नूनं महाभूतसमाधिना।
तथा हि सर्वे तस्यासन् परार्थैकफला गुणाः।।

रघु को कालिदास ने इंद्र से भी बढ़ कर माना है।

तमीशः कामरूपाणामत्याखण्डलविक्रमम्।

वास्तव में वैदिक युग के पश्चात लोग इंद्र को भूल से रहे थे। इंद्र के पराक्रम को तत्कालीन समाज के समक्ष रख कर उसे कर्मण्य बना देने के लिए ही कवि ने पुनः– पुनः उन्हें राजाओं के साथ मिल– जुल कर काम करते हुए दिखाया है। कवि की दृष्टि में राजा दिलीप और रघु इंद्र के समान है। इंद्र ने घोड़ा ले जाते हुए रघु ने देखा और इंद्र के न मानने पर उससे युद्ध किया। उसके पराक्रम को देखकर–

तुतोष वीर्यातिशयेन वृत्रहा

कालिदास के अनुसार देवता मनुष्यों के साथ मिलते– जुलते थे। मगध– नरेश के असंख्य यज्ञों में इंद्र को पुनः–पुनः आना पड़ता था। परिणाम हुआ–

क्रियाप्रबन्धादयमध्वराणामजस्रमाहूतसहस्रनेत्रः।
शच्याश्चिरं पाण्डुकपोललम्बान्मन्दारशून्यानलकांश्चकार।।

और तो और– इंद्र ने बैल का रूप धारण करके रघुवंश के राजा ककुत्स्थ के लिए असुरों के साथ लड़ने में वाहन का काम किया था। केवल इंद्र ही नहीं, स्वयं इंद्राणी भी मानव – लोक में महान् कार्य – सम्भारों में सम्मिलित होता है।

इंद्र की सहायता युद्ध में करना में यह रघुवंश का कुलव्रत था। रघुवंश का परवर्ती राजा ब्रह्मिष्ठ मरने के पश्चात् इंद्र का मित्र बना।

कालिदास ने इंद्रादि देवताओं की बारंबार चर्चा अलंड्कारों में उपमान बना कर भी की है। कवि के शब्दों में दशरथ मानों पृथिवी पर अवतीर्ण इंद्र हैं। पर इतना ही नहीं। इंद्र के आदर्श को अग्रेसर करने के लिए कवि इस चर्चा को नहीं छोड़ना चाहता कि–

स किल संयुगमूर्ध्नि सहायतां
मघवतः प्रतिपद्य महारथः।

स्वभुजवीर्यमगापयदुच्छितं
सुरवधूरवधूतभयाः शरैः।

टिप्पणी

इस श्लोक के द्वारा समकालिक राजाओं को इंद्र से भी बढ़ कर पराक्रमी बनने का प्रोत्साहन देना कवि का अभिमत है।

रघुवंश में कालिदास की शैली रस– प्रधान है। रस की साक्षात् निष्पत्ति के लिए उपयोगी अलंकारों और गुणों का संयोजन कवि ने स्थान– स्थान पर किया है। कालिदास ने रस तथा अलंकारादि के द्वारा काव्य– सौंदर्य में जो विशेष चारुता संपादित की, उससे प्रभावित होकर आलोचकों ने उन्हें रसेश्वर और उपमा– सम्राट की उपाधि दी है।

रघुवंश में राजाओं के जीवन– चरित्र के प्रकरण में साधारणतः वीररसात्मक घटनाओं की विशेषता होनी ही चाहिए थी। तभी तो क्षात्रधर्म से राष्ट्र की सुरक्षा का परम प्रयोजन कालिदास के द्वारा सिद्ध हुआ है।

कालिदास की शैली को प्राचीन काल से ही भारत में सर्वोपरि प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। मानव की सुकुमार भावनाओं का स्पर्श करके उन्हें यथोचित संस्कार देने के काम में कालिदास को अनुपम सफलता मिली है।

रघुवंश में कवि ने बहुविध छंदों का प्रयोग किया है, जिससे उसके प्रौढ़ पाण्डित्य और काव्याभ्यास का चिर अनुभव प्रकट होता है। इसमें अनुष्टुप, प्रहर्षिणी, उपजाति, मालिनी, वंशस्थ, हरिणी, वसंततिलका, पुष्पिताग्रा, वैतालीय, तोटक, मन्दाक्रान्ता, द्रुतविलम्बित, शालिनी, औपच्छन्दसिक, रथोद्धता, स्वागता, मत्तमयूर तथा नाराच छंदों की छटा है। इससे प्रतीत होता है कि कालिदास ने कठिन और अप्रचलित छंदों का भी प्रयोग किया है।

कालिदास कवि होने के नाते साक्षात् उपदेश देते हुए सामने प्रायः नहीं आते, पर वे मान व व्यक्तित्व के विकास के लिए समुचित पथ का प्रदर्शन अलंकार– व्याज से करते हैं। यथा–

इन्द्रियाख्यानिव रिपूंस्तत्त्वज्ञानेन संयमी।।

(संयमी तत्त्वज्ञान से इंद्रियों को वश में रहता है।)

3. कुमारसम्भवम्

लघुत्रयी का तीसरा रत्न है 'कुमारसम्भम्'।

कुमारसम्भवम् (अर्थ – कुमार का जन्म) महाकवि कालिदास विरचित कार्तिकेय के जन्म से संबंधित, महाकाव्य की गणना संस्कृत के पंच महाकाव्यों में भी की जाती है।

इस महाकाव्य में अनेक स्थलों पर स्मरणीय और मनोरम वर्णन हुआ है। हिमालयवर्णन, पार्वती की तपस्या, ब्रह्मचारी की शिवनिंदा, वसन्त आगमन, शिवपार्वती विवाह और रतिक्रिया वर्णन अदभुत अनुभूति उत्पन्न करते हैं। कालिदास का बाला पार्वती, तपस्विनी पार्वती, विनयवती पार्वती और प्रगल्भ पार्वती आदि रूपों में नारी का चित्रण अद्‌भुत है।

कवित्व व काव्य–कला के हर प्रतिमान की कसौटी पर 'कुमारसंभवम्' एक श्रेष्ठ महाकाव्य सिद्ध होता है। मानव–मन में कवि की विलक्षण पैठ सर्वत्र दृष्टिगोचर होती

टिप्पणी

है। पार्वती, शिव, ब्रह्मचारी आदि सभी पात्र मौलिक व्यक्तित्व व जीवन्तता से सम्पन्न हैं। प्रकृति–चित्रण में कवि का असाधारण नैपुण्य दर्शनीय है। काम–दहन तथा कठोर तपस्या के फलस्वरूप पार्वती को शिव की प्राप्ति सांस्कृतिक महत्त्व के प्रसंग हैं। कवि ने दिव्य दम्पत्ती को साधारण मानव प्रेमी–प्रेमिका के रूप में प्रस्तुत कर मानवीय प्रणय व गार्हस्थ्य जीवन को गरिमा–मंडित किया है।

यह महाकाव्य 17 सर्गों में समाप्त हुआ है, किंतु लोक धारणा है कि केवल प्रथम आठ सर्ग ही कालिदास रचित हैं। बाद के अन्य नौ सर्ग अन्य कवि की रचना हैं। काव्य आठ सर्गों में ही शिवपार्वती समागम के साथ कुमार के जन्म की पूर्वसूचना के साथ ही समाप्त हो जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि आठवें सर्ग मे शिवपार्वती के संभोग का वर्णन करने के कारण कालिदास को कुष्ठ हो गया और वे तत्पश्चात् लिख न सके। एक मत यह भी है कि उनका संभोगवर्णन जनमानस को रुचा नहीं इसलिए उन्होंने आगे नहीं लिखा। जनमानस का यही प्रकोप संत गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस में निम्नलिखित चौपाई में युग परिवर्तन के साथ प्रकट हुआ है–

'जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहि सिंगार न कहहुं बखानी।

कथा

कुमारसंभव का शाब्दिक अर्थ है– 'कुमार का जन्म'। यहाँ 'कुमार' से आशय शिव–पार्वती के पुत्र कार्तिकेय या स्कन्द से है। कवि का उद्देश्य शिव–पार्वती की तपस्या, प्रेम, विवाह और उनके पुत्र कुमार कार्तिकेय के जन्म की पौराणिक कथा को एक महाकाव्य का रूप दिया है। कालिदास ने कथा के सूत्र कहाँ से लिये, यह बताना कठिन है। वैसे 'शिव महापुराण' व अन्य पुराणों में इस कथा के अनेक प्रसंग व सूत्र मिलते हैं, पर पुराणों का रचनाकाल अनिश्चित होने के कारण यह बताना सम्भव नहीं कि कालिदास ने पुराणों से यह कथा ली है या पुराणों ने ही कालिदास से काव्य से प्रभावित होकर इसके अनेक प्रसंगो व अभिव्यक्तियों को अपना लिया है। उदाहरण के लिए शिव महापुराण में कुमारसम्भव की अनेक पंक्तियां, वाक्य, शब्द–प्रयोग व प्रसंग उसी रूप में उपलब्ध है। 'रामायण' के बालकाण्ड के सैंतीसवें सर्ग तथा 'महाभारत' के वन पर्व के अध्याय 225 में भी कार्तिकेय या स्कंद के जन्म की कथा संक्षेप में कही गई है।

इसमें वर्णित कथा संक्षेप में इस प्रकार है–

पर्वतराज हिमालय के मैनाक नामक पुत्र और गौरी नामक कन्या हुई। कन्या पार्वती और उमा नाम से भी विख्यात हुई। जब कन्या हुई तो एक दिन हिमवान् के घर नारद आए और भविष्यवाणी की कि कन्या का विवाह शिव से होगा। यह भविष्यवाणी सुनकर हिमालय निश्चिंत हो गए। उधर शिव हिमालय के शिखर पर तप कर रहे थे। हिमालय ने एक सखी के साथ उमा को उनकी परिचर्या के लिये भेज दिया और उमा भक्तिभाव से शिव की सेवा करने लगी।

उन्हीं दिनों तारकासुर से युद्ध में देवता लोग पराजित हो गए। दैत्य अनेक प्रकार के छल करने लगा। तब इन्द्र सहित सारे देवता ब्रह्मा के पास आए। तारकासुर के निमित्त योग्य सेनापति की माँग की। तब ब्रह्मा ने कहा कि शंकर के वीर्य से उत्पन्न पुरूष ही तुम्हारा योग्य सेनापति हो सकता है। इसलिए तुम लोग प्रयास करो जिससे शिव पार्वती के प्रति आसक्त हों। यदी शिव ने पार्वती को स्वीकार कर लिया तो पार्वती

टिप्पणी

से जो पुत्र होगा तो उसके सेनापति बनने पर तुम्हारी विजय होगी। तत्पश्चात् इंद्रादि देवता शिव के विरक्त भाव को हटाने के उपाय पर विचार करने के लिये एकत्र हुए। जब मदन उस सभा मे आए तो इंद्र ने उनसे अनुरोध किया कि वे अपने मित्र वसन्त के साथ शिव के तपस्या स्थान पर जाएं और शिव को पार्वती के प्रति आसक्त करें। तदनुसार मदन अपनी पत्नी रति और मित्र वसन्त को लेकर शंकर के आश्रम में पहुँचा। जब पार्वती कमलबीज की माला अर्पण करने शिव के निकट पहुँची और शिव ने उसे लेने के लिये हाथ बढाया, तब मदन ने अपने धनुष पर मोहनास्त्र चढ़ाया। तत्क्षण शिव का मन विचलित हुआ। शंकर ने इस प्रकार मन के अकस्मात् विकृत होने का कारण जानने के लिये चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। उन्हें शरसंधान करता मदन दिखाई पड़ा। उसे देखते ही शिव आग बबूला हो गए; उनके तृतीय नेत्र से अग्निज्वाला प्रकट हुई और मदन उसमें भस्म हो गया।

रति अपने पति को इस प्रकार भस्म होते देख विलाप करने लगी और वसंत से चिता तैयार करने को कहा और स्वयं प्राण त्यागने को तैयार हुई। तब आकाशवाणी हुई कि थोड़ा धैर्य धारण करो, तुम्हें तुम्हारा पति पुन प्राप्त होगा।

उधर शिव नारी संपर्क से बचने के लिए अंतर्धान हो गए। मदन के भस्म होने और शिव के अंतर्धान हो जाने से पार्वती ने अपना सारा मनोरथ विफल होते देखा और यह सोचकर कि यह रूपसौंदर्य व्यर्थ है, वे शिव को प्रसन्न करने के लिए एक पर्वत शिखर पर जा कर उग्र तप करने लगी। कुछ काल के अनन्तर शिव का मन पिघला उन्होंने पार्वती को स्वीकार करने का विचार किया। किन्तु इससे पूर्व उन्होंने पार्वती की परीक्षा करने का निश्चय किया और वे एक तपस्वी के आश्रम में पहुँचे। पार्वती ने अतिथि के रूप में उनका समुचित सत्कार किया। तदन्तर उस तरुण तपस्वी ने पार्वती से जिज्ञासा की कि किसकी प्राप्ति के लिए इतनी उग्र तपस्या कर रही हो। अतिथि के प्रश्न को सुनकर पार्वती लज्जित हुई और अपने मनोभाव प्रकट करने मे संकोच करने लगी तब उनकी सखी ने शिव की प्राप्ति की इच्छा की बात कही। यह सुनकर तपस्वी वेशधारी शिव, शिव के दुर्गुणों और कुरूपता आदि का उल्लेख कर उनकी निन्दा करने लगा। पार्वती को यह शिव निन्दा सहज नहीं हुई और वे उसे डाँटने लगी। तब शिव अपने स्वरूप में प्रकट हुए और उनका हाथ पकड़ लिया।

तत्पश्चात् शिव ने सप्तर्षि को बुलाकर हिमालय के पास भेजा। उन्होंने उनसे जाकर बताया कि शिव ने पार्वती का पाणिग्रहण करने की इच्छा प्रकट की है। तब विवाह का निश्चय हुआ और विवाह की तैयारी होने लगी। सप्तमातृकाएँ दूल्हे के योग्य वस्त्र लेकर आई पर शिव ने उन सब को स्वीकार नहीं किया और नन्दी पर सवार होकर ही चले। पश्चात विवाह की सारी क्रियाएँ हुई। विवाह संपन्न होने पर शिव सहित पार्वती ने ब्रह्मा को प्रणाम किया। ब्रह्मा ने आशीर्वाद दिया, तुम्हें वीर पुत्र हो। अप्सराओं ने आकर वर–वधू के सम्मुख एक नाटक प्रस्तुत किया। नाटक समाप्त होने के बाद इंद्र ने शिव से मदन को जीवित करने का अनुरोध किया। अंत में शिव और पार्वती के एकांत मिलन की चर्चा विस्तार से की गई है।

एक मत यह भी है कि इस काव्य की एकमात्र मूल में से आठवें सर्ग के बाद के पन्ने किसी कारण से लुप्त या नष्ट हो गए, जिनमें कुमार–जन्म का वृत्तान्त रहा होगा। एक सर्ग समाप्त होने के बाद कवि की अकस्मात मृत्यु हो गई और यह अधूरा ही रह

गया, पर यह कल्पना उचित प्रतीत नहीं होती, क्योंकि फिर तो 'कुमारसम्भव' को कालिदास की अंतिम रचना मानना पड़ेगा, जबकि 'रघुवंश' कुमारसंभव' के बाद का काव्य मालूम पड़ता है।

टिप्पणी

नौवें से सत्रहवें सर्ग तक का भाग कालिदास कृत नहीं है, इस विषय में अनेक तर्क दिये गये हैं। अरुणगिरिनाथ व मल्लिनाथ ने 'कुमारसंभव' के आरम्भिक आठ सर्गों पर ही अपनी टीका लिखी है। यह सम्भवतः इसलिए हुए कि उस समय आगे के सर्ग उन्हें उपलब्ध नहीं थे। काव्यशास्त्र के दूसरे आचार्यों ने प्रारम्भ के आठ सर्गों में से ही अपने ग्रन्थों में श्लोक उद्धृत हैं, आगे के नौ सर्गो में से एक भी उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया। तीसरे इन सर्गों में कवित्व व काव्य कला का स्तर पूर्व के आठ सर्गों की तुलना में निम्नतर है, उसे कालिदास के कवित्व शक्ति के अनुरूप नहीं माना जा सकता है। इस भाग के श्लोकों में व्याकरण की अनेक त्रुटियाँ छन्दोभंग, यतिभंग तथा अनेक दोष दिखाई देते हैं, जिससे कोई सन्देह नहीं रह जाता कि इन परवर्ती नौ सर्गों की रचना बाद में किसी अज्ञातनामा कवि ने की और कालिदास की मूल रचना के साथ उसे मिला दिया।

बाद के नौ सर्गों में कुमार कार्तिकेय के जन्म बाल्यकाल, युवा होने पर उसके द्वारा देवसेना का नेतृत्व तथा अत्याचारी तारकासुर वध आदि का वृत्तान्त विस्तार से प्रस्तुत किया है। इस प्रकार नौ सर्गों के इस अज्ञात लेखक ने काव्य के नाम को ध्यान रखते हुए कुमार कार्तिकेय के जन्म आदि प्रसंगों की रचना कर अपनी दृष्टि से कालिदास के अपूर्ण काव्य को पूरा करने का प्रयास किया है

सर्गानुसार कथानक

प्रथम सर्ग : कालिदास ने कुमारसम्भव को हिमालय–वर्णन से आरम्भ किया है। प्रथम सर्ग के प्रारम्भिक सत्रह पद्यों में कवि ने हिमालय पर्वत का भव्य व गरिमापूर्ण चित्रण करते हुए इसकी विविध छवियों, प्राकृतिक वैभव इसके निवासियों के कार्य–कलापों तथा पर्वतराज के पुराकथात्मक व्यक्तित्व का उदात्त चित्रण किया है।

अस्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्यां इव मानदण्डः।।

अर्थ– (भारतवर्ष के) उत्तर दिशा में देवताओं की आत्मा वाला पर्वतों का राजा हिमालय है, जो पूर्व और पश्चिम दोनों समुद्रों का अवगाहन करके पृथ्वी के मापने के दण्ड के समान स्थित है। तात्पर्य यह है कि हिमालय का विस्तार ऐसा है कि वह पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओं के समुद्रों को छू रहा है।

तत्पश्चात् पार्वती के जन्म, बाल्यकाल, यौवन–प्राप्ति व विलक्षण सौंदर्य का परिचय देते हुए नारद की भविष्यवाणी का उल्लेख किया गया है, जिसके अनुसार पार्वती का विवाह शिव के साथ ही होना कहा गया है। इस भविष्यवाणी पर विश्वास कर पिता हिमालय पुत्री को कैलास पर्वत पर तपस्यारत भगवान् शिव की सेवा के लिये भेज देते हैं।

द्वितीय सर्ग : दूसरे सर्ग में इन्द्र आदि सभी देवता तारकासुर के अत्याचारों से त्रस्त होकर ब्रह्माजी के पास जाकर अपनी कष्ट–कथा सुनाते है तथा प्रार्थना करते हैं कि आप ही तारकासुर का दमन कर सकते हैं। ब्रह्माजी अपनी विवशता प्रकट करते हैं कि

टिप्पणी

मेरे ही वरदान से वह इतना शक्तिशाली हुआ है, मैं स्वयं उसका संहार नहीं कर सकता। वे देवताओं को उपाय बताते हैं कि शिव का यदि पार्वती से विवाह हो जाए तो इस युगल से उत्पन्न पुत्र तारकासुर को नष्ट कर सकता है। शिव का वीर्य धारण करने की क्षमता पार्वती के अतिरिक्त किसी में नहीं है। इसलिए आप लोग कोई ऐसा उपाय करें, जिससे तपस्या में तल्लीन शिव का मन पार्वती में अनुरक्त हो। ब्रह्मा जी के इस परामर्श के पश्चात् इन्द्र कामदेव को स्मरण करते हैं। कामदेव के देवराज इन्द्र के सम्मुख उपस्थित होने के साथ ही सर्ग की समाप्ति होती है।

तृतीय सर्ग : कामदेव के उपस्थित होने पर देवराज इन्द्र ने उन्हें आदरपूर्वक अपने पास बैठाया। कामदेव इन्द्र से विनम्र होकर उनकी चिन्ता का कारण ज्ञात करने लगे। कामदेव अपनी वीरता की प्रशंसा करते हुए बोले, कि मैं शिवजी तक को अपने वाणों का कौशल दिखा सकता हूँ। देवराज इन्द्र ने कामदेव को उत्साहित करते हुए कहा कि ब्रह्मा जी से ज्ञात हुआ है कि महादेव से उत्पन्न पुत्र देवताओं का सेनापति बनाया जाय तो देवताओं की विजय अवश्य होगी। महादेव का वीर्य धारण करने की क्षमता केवल पर्वतकन्या पार्वती में ही है। पार्वती अपने पिता से आज्ञा प्राप्त करके महादेव की सेवा में लगी हुई हैं। आप अपने मित्र वसन्त के साथ देवताओं का यह कार्य अवश्य करें, इससे आपको यश प्राप्ति होगी। इन्द्र की आज्ञा पाकर कामदेव अपने सखा वसन्त के साथ उस स्थान की ओर गये, जिधर शिव समाधि लगाये बैठे हुए थे। वसन्त ने प्रचण्ड रूप से अपना प्रभाव प्रदर्शित किया। पशु–पक्षी, देव, यक्ष, किन्नर, मानव तथा ऋषि–मुनियों में भी काम विकार उत्पन्न होने लगा। परन्तु महादेव निर्विकार भाव से समाधि में मग्न बैठे रहे। नन्दी द्वारपाल के रूप में पहरा दे रहा था। उसने सभी गणों को सतर्क कर दिया, किन्तु नन्दी की दृष्टि को बचाता हुआ कामदेव उस स्थान पर पहुँच गया, जहाँ शिवजी समाधि लगाये बैठे थे। शिव के तेजस्वी रूप को देखकर कामदेव भयभीत हो गया तथा उसके हाथ से धनुष–बाण छूटकर गिर गये। उसी समय मालिनी और विजया नाम की वन–देवियों के साथ पार्वती पर कामदेव की दृष्टि पड़ी। पार्वती का सौन्दर्यावलोकन के पश्चात् कामदेव के मन में महादेव को जीतने की अभिलाषा पुनः बलवती हो गयी। ठीक उसी क्षण पार्वती महादेव के आश्रम के द्वार पर उपस्थित हो गयीं। ठीक उसी समय महादेव ने भी परमेश्वर की परमज्योति का दर्शन करके अपनी समाधि तोड़ दी। नन्दी ने समाधि खुली होने पर प्रणाम करते हुए पार्वती का परिचय कराया। महादेव ने पार्वती को असाधारण पति प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया। पार्वती भक्ति भाव से महादेव के गले में कमल बीजों की माला पहना रही थीं, उसी समय उचित अवसर जानकर कामदेव ने "सम्मोहन" नामक अचूक बाण धनुष पर चढ़ा लिया। पार्वती को देखकर शिव के मन में कामविकार उत्पन्न होने लगा। परन्तु महादेव ने अपनी चंचल इन्द्रियों को वश में करते हुए चारों ओर दृष्टिपात किया। जब उन्होंने लक्ष्य साधे हुए कामदेव को देखा, तब अपने तप में बाधक बने कामदेव पर वह अत्यधिक क्रोधित हुए। महादेव ने अपने तृतीय नेत्र की अग्नि से कामदेव को भस्म कर दिया। महादेव ने तप में बाधक स्त्रियों का साथ छोड़ देने का निश्चय किया। वे उसी क्षण अपने गणों के साथ अन्तर्धान हो गये।

चतुर्थ सर्ग : इस सर्ग में कामपत्नी रति का हृदय विदारक करुण विलाप है। रति कामदेव के सहवास काल की स्मृतियों का स्मरण करके विलाप करती है। वह कामदेव के बिना अपने जीवन को अधूरा समझती है। वह अपने पति के मित्र वसन्त से अपनी

टिप्पणी

चिता तैयार करने का आग्रह करती है। उसी समय आकाशवाणी होती है। आकाशवाणी द्वारा रति को सांत्वना दी जाती है कि उसका पति कुछ समय बाद उसे अवश्य मिल जायेगा। ब्रह्मा के शापवश कामदेव शिव के तृतीय नेत्र से भस्म हुए हैं। जब पार्वती की तपस्या से प्रसन्न होकर शिव उनके साथ विवाह कर लेंगे, तब वे कामदेव को पूर्ववत् शरीर देने की कृपा करेंगे। आकाशवाणी सुनकर रति ने अपना शरीर त्यागने का विचार छोड़ दिया।

पञ्चम सर्ग : महादेव द्वारा मदनदहन की घटना के उपरान्त पार्वती ने अपने सौन्दर्य की निन्दा करते हुए तप द्वारा महादेव को पतिरूप में प्राप्त करने का निश्चय किया। पार्वती की माँ ने उन्हें तप करने से मना किया, किन्तु वह अपने निश्चय से विचलित नहीं हुई। अपने पिता की आज्ञा से पार्वती ने हिमालय के उस शिखर पर तपस्या आरम्भ कर दी, जिसका कालान्तर में गौरी शंकर नाम पड़ गया। पार्वती की तपस्या ऋषि–मुनियों को भी विस्मित करने वाली थी। तपोरत पार्वती के आश्रम में कुछ दिनों के पश्चात् महादेव गुप्त वेश में उनके निकट गये। ब्रह्मचारी बने हुए महादेव ने पार्वती से तप का कारण पूछा। पार्वती का संकेत पाकर उसकी सखी ने ब्रह्मचारी को बताया, कि मेरी सखी महादेव को पतिरूप में प्राप्त करने के लिए इतना कठोर तप कर रही हैं। ब्रह्मचारी ने अनेक प्रकार से भगवान शिव की आलोचना एवं निन्दा की। अपने आराध्य की निन्दा को असहनीय जानकर पार्वती ने अपनी सखी से, ब्रह्मचारी को मौन रहने के लिए कहा। शिव निन्दा श्रवण में अक्षम पार्वती ने अन्यत्र गमन का उपक्रम किया। उसी क्षण महादेव प्रकट रूप में आ गये एवं पार्वती से बोले – हे देवि! मैं आपकी तपस्या से खरीदा हुआ आपका दास हूँ। इसी के साथ पंचम सर्ग का समापन होता है।

षष्ठ सर्ग : पार्वती ने महादेव को अपने ऊपर प्रसन्न देखकर अपनी सखी से कहलाया, कि यदि वे मुझसे विवाह करने के लिए अभिमत हैं तो वे पिता हिमालय के निकट जाकर अनुमति प्राप्त करें। इतना कहकर पार्वती महादेव की आज्ञा से अपने पिता के घर चली गईं। पार्वती के प्रस्थानान्तर महादेव ने सप्त–ऋषियों को स्मरण किया। सप्तर्षि अरुन्धती के साथ महादेव के सम्मुख उपस्थित होकर स्मरण करने का कारण पूछते हैं। महादेव सप्तर्षियों से कहते हैं कि देवता मुझसे पुत्र उत्पन्न कराना चाहते हैं। पुत्र उत्पन्न करने हेतु मैं पार्वती से विवाह करना चाहता हूँ। आप लोग पर्वतराज हिमालय से पार्वती की याचना करने मेरी ओर से जायें। आर्या अरुन्धती इस कार्य में विशेष सहयोग कर सकती हैं। आप लोग हिमालय के औषधिप्रस्थ नगर में जाकर कार्य सफल करने के उपरान्त मुझे महाकोशी नदी के झरने पर मिलने की कृपा करें। सप्तर्षि औषधिप्रस्थ नगर जाते हैं। कवि ने औषधिप्रस्थ नगर का सुन्दर वर्णन किया है। सप्तर्षि पर्वतराज हिमालय के पास जाते हैं। हिमालय ने सप्तर्षियों का विधिपूर्वक आदर सत्कार किया तथा उनके आगमन पर अपने आपको धन्य माना। हिमालय ने सप्तर्षियों से अपने योग्य सेवा कार्य करने के लिए पूछा, तब अंगिरा ऋषि ने हिमालय से कहा, कि हम लोग महादेव का संदेश लेकर आपके पास आये हैं। महादेव ने अपने विवाह के लिए आपकी पुत्री माँगी है। महादेव संसार के पिता हैं, उनसे अच्छा वर आपकी पुत्री के लिए कोई नहीं हो सकता है। हिमालय ऋषि अंगिरा की बात से सहमत हो गये और अपनी पत्नी मेना से भी सहमति प्राप्त करके महादेव को अपनी पुत्री देने की सहमति प्रदान कर दी। तीन दिन बाद विवाह की

तिथि निश्चित हो गयी। हिमालय से विदा लेने के उपरान्त सप्तर्षियों ने महादेव को विवाह की तिथि बतायी और आकाश में उड़ गये।

टिप्पणी

सप्तम सर्ग : इस सर्ग में पार्वती का विवाह वर्णन है। हिमालय ने सभी कुटुम्बियों को बुलाकर शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को अपनी पुत्री के विवाह का आयोजन किया। पार्वती को वधू के वेष में सजाया गया। सभी प्रकार की मांगलिक सामग्रियों से पार्वती को अलंकृत किया गया। वधू वेष में पार्वती की सुन्दरता अवर्णनीय थी। महादेव भी बारात लेकर औषधिप्रस्थ नगर जाते हैं। महादेव नन्दी पर बैठे हुए थे, उनके गण मंगलवाद्य बजाते हुए उनके आगे चल रहे थे। विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित छत्र सूर्यदेव भगवान शिव के ऊपर लगाये हुए थे। महादेव की बारात में ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा पुरोहित सप्तर्षि चल रहे थे। औषधिप्रस्थ नगर पहुँचने पर हिमालय ने अपने कुटुम्बियों के साथ हाथी पर चढ़कर शिव की अगवानी की। महादेव की बारात ने जब नगर में प्रवेश किया, तब सभी स्त्रियां अपने–अपने कार्यों को छोड़कर शिव को देखने दौड़ पड़ी। भवनों के झरोखों, अट्टालिकाओं से शिव के दर्शन किये एवं उनकी भूरि–भूरि प्रशंसा की। शुभ मुहूर्त में महादेव–पार्वती का विवाह पुरोहितों ने संपन्न करवाया। ब्रह्मा ने वधू को वीरमाता बनने का आशीष दिया। सरस्वती ने संस्कृत तथा पाली में वर–वधू की प्रशंसा की। विवाह कार्य के सम्पन्न होने के पश्चात् देवताओं ने शिव से कामदेव को जीवित करने का आग्रह किया। शिव ने कामदेव को जीवित कर दिया। इनके अनन्तर शिव ने सभी देवताओं को विदा किया, और पार्वती का हाथ पकड़कर विनोद भवन में चले गये।

अष्ठम सर्ग : इस सर्ग में शिव–पार्वती की काम–क्रीड़ा का शृंगारिक वर्णन है। प्रारम्भ में पार्वती महादेव की कामुक चेष्टाओं से भयभीत हो जाती थीं, परन्तु कुछ दिनों बाद पार्वती भी काम–क्रीड़ाओं में प्रशिक्षित हो गयीं। इस प्रकार विभिन्न प्रकार से महादेव ने एक मास तक पार्वती के साथ रमण किया। तत्पश्चात् महादेव ने हिमालय से जाने की अनुमति माँगी। नन्दी पर आरूढ़ होकर महादेवी पार्वती के साथ सुमेरू पर्वत पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक रात्रि विश्राम किया। मेरू पर्वत से प्रस्थान कर वे कैलाश पर्वत पर जा पहुँचे। कैलाश पर कुछ दिन बिताकर वे मलय पर्वत, नन्दन वन होते हुए गन्ध मादन पर्वत पर पहुँच गये। वहाँ महादेव ने बहु प्रकार पार्वती को उद्दीप्त करके काम–क्रीड़ाओं का आनन्द लिया। उन्होंने पार्वती के साथ सैकड़ों वर्ष काम–क्रीड़ाओं में इस प्रकार बिता दिये कि मानो एक रात्रि बीती हो।

नवम् सर्ग : जिन दिनों शिव अपनी प्रिया पार्वती के साथ काम–क्रीड़ा में रत थे, उन्हीं दिनों उनके विनोद भवन में एक कबूतर प्रविष्ट हो गया था। भगवान शंकर ने उसे देखते ही विचार किया, कि निश्चय ही अग्निदेव कपट वेष में आया होगा। क्रोध से महादेव की भृकुटि तन गयीं, इसे देखकर कबूतर सच्चा रूप बनाकर महादेव से विनम्र वाणी में बोला – महादेव! आपने अपनी प्रिया के साथ सौ वर्ष तो इसी प्रकार काम–क्रीड़ाओं में ही बिता दिए। इन्द्रादि देवता आपके दर्शन पाना चाहते हैं। आप अपने वीर्य से ऐसा वीर पुत्र उत्पन्न करने की कृपा करें, जिसे देवताओं का सेनापति बनाकर तारकासुर पर विजय प्राप्त हो सके। अग्निदेव की विनती पर भगवान शिव ने अपना वह तेज अग्निदेव को समर्पित कर दिया। उसी समय काम–क्रीड़ाओं में बाधक बने अग्निदेव को पार्वती ने कोढ़ी हो जाने का श्राप दे दिया। शिव ने अपने वचनचातुर्य एवं प्रेमालापों से पार्वती

टिप्पणी

का क्रोध शान्त किया। उसी समय जया और विजया नाम की सखियों ने पार्वती का शृंगार करना आरम्भ कर दिया। उचित अवसर समझते हुए नन्दी ने महादेव को प्रणाम करते हुए इन्द्रादि देवताओं के उपस्थित होने की सूचना दी। शिव पार्वती के साथ विनोद भवन से निकलकर देवताओं से मिलते हैं। तत्पश्चात् देवताओं को विदा करने के उपरान्त शिव अपनी प्रिया के साथ नन्दी पर आरूढ़ होकर कैलाश शिखर के लिए प्रस्थान करते हैं।

दशम सर्ग : भगवान शिव के उस तेज को लेकर अग्निदेव इन्द्र की सभा में उपस्थित हुए। अग्निदेव का ऐसा विकृत रूप देखकर इन्द्र ने इसका कारण पूछा। अग्निदेव ने बताया, कि मैं आपकी आज्ञा को शिरोधार्य कर कबूतर का वेश बनाकर शिव के विनोद भवन में उपस्थित हुआ, तब उन्होंने मुझे तत्काल ही पहचान लिया। लज्जावश महादेव संभोग सुख से विरत हो गये, तथा उन्होंने अपना वीर्य मेरे शरीर के ऊपर गिरा दिया। संभोग सुख में बाधा उत्पन्न होने पर पार्वती ने भी मुझे कुष्ठी हो जाने का श्राप दे दिया। महादेव के इस प्रचण्ड तेज से मेरा शरीर जला जा रहा है। आप मेरी प्राणरक्षा का कोई उपाय बताने की ड्डपा करें। इन्द्र के परामर्शानुसार अग्निदेव गंगा में कूद गये। गंगा ने महादेव का वह तेज अपने भीतर ग्रहण कर लिया। महादेव के उस तेज से गंगा का जल उबलने लगा, तथा उसमें रहने वाले जीव–जन्तु व्याकुल होकर बाहर निकलने लगे, परन्तु गंगा ने वह तेज अपने अंदर संजोये रखा। कुछ दिवसों के अनन्तर छः कृत्तिकाएँ गंगा में स्नानार्थ आयीं। गंगा ने वह तेज उन कृत्तिकाओं को दे दिया। उस तेज ने छः कृत्तिकाओं के अन्दर गर्भ का रूप ले लिया। वे कृत्तिकाएँ लाजवश तथा अपने पतियों के भय से भयभीत हो गयीं, परन्तु उन्होंने बुद्धिमत्तापूर्वक अपने–अपने गर्भ की रक्षा की। लज्जा तथा भय के कारण वे अपने–अपने गर्भ को एक झाड़ी में छोड़कर अपने–अपने घर चली गयीं। वह तेजस्वी गर्भ सैकड़ों सूर्यों को भी परास्त करने वाला था।

एकादश सर्ग : इस सर्ग में कुमार कार्तिकेय की बाललीला का नैसर्गिक वर्णन है। इन्द्रादि देवताओं की प्रार्थना पर गंगा ने स्त्री का रूप धारण कर बालक को स्तनपान कराया। वह बालक क्षण–प्रतिक्षण बढ़ने लगा। इस तेजस्वी बालक को प्राप्त करने के लिए गंगा, अग्निदेव तथा छह कृत्तिकाओं के मध्य कलह होने लगा। उसी समय महादेव अपनी प्रिया पार्वती के साथ विमान पर आरूढ़ उस स्थान पर पहुँचे। उस दिव्य बालक को देखकर पार्वती ने महादेव से उसकी माता का नाम पूछा। महादेव ने पार्वती को बताया, कि देवि! तुम्हीं इसकी माता हो। महादेव की आज्ञा से पार्वती विमान से उतरीं तथा बालक को अपनी गोद में उठा लिया। उस समय इन्द्रादि देवों ने करबद्ध होकर शिव–पार्वती को प्रणाम किया। उस बालक को अपने साथ लेकर विमानारूढ़ होकर शिव–पार्वती कैलाश शिखर पर चले गये। कैलाश शिखर पर भगवान शिव ने अपने गणों से कुमार का जन्मोत्सव मनाने के लिए कहा। बड़ी धूमधाम से कुमार कार्तिकेय का जन्मोत्सव मनाया गया। यक्षों, विद्याधरों एवं किन्नरों की स्त्रियों ने कुमार के जन्मोत्सव में प्रसन्नतापूर्वक भाग लिया। कुमार अपनी बाल–लीलाओं से शिव–पार्वती को आनन्दित करता हुआ दिन– प्रतिदिन बढ़ने लगा।

द्वादश सर्ग : तारकासुर के आतंक से भयाकुल देवता इन्द्र के साथ कैलाश पर्वत पर पहुँचते हैं। नन्दी सोने का डंडा लिये पहरा दे रहा था। इन्द्रादि देवताओं ने अपने गणों के साथ बैठे हुए भगवान शिव को देखा। शिव अपने गणों के साथ कुमार कार्तिकेय की

टिप्पणी

शस्त्र विद्या का अभ्यास देख रहे थे। नन्दी ने इन्द्रादि देवताओं के आगमन की सूचना भगवान शिव को दी। शिव ने मुरझाये मुख वाले देवताओं से पूछा, कि आप लोग स्वर्ग छोड़कर इस प्रकार म्लान मुख एवं कान्तिहीन क्यों हैं? क्या आपके कष्टों का हेतु दैत्य तारक है? इस प्रकार महादेव द्वारा आश्वासन मिलने पर इन्द्र ने विनम्र भाव से कहा – ब्रह्मा से वरदान प्राप्त तारकासुर ने हम लोगों को स्वर्ग से निकाल दिया है। अब आप अपने इस अजेय पुत्र को हम देवताओं का सेनापति बनने की आज्ञा दे दीजिए, जिससे हम लोगों की प्राण रक्षा हो सके। इन्द्रादि देवताओं की प्रार्थना पर महादेव ने अपने पुत्र कुमार कार्तिकेय से कहा, हे पुत्र! तुम देवताओं के सेनापति बनकर तारकासुर का वध करो।

त्रयोदश सर्ग : सेनापति वेश में कुमार कार्तिकेय अपने माता–पिता की चरण वन्दना करके स्वर्ग की ओर प्रस्थान करते हैं। सभी देवता कुमार का अनुगमन करते हैं। कुमार ने देवताओं को साहस बँधाते हुए स्वर्ग में प्रवेश करने की आज्ञा दी। स्वर्ग में प्रवेश करते ही सबसे पहले आकाश गंगा दिखाई दी। कुमार ने देवनदी मंदाकिनी को प्रणाम किया। तत्पश्चात् नन्दनवन को देखा। नन्दन वन उजड़ा सा दिखाई दे रहा था। कार्तिकेय ने अनुमान लगाया कि तारकासुर के आतंक से ही इस नन्दनवन की यह दुर्दशा हुई है। कुमार कार्तिकेय ने उजड़ी हुई अमरावती नामक सर्वश्रेष्ठ नगरी को देखा। अमरावती की दीन–हीन दशा देखकर कुमार कार्तिकेय को तारकासुर पर बहुत क्रोध आया। इन्द्र कुमार को वैजयन्त नामक भवन में ले गये। उस भवन की सुन्दर दीवारें दैत्यों के हाथियों के दन्ताघात से धवस्त हो गयी थीं। उसी भवन में महर्षि कश्यप विराजमान थे। कुमार कार्तिकेय ने महर्षि को प्रणाम किया। कुमार ने देवमाता अदिति को सिर झुकाकर प्रणाम किया। कुमार ने वहाँ बारी–बारी से इन्द्राणी, देवांगनाओं एवं महर्षि कश्यप की सातों पत्नियों को प्रणाम किया। उन सभी ने कुमार को विजयी होने का आशीर्वाद दिया। इस प्रकार इन्द्रादि देवताओं ने कुमार कार्तिकेय को अपना सेनापति बना लिया। कुमार का सेनापति पद पर अभिषेक होने के अनन्तर देवताओं को विश्वास हो गया, कि हम लोग तारकासुर को युद्ध में अवश्य जीत लेंगे।

चतुर्दश सर्ग : तारकासुर विजयार्थ कुमार कार्तिकेय "विजित्वर" नामक रथ पर आरूढ़ हो गये। यह रथ मन से भी अधिक वेगवान था। इस पर स्वर्णछत्र लगा हुआ था। कुमार के पीछे सभी देवता यथानुरूप अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित होकर चल रहे थे। ग्यारह रुद्र भी बैलों पर आरूढ़ होकर कुमार के पीछे चल रहे थे। इस प्रकार देव सेना आकाश में तेज गर्जना के साथ चल रही थी। सेना का कोलाहल सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में गूंजने लगा। देव सेना के प्रस्थान से उठी हुई धूल आकाश में पहुँचकर बादलों का भ्रम उत्पन्न कर रही थी। देवसेना के प्रस्थान का यह रूप देखकर अमरावती के लोग हर्ष का अनुभव कर रहे थे। इस प्रकार सम्पूर्ण चतुर्दश सर्ग में देव सेना के प्रस्थान का घटादोष वर्णन है। वीर रस का सुन्दर स्वाभाविक वर्णन दृष्टिगोचर होता है।

पञ्चदश सर्ग : इस सर्ग में तारकासुर की सेना के प्रस्थान का स्वाभाविक वर्णन है। जब दैत्यों को कुमार कार्तिकेय के सेनापति होने की जानकारी प्राप्त होती है, तब वे अत्यन्त भयभीत हो जाते हैं। उन्होंने तारकासुर को इस देव सेना के आगमन की सूचना दी। तारकासुर ने अपने सभी सेनापतियों को बुलाया तथ स्वयं सेना के साथ चल पड़ा। तारकासुर की विशाल सेना में इतनी पताकाएँ फहरा रही थीं, कि उनसे धूप तक रुक गयी। दैत्यराज की सेना के प्रस्थान के समय अनेक प्रकार के अपशकुन हो रहे थे।

टिप्पणी

कौवे, गिद्ध आदि भयंकर जीव–जन्तु दैत्य सेना के ऊपर उड़ रहे थे। उसी समय सियारिनियां ऊपर मुँह करके रोने लगी थीं। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो तारकासुर के दिन पूरे हो गये हों। यद्यपि सभी अपशकुन तारकासुर को युद्ध में जाने से रोक रहे थे, परन्तु अभिमानी एवं हठी तारकासुर को कौन रोक सकता था। अभिमान में भरा हुआ तारकासुर चला जा रहा था, उसी समय आकाशवाणी हुई – 'हे दैत्यराज! तू कार्तिकेय के साथ युद्ध करने मत जा' दैत्यराज तारकासुर ने आकाशवाणी को अनसुना करते हुए अपनी सेना को देवसेना के सम्मुख युद्धभूमि में ला खड़ा किया। इतनी विशाल दैत्य सेना को देखकर एकबारगी देवसेना भयाकुल होने लगी, परन्तु कुमार कार्तिकेय ने सभी देवताओं का साहस बँधाया। उन्होंने देवताओं से कहा, कि दैत्य सेना पर आक्रमण करने के लिए तैयार हो जाओ। इस प्रकार देवताओं में उत्साह की लहर दौड़ गयी।

षोडश सर्ग : इस सर्ग में इन्द्र और तारक की सेनाओं के युद्ध का भीषण रूप वर्णित है। युद्धभूमि में पैदल योद्धा पैदल से, घुड़सवार योद्धा घुड़सवार से तथा हाथी पर सवार योद्धा हाथी सवार से भयंकर युद्ध कर रहे थे। युद्धभूमि में रुधिर की नदी बह रही थी। युद्धक्षेत्र का वीभत्स वर्णन कालिदास की लेखनी ने अद्‌भुत कुशलता के साथ किया है। योद्धा परस्पर शत्रुभाव से वीरता के साथ युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हो रहे थे। कहीं–कहीं तो कबन्ध तक परस्पर युद्धरत थे। महावतों से रहित हाथी मदमस्त होकर युद्ध क्षेत्र में योद्धाओं को मर्दित करते हुए भ्रमण कर रहे थे। इस प्रकार सम्पूर्ण सर्ग में देव सेना तथा दैत्य सेना का भीषण युद्ध चलता रहता है। तारकासुर स्वयं युद्ध करने हेतु इन्द्र के सम्मुख आकर खड़ा हो जाता है। इसी दृश्य के साथ सर्ग की समाप्ति हो जाती है।

सप्तदश सर्ग : तारकासुर ने देवसेना पर बाणों की ऐसी झड़ी लगा दी कि देवसेना विचलित हो गयी। तारक ने इन्द्रादि देवताओं के गले में नागफाँस के फन्दे डाल दिये। सभी देवता इस विपत्ति से छुटकारा पाने हेतु कुमार कार्तिकेय के समीप पहुँचे। कुमार के दृष्टिपात करने मात्र से देवताओं के नागफाँस छूट गये। इस चमत्कार से तारकासुर अत्यधिक क्रोधित हुआ। उसने सारथी से अपना रथ कुमार कार्तिकेय के निकट ले जाने के लिए कहा। कुमार के सम्मुख पहुँचकर तारक ने उन्हें इन्द्रादि देवताओं का साथ छोड़ देने के लिए कहा, परन्तु क्रोधित कुमार ने तारक पर बाण वर्षा आरम्भ कर दी, प्रत्युत्तर में तारक ने भी बाणों का कौशल दिखाया। जब तारकासुर परास्त होने लगा, तब उसने मायावी युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। उसने "वायव्य" नामक बाण धनुष पर चढ़ाया। बाण संधान करते ही प्रचण्ड वेग से धूल भरी आँधी चलने लगी। इस आँधी से देवसेना का साहस क्षीण होने लगा, परन्तु कुमार कार्तिकेय ने अपनी दिव्य शक्ति से देवसेना को पुनः नवशक्ति प्रदान कर दी। इसे देखकर तारकासुर बहुत क्रोधित हुआ, उसने अग्निवाण अपने धनुष पर चढ़ा लिया। आकाश में काला धुआं एवं आग ही आग व्याप्त हो गयी। देवता भयभीत होकर कुमार कार्तिकेय के समीप जा पहुँचे। कुमार ने "वारुणास्त्र" चलाकर अग्नि बाण के प्रभाव को निष्क्रिय कर दिया। तारकासुर क्रोधित होकर अपना रथ छोड़कर कुमार की ओर झपटा। उसने तलवार से कुमार पर प्रहार करना चाहा, परन्तु इससे पूर्व ही कुमार ने भाले का प्रचण्ड प्रहार कर राक्षस तारक का वध कर दिया। राक्षस तारक के वधानन्तर देवताओं की सेना में हर्ष की लहर दौड़ गयी।

इसी के साथ महाकाव्य का अन्तिम एवं सत्रहवाँ सर्ग समाप्त हो जाता है। ग्रंथकार ने इस पवित्र गाथा को केवल यहीं समाप्त नहीं किया, वे महाकाव्य के उद्देश्यों

टिप्पणी

के निकट इस कथावस्तु को लाना चाहते थे। भारतीय परम्परा की काव्य समाज पर कल्याणकारी प्रभाव डाले, अतः इसे सुखान्त बनाया जाए। संभवतः कवि प्रवर ने इसी दृष्टि से असज्जन पर सज्जन की विजयश्री के साथ अपने काव्य की इतिश्री की है। विजय का मङ्गलगान करते हुए कवि ने अन्तिम मालिनीवृत्त इस प्रकार लिखा है–

इति विषमशरारेः सूनुना जिष्णुनाजौ
त्रिभुवनवरशल्ये प्रोद्धृते दानवेन्द्रे।
बलरिपुरथ नाकस्याधिपत्यं प्रपद्य
व्यजयत सुरचूडारत्नघृष्टाग्रपादः।।

(इस प्रकार विजयी कार्तिकेय ने जब समस्त संसार के हृदय में कीट की भाँति चुभने वाले तारकासुर को मार डाला तब इन्द्र पुनः स्वर्ग के स्वामी बन गए और सभी देवताओं ने अपने–अपने मुकुट की मणियों सहित अपना मस्तक उनके चरणों पर रखकर उनकी वन्दना की।)

विश्लेषण

कुमारसंभव के आठ सर्गों तक की कथावस्तु निस्संदेह महाकाव्य के योग्य है और यहां तक कि संस्कृत का एक सर्वोत्तम महाकाव्य प्रतीत हुआ है, किंतु भारतीय साहित्यिक परंपरा के अनुसार यह कथावस्तु रूपक के लिए अधिक समीचीन है। नाटक की कथावस्तु से मेल मिलाने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि कथावस्तु का रुप श्रव्य से बढ़कर दृश्य होने की योग्यता रखता है।

कालिदास की रस– निष्पत्ति विषयक सर्वोच्च संपत्ति को देखकर ही उन्हें रसेश्वर की उपाधि दी गई है। राजशेखर ने कालिदास के शृङ्गारात्मक ललितोद्गार की प्रशंसा की है।

भारतीय काव्य में नायकादि के चरित्र का विकास नहीं दिखाया जाता – इस आरोप का अपवाद कालिदास की चरित्र– चित्रण कला में मिलता है। उन्होंने एक तपस्वी मोक्षार्थी को काम– परायण गृहस्थ बना दिया है। पार्वती के चरित्र में भी इसी प्रकार का विकास बन पड़ा है। इसमें नायिका ही नायक को प्रतिरूप में प्राप्त करने के लिए सचेष्ट है। नायक तो विरक्त सा है।

अन्य काव्यों में इसके विपरीत नायक नायिका को प्राप्त करना चाहता है। वे नायक प्रधान काव्य हैं। इस काव्य में आदि से अंत तक नायिका का वृत्तान्त कवि ने विशेष रुचि से सन्निवेशित किया है। संभवतः ऐसा नायिका– प्रधान काव्य विशेष रूप से शृंगारमय होना ही चाहिए। कन्या– भाव से उसे मुग्धा और मध्या नायिका में परिणत कर देना यह कालिदास की कला है।

कालिदास की दृष्टि में सर्वप्रथम आकर्षण की वस्तुरूप– सौंदर्य है, जिसका सर्वातिशायी अभ्युदय नायक– नायिका के लिए यौवन में और प्रकृति के लिए वसंत ऋतु में संभव होता है।

देवताओं के आदर्श को मानव– समाज में प्रचारित करने के लिए कालिदास ने उन्हें आचार– व्यवहार में मनुष्यता के अतिशय निकट ला दिया है। कुमारसंभव में सर्वप्रथम हिमालय को पुरुष–रूप देने के लिए उसके एक कुटुम्ब की कल्पना की गई है, जिसमें स्त्री, पुत्र और कन्या है।

टिप्पणी

कालिदास की अन्य रचनाओं की भाँति कुमारसंभव का शब्द– चयन वैदर्भी रीति और प्रसादगुण से मण्डित है। आचार्य दण्डी ने लिखा है कि कालिदास वैदर्भी रीति के सर्वोच्च प्रतिष्ठाता हैं–

लिप्ता मधुद्रवेणासन् यस्य निर्विषया गिरः।
तेनेदं वर्त्म वैदर्भं कालिदासेन शोधितम्।।

कालिदास की शैली व्यंजनामयी है। शाब्दी व्यंजना का एक प्रसिद्ध उदाहरण है–

तां नारदः कामचरः कदाचित्
कन्यां किल प्रेक्ष्य पितुः समीपे।
समादिदेशैकवधूर्भवित्री
प्रेम्णा शरीरार्धहरां हरस्य।।

इस श्लोक में शरीरार्धहरां हरस्य की व्यंजना से तात्पर्य है कि जो शिव सब कुछ हर लेते हैं, उसका भी आधा शरीर यह पार्वती हर लेगी।

कालिदास के छंदों के प्रयोग कहीं– कहीं भावानुवर्ती प्रतीत होते हैं। कुमारसंभव में उपजाति, मालिनी, वसंततिलका, अनुष्टुप्, पुष्पिताग्रा, वंशस्थ, रथोद्धता, शार्दूलविक्रीडित, हरिणी तथा वैतालीय छंदों का प्रयोग मिलता है।

कुमारसंभव महाकाव्य की रचना जिस युग में हुई, उसमें महाकाव्य की कोई परिभाषा सम्यक् रूप से निर्णीत नहीं थी, जैसी आगे चलकर मिलती है। महाकाव्य का आख्यान युद्धप्रधान होना चाहिए। कुमारसंभव के मूल भाग में युद्ध का आख्यान नहीं है। जैसा कुमारसंभव के नाम से स्पष्ट है, इसमें कुमार का जन्म प्रधान कथानक है, युद्ध नहीं। अन्य सभी दृष्टियों से कुमारसंभव उच्च कोटि का महाकाव्य प्रतीत होता है।

अपनी प्रगति जांचिए

4. मेघदूतम् काव्ये कस्य छन्दसः प्रयोग कृतः तस्य किन्नाम्?
   (क) वसन्ततिलका (ख) मन्दाक्रान्ता
   (ग) द्रुतविलम्बितम् (घ) वंशस्थम्
5. महाराजेन रघुणा कस्य गुरुदक्षिणायै व्यवस्था कृता?
   (क) धौम्यस्य (ख) आरुणेः
   (ग) कौत्सस्य (घ) श्वेतकेतोः
6. 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्यस्य कस्मिन् सर्गे गौरीशङ्करस्य विवाहस्य वर्णनम् अस्तिः।
   (क) सप्तमे (ख) अष्टमे
   (ग) दशमे (घ) त्रयोदशे

5.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (क)

3. (ख)
4. (ख)
5. (ग)
6. (क)

टिप्पणी

5.6 सारांश

इस इकाई के अंतर्गत संस्कृतवाङ्मय में 'बृहत्त्रयी' एवं 'लघुत्रयी' के नाम से विख्यात छह महाकाव्यों का सामान्य किंतु विशद विवेचन किया गया। सर्वप्रथम बृहत्त्रयी के प्रथम महाकाव्य 'किरातार्जुनीयम्' है। इसके रचयिता अर्थगौरव गुण से समन्वित महाकवि भारवि हैं। इनका महकाव्य महाभारत के उस प्रसंग पर आधारित है जिसमें महाभारत के महाधनुर्धर अर्जुन ने तपोबल से पाशुपतास्त्र को प्राप्त किया। दूसरा महाकाव्य 'शिशुपालवधम्' महाकवि माघ द्वारा रचित है। श्रीमद्भागवतम् और महाभारतम् में इस महाकाव्य के स्रोत को पाया जाता है। युधिष्ठिर की राज्यसभा में चेदिराज शिशुपाल के वध का प्रसंग इसका प्रमुख स्रोत है। बृहत्त्रयी का तीसरा महाकाव्य श्रीहर्ष द्वारा प्रणीत 'नैषधीयचरिम्' है। 'महाभारतम्' का नलदमयन्ती उपाख्यान इसके मूल में है। इन तीनों महाकवियों ने लघु प्रसंग को आधार बनाकर महाकाव्यों की रचना करने का गौरवशाली कार्य किया है।

तदनन्तर लघुत्रयी के अंतर्गत जिन काव्यों का समावेश हुआ है, वे तीनों महाकवि कालिदास द्वारा रचित हैं। ये तीन काव्य क्रमशः 'मेघदूतम्', 'रघुवंशम्' और 'कुमारसम्भवम्' हैं। मन्दाक्रान्ता छंद में विरचित 'मेघदूतम्' महाकवि की नितांत मौलिक कल्पना है। अपनी प्रियतमा से विरहित एक यक्ष द्वारा मेघ को दूत बनाकर प्रियतमा को संदेश भेजने के प्रयास में लगे एक यक्ष के उद्गार इस काव्य में अत्यंत चित्ताकर्षक रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। लघुत्रयी का दूसरा काव्य 'रघुवंशम्' नामक महाकाव्य है। इसका मूल स्रोत आदिकवि महर्षि वाल्मीकि रचित 'रामायणम्' है। उन्नीस सर्गों में विभाजित इस महाकाव्य में सूर्यवंश में उत्पन्न दिलीप से लेकर अग्निवर्ण राजाओं का प्रभावीवर्णन है। लघुत्रयी का अंतिम महाकाव्य 'कुमारसम्भवम्' है। इस महाकाव्य का स्रोत महर्षि वेदव्यास रचित 'शिवपुराणम्' है। सत्रह सर्गों में विभक्त इस महाकाव्य की आठवें सर्ग के बाद वाले सर्गों की रचना प्रक्षिप्त मानी जाती है। कुमार कार्तिकेय के जन्म के उद्देश्य से शिव–पार्वती के परिणय का प्रसंग इस महाकाव्य का मुख्य कथानक है।

5.5 मुख्य शब्दावली

- **हिरण्यम्** – स्वर्ण।
- **शीतांशः** – चन्द्रमा।
- **प्रमिताक्षरा** – सीमित शब्दों वाली।
- **भाः** – प्रकाश।
- **अरुणजलजराजी** – रक्त कमलों की पंक्ति।

टिप्पणी

- **अनुशीलन** – विवेचन।
- **अम्भोधिः** – समुद्र।
- **अक्षिश्रवा** – सर्प।
- **क्षितिरक्षी** – राजा।
- **प्रावृट्** – वर्षाकाल।
- **विजिगीषुः** – विजय अभिलाषी।
- **अक्षिकम्प** : पलक झपकना।
- **आखण्डलः** – इन्द्र।
- **नगाधिराजः** – पर्वतराज हिमालय।
- **विषमशरः** – कामदेव।

5.6 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. वृहत्त्रयी में किन–किन कवियों की किन रचनाओं का समावेश किया गया है?
2. लघुत्रयी के तीन काव्यों का नामोल्लेख रचनाकार के नाम के साथ कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. महाकवि भारवि के महाकाव्य का विस्तृत परिचय लिखिए।
2. 'शिशुपालवधम्' की समीक्षा महाकाव्य के लक्षणों के आधार पर कीजिए।
3. 'नैषधीयचरितम्' की कथावस्तु की विवेचना कीजिए।
4. 'मेघदूतम्' के वर्ण्यविषय को स्पष्ट करते हुए इसके काव्य सौंदर्य पर प्रकाश डालिए।
5. 'रघुवंशम्' महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग की कथावस्तु का परिचय सर्गानुसार लिखिए।
6. 'कुमारसम्भवम्' के कृतित्व में मौलिकता व प्रक्षिप्तांश के विवाद पर अपने विचार लिखिए।

5.7 सहायक पाठ्य सामग्री

1. नैषधीयचरितम् प्रकाशाख्या, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2005
2. डॉ. राम बहादुर शुक्ला, नैषधीयचरितम् की शास्त्रीय मीमांस, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 2005
3. नैषधीयचरिम् जीवातु टीका, सन्ध्या शास्त्री, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2005